मिथिलाविद्यापीठग्रन्थमाला

२. अर्वाचीनपण्डितग्रन्थावली

प्रथमं पुष्पम्

this Volume, postage paid, can be had of the Director, Mithila Institute, Darbhanga, on receipt of Rs. 11/- by M. O or Postal Order or Cash.

by Suryyanarain Jha for Darbhanga Press Company Limited, hanga, and Published by Dr P. L. Vaidya, Director, Mithila ute of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning, hanga

स्वर्गीयपण्डितप्रवरश्रीरामावतारशर्मविरचिताः

प्रकीर्णप्रबन्धाः

प्रथमः खण्डः

मिथिलाविद्यापीठप्रधानेन

प्रकाशितः।

शकाब्दः १८७७ विक्रमाब्दः २०१२ ऐशवीयाब्दः १९५६



The Government of Bihar established the Mithila Institute of Post-Graduate Studies and Research in Sanskrit Learning at Darbhanga in 1951 with the object, ***inter-alia***, to promote advanced studies and research in Sanskrit Learning, to bring together the traditional Pandits with their profound learning and the modern scholars with their technique of research and investigations, to publish works of permanent value to scholars. This Institute is one of the five others planned by this Government as a token of their homage to the tradition of learning and scholarship for which ancient Bihar was noted Apart from the Mithila Institute, three others have been established and have been doing useful work during the last three or four years—Nalanda Institute of Research & Post-Graduate Studies in Buddhist Learning and Pali at Nalanda, K, P, Jaisawal Research Institute at Patna, and the Bihar Rashtra Bhasha Parishad for research and advanced studies in Hindi at Patna. In the establishment of the Mithila Institute the State Government received a generous donation from the Maharajadhiraja of Darbhanga for construction of the building on a plot of land also donated by him

2. As part of this programme of rehabilitating and re-orientating ancient learning and scholarship, the editing and publication of this volume has been undertaken with the co-operation of scholars in Bihar and outside. The Government of Bihar hope to continue to sponsor such projects and trust that this humble service to the world of scholarship and learning would bear fruit in the fulness of time.

It was regrettable that little attention was paid, till to make Panditji's writings readily available to the It is, therefore, not without a feeling of gratification am writing these few lines by way of a foreword to the collections of Panditji's Miscellaneous Sanskrit Writings. resent collection forms the first volume of that scholar's in Sanskrit and English, those in Hindi having already published by the Bihar Rastrabhasa Parishad, Patna. ntire series will consist of three volumes and with the etion of the series all the writings of Panditji will have published.

regard the publication of Panditji's works as the of a long-standing debt which this State owed to I am sure the belatedness of it will only help to enhance in the eyes of those who have been eagerly waiting same. It will not be revealing a secret when I state it was our respected Rashtrapati who first drew our to the need of publishing these writings. Our late Madhava Sri Hari Aney, with the scholar that was keenly interested himself in planning the publication he State Government promptly took up the matter and ioned the funds needed for it. Panditji's eldest son, N. V. Sharma of Patna University, performed but a duty in whole-heartedly cooperating in the fulfilment of Our thanks are nevertheless due to him for the assistance that he rendered in getting the press-duly prepared. Last but not least, I have to thank P. L. Vaidya, Director of the Mithila Sanskrit Research tute, Darbhanga, for the zeal and earnestness with which ushed through this work and saw it through the press with-mendable promptitude.

Patna
10-3-56

BADRINATH VARMA

प्रबन्धानुक्रमणिका

प्रथमो विभागः

द्वितीयो विभागः

—**—



(स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा)

LIFE-SKETCH

The late Mahamahopadhya Pandit Ramavatar Sharma was born on the 6th March 1877 in a poor family of learned Sarju parin Brahmins of Chapra, a town in the Saran district of Bihar. His father, Pt. Devanarayana Pandeya taught him the rudiments of Sanskrit grammar and literature. He completed his higher education in Sanskrit under the guidance of Mahamahopadhyaya Gangadhar Shastri of Banaras. He took his Sahityacharya degree from Banaras, standing first amongst the examinees. He appeared at the Entrance, F. A., B. A. a d M. A. Examinations as a private examinee and secured the highest distinctions.

He was appointed as a lecturer in Sanskrit in Patna College and later joined the Calcutta University in the same capacity, where he delivered the Basu-Mallick Vedanta lectures in English, which were published in book-form. He was persuaded to return to Patna College after some time, whence he went to the Banaras Hindu University as the Principal of the Oriental College, when the Univessity was founded by Pt. Madan Mohan Malaviya. He was recalled by the Bihar Government after a few years and worked in Patna College as the Head of the Department of Sanskrit till he passed away on the 3rd April, 1929.

The late Panditji presided over the Jubbalpore session of the All-India Hindi Sahitya Sammelan and the All-India Social Reform Congress in 1911.

Mahamahopadhyaya Pt. Ramavatar Sharma was a scholar of rare intellectual attainments and his fame had travelled beyond the borders of India. He wrote poems, plays, critical essays and papers on a variety of subjects in Sanskrit, Hindi and English. He propounded a philosophical system

he called the Paramartha Darshana and which was by many as the seventh system of Indian philosophy. gnum opus was the Sanskrit Lexicon, which would be by the Mithila Institute as the last volume of his krit and English writings, the first being the present one Dr. K. P. Jayaswal spoke thus of the genius of Sharmaji I walked with Panditji I felt that I was with Kapil, Sankara, and Kalidasa, Harsha, Jagannatha rolled one".

—Umanath

परिचय

"भारतस्य न भा भाति विहारो हारवर्जितः ।
रामावतारे स्वर्याते मूर्च्छितैव सरस्वती ॥"

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा ने अपने अविश्रांत स्वाध्याय एवं अविचल ज्ञान-साधना के द्वारा, समाज के समक्ष सरस्वती की उपासना का जो अनुपम एवं अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया था, उससे उनके युग का विद्वन्मंडल विस्मय-विमुग्ध हो गया था। शर्माजी का जन्म बिहार-राज्य के सारन जिला स्थित छपरा-नगर में, ६ मार्च, सन् १८७७ को, एक साधनहीन किंतु विद्या-प्रेमी सरयूपारीण ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। उन्होने संस्कृत की प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता पं० देवनारायण पाण्डेय से पाई थी। बाद में उन्होने काशी के पञ्च-परम-गुरुओ में प्रमुख महामहोपाध्याय गङ्गाधर शास्त्री से संस्कृत की उच्चतम शिक्षा पाई। वे काशी से ही साहित्याचार्य की परीक्षा मे सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण हुए। इसके बाद, चूँकी उनके पिता का देहांत हो गया और उन्हें अपने तीन अनुजों और माता आदि का पालन-पोषण करना पड़ा, उन्होंने संस्कृत-शिक्षक के रूप में जीविकोपार्जन करते हुए मैट्रिकुलेशन (तब एनट्रैंस), आइ. ए. (तब एफ. ए.), बी. ए. और एम. ए. परीक्षाएँ कीं और सभी में ससम्मान सफल रहे, अन्तिम दोनों परीक्षाओं में तो प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान की प्राप्ति के साथ।

ऐसी असाधारण योग्यता प्राप्त कर लेने पर उन्हें पटना कालेज मे संस्कृताध्यापक का पद मिला। कुछ दिनों के बाद वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के संस्कृत के प्राध्यापक नियुक्त हुए और वहीं वसु-मल्लिक-लेक्चरर के रूप में अंग्रेजी में वेदान्त पर भाषण-माला भी प्रस्तुत की, जो पुस्तकाकार प्रकाशित भी है। वे पुनः बड़े आग्रह से बिहार के शिक्षा-विभाग द्वारा पटना कालेज में बुलाए गए, जहाँ से, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना होने पर, उन्हें महामना मालवीय जी प्राच्य विभाग का अध्यक्ष बनाकर ले गए। कुछ वर्षों के बाद बिहार सरकार ने उन्हें फिर पटना कालेज में सानुरोध बुला लिया, और वे बिहार की इसी प्रमुख शिक्षण-संस्था के संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद पर काम करते हुए, ३ एप्रिल, १६२६ को दिवंगत हुए।

शर्माजी ने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जबलपुर अधिवेशन और सन् १९११ मे अखिल भारतीय समाज-सुधार-सम्मेलन की अध्यक्षता थी। सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप मे उनका स्वागत करते हुए स्वर्गीय पं० न्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने कहा था, "जसे रामावतार के समय मर्यादा स्थापित हुई, ही आज भी यहाँ रामावतार हुआ है! हिन्दी की भी मर्यादा स्थापित हो उक्त अवसर पर 'सरस्वती' मे स्व० आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने के परिचय मे लिखा था--"यस्यास्ये परमार्थदर्शनमयी वाणी ननर्त्ताद्भुता"।

शर्माजी की प्रतिभा चतुरस्र थी और व अपनी बहुपथीन मतिमत्ता के कारण मे ही नहीं, विदेशो मे भी अपने समय के. अप्रतिम विद्वान् माने जाते थे। ह्होंने संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी मे स्थायी महत्त्व के पांडित्यपूर्ण प्रबन्ध लिखे थे संस्कृत मे काव्य, नाटक, चम्पू, दर्शन, इतिहास, भाषातत्त्व और कोष के ग्रन्थों की रचना की थी, जिनमे से कुछ का प्रकाशन प्रस्तुत पुस्तक में हुआ है शेष का निकट भविष्य मे होगा।

शर्माजी का यशःकाय अजर-अमर है। उनकी विद्वत्ता, देशप्रेम और की कहानियाँ आज भी देश के कोने-कोने में कही-सुनी जाती है। उनकी के बाद भारत के एक दूसरे महान विद्वान्, डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने था--"जब मैं शर्माजी के साथ घूमता था तो मै ऐसा अनुभव करता था कि कपिल-कणाद-शंकर और कालिदास-हर्ष-जगन्नाथ इन सभी के साथ चल

—उमानाथ

भारतगीतिका

अलं भारतीया मतानां विभेदैरलं देशभेदेन वैरेण चालम् ।
अयं शाश्वतो धर्म एको धरायां न सम्भाव्यते धर्मतत्त्वेषु भेदः ॥१॥

दया भूतसंघे मतिर्देवदेवे चतुर्वर्गचिन्ता विरोधाद्विरामः ।
मनःकायवाक्शोधने चैव बुद्धिः परं धर्मतत्त्वं विरोधोऽत्र केषाम् ॥२॥

नराः सर्व एवैकमीशं भजन्ते स ईशः परं नामभेदेन भिन्नः ।
समुद्भासितो धर्म एतेन चैको विचिन्त्येति को वर्त्ततां भेदवादे ॥३॥

कलिङ्गाङ्गवङ्गान्ध्रकद्राविडादीनुपाधीन्विहायैक्यमालम्ब्य भूयः ।
अये भारतीयाः पुरेवात्मरूपं लभध्वं यशश्चन्द्रशुभ्रं तनुध्वम् ॥४॥

गिरं संस्कृतां राजकीयां च वाणीं समभ्यस्य लोकद्वयस्यापि सौख्यम् ।
वशे स्थापयध्वं स्वधर्मं स्वदेशं तथा प्रापयध्वं पुनर्गौरवं तत् ॥५॥

चतुर्वर्गमूलं सुविद्येति मत्वा स्वदेशीयविद्यालयानामुदारम् ।
विधायोन्नतिं शिल्पशास्त्रादिशिक्षाप्रचारं भृशं भारते वर्धयध्वम् ॥६॥

अकृत्वा मतिं दोषजाते परेषां विशुद्ध्यै स्वदोषस्य भूयो यतध्वम् ।
स्वदोषे जनैः शोधिते नावकाशः क्वचिद्दोषजातस्य भावीति मत्वा ॥७॥

वचः सर्वतः सत्यमङ्गीकुरुध्वं न चासत्यमुद्घोषितं ब्रह्मणापि ।
चरित्रं भृशं सत्यपूतं तनुध्वं मतिं सर्वभूतावने वर्त्तयध्वम् ॥८॥

पुरामुष्मिकं चैहिकं भारतीयाः सुखं विद्यया साधितं पूर्वजैर्वः ।
उपेक्ष्याद्यविद्यामम्ूं भोजनार्थं परेषां मुखावेक्षिणो हा भवन्तः ॥९॥

जनैरैहिकामुष्मिकार्थक्षमासु प्रवृत्तिं विहायाद्य विद्यासु मोहात् ।
श्रमं शुष्कवादेषु कुर्वद्भिरेतैः कथं याप्यते जीवनं दास्यकृत्ये ॥१०॥

श्रुतौ दर्शने ज्यौतिषे धर्मशास्त्रे पुराणेतिहासे चिकित्साविधौ च ।
तथैवोपयुक्तेषु विद्यान्तरेषु प्रवृत्तिं तनुध्वं विवादान्विहाय ॥११॥

समभ्यस्य देशान्तरीयाश्च भाषाः समाहृत्य विज्ञानतत्त्वानि युक्त्या ।
गिरा दिव्यया संस्कृतानि प्रकामं स्वदेशीयभाषासु संचारयध्वम् ॥१२॥
न संभाव्यते नेष्यते भोजनैक्यं न चान्यत्तथा बाह्यमैक्यं सुधीभिः ।
हृदैक्येन बुद्ध्यैकया सर्वयत्नं स्वदेशोदये भारतीयास्तनुध्वम् ॥१३॥

कि पूर्वसूरिभिरभूत्कृतमत्र देशे
द्वीपान्तरेषु च कियत् क्रियतेऽधुनापि ।
आलोच्य सर्वमिदमङ्ग विधत्त यत्नं
यत्नेन सर्वमिह सिद्ध्यति नात्र शङ्का ॥१४॥

नान्याश्रयेण निजबुद्धिबलेन सर्वं
पूर्वैः कृतं सपदि तन् क्रियतां भवद्भिः ।
वैज्ञानिकैरखिलसिद्धिरुदस्य विघ्नान्
द्वीपान्तरेष्वपि धनादि विनाप्यवापि ॥१५॥

यत्पूर्वजैर्विपिनवासपरैस्तृणाय
मत्वा धनं भगवदेकसहायसुस्थैः ।
ग्रन्था व्यधायिषत हन्त परःसहस्राः
सीदन्ति ते कथमिवान्यजनाशयाद्य ॥१६॥

नित्या सा करुणा शिवस्य न गता, धर्मो न नित्यो गतः
सम्राट्प्रेषित ईश्वरेण कथमद्येमाय चेष्टेत नः ।
उद्योगस्तु जनस्य न स्थिर इति स्थानं तदेकं भियो
नोद्योगस्थिरचेतसां विफलतेत्युद्योग आलम्ब्यताम् ॥१७॥

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका' ; काशी, १८२६ शकाब्दाः ; आषाढः ; प्रथमवर्षस्य तृतीया संख्या]

मुद्गरदूतम्

कि मे पुत्रैर्गुणनिधिरयं तात एवैष पुत्रः
शून्यध्यानैस्तदहमधुना वर्त्तये ब्रह्मचर्यम् ।
कश्चिन्मूर्खश्चपलविधवास्नानपूतोदकेषु
स्वान्ते कुर्वन्निति समवसत्कामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

शास्त्रज्ञानामपि ननु तनुदूषितावस्कराद्यैः
शुद्धः कः स्याद् गुरुरिति भुवं स भ्रमन्मूर्खदेवः ।
वव्रे कञ्चिद् गुरुमथ शकृत्पूयरक्तादिशून्यं
चैत्ये कस्मिश्चन विनिहितं जीर्णपाषाणखण्डम् ॥२॥

चैत्योपान्ते सरितमतुलां प्राप चिन्तां स पश्यन्
दैवादग्निर्दहति यदि तां का दशा यादसां स्यात् ।
तान्युड्डीय द्रुमततिमिमां तीरजां हन्त यान्ती-
त्युक्तः प्राज्ञैरपि सकरुणं मुक्तकण्ठं रुरोद ॥३॥

मैनां धाक्षीर्दहन भगवन्मातरं मत्स्यजातेः
सायं प्रातः प्रतिदिनमिति प्रार्थनां गातुमुख्यैः ।
उद्युक्तानामथ समुदितश्चर्मकारादिकानां
व्याख्यानाद्यैर्विपुलसमितीः स्थापयामास मूर्खः ॥४॥

सायं चैत्ये स कथकमुखान्माघमाहात्म्यकाण्डे
शुक्लाष्टम्यां विकिरति सुधां शीतरश्मिर्निशीथे ।
श्रुत्वा वार्त्तामिति सविधवः सूक्ष्मकौपीनधारी
तीरे नद्या रजनिमनयज्जाड्यविद्धः सुधायै ॥५॥

ग्रामोपान्ते तरुणविधवाः प्राप्तगन्धर्वबाधा
मूर्च्छामग्नाः सरभसमसावामृशन्नङ्गुलीभिः ।
गायत्र्या वा मदनविधुरो रामकृष्णाह्वयैर्वा
सोच्छ्वासास्ता व्यधित पयसा शस्यराजीवृषेव ॥६॥

क्षेत्रेऽपश्यत् समहिषमथ स्फीतदर्पं भ्रमन्तं
त्वत्तः श्रेयान्ननु पशुरयं शृङ्गलाङ्गूलयुक्तः ।
इत्थं प्रोक्तः प्रियविधवया तामुवाच प्रियार्हे
पुच्छं शृङ्गद्वयमपि च मे दिव्यदृष्ट्यावलोक्यम् ॥७॥

गर्भं लब्ध्वा तरुणविधवा कापि तं लज्जयोचे
वक्ष्यन्ती मे किमिह भगवन्बन्धवो गर्भिणीं माम् ।
तां प्रत्यूचे प्रहसितमुखो मूर्खदेवः प्रगल्भो
मद्भस्माणुप्रभवमयि ते ख्यापयिष्यामि गर्भम् ॥८॥

धूर्त्तो वृत्तैरथ स गदितैरात्मजन्मान्तराणा-
मत्यश्लीलैः किल पुलकयन्बालवैधव्यदग्धाम् ।
प्राप्यैताभ्यः प्रतिदिनमसौ पायसापूपराशी-
सीतारामस्तवकलकलैर्मोदयामास भक्तान् ॥९॥

ब्रूते भूयो मनुरपि वदेद्यामिनीं नैव भाषां
किं शिक्षाभिर्जपत शिशवो रामकृष्णेति जल्पन् ।
भाषानामन्यथ मनुमपि क्षीबकोऽसावजान-
न्मुग्धास्निग्धैर्घृतमधुमयैर्वञ्चयामास वादैः ॥१०॥

श्रुत्वा मृत्युं जरठविदुषः कस्यचित्काशिकायां
शिष्यैः पृष्टः कथय भगवन् कारणं तस्य मृत्योः ।
पोतैर्द्वीपान्तरगतिविधिं शंसति स्मैष विप्र-
स्तस्माद्यातो यमगृहमसावित्युवाच स्वशिष्यान् ॥११॥

काले याते पितरमथ च व्याधितं शुश्रुवान्स
ग्रामं गत्वा झटिति जरठं तं समाच्छिद्य वैद्यात् ।
वैद्यो नारायण इति वदन्स्थापयित्वापगाया-
मेकादश्यामजलरसनं मारयामास तर्षात् ॥१२॥

विद्वान्वृद्धो ननु तव पिता हा विपन्नोऽद्य कष्टं
शोकात्सर्वे सुहृद इति तं तुष्टुवुस्तस्य तातम् ।
पापाः किं नु प्रलपथ पितुर्नैव जानीथ कीर्त्तिं
भूमावेष स्फुटमयि जडा मुष्कशोथे द्वितीयः ॥१३॥

दृष्ट्वा मूर्खा जगति पुरुषाः प्रायशो लम्बकूर्चा
इत्यालोच्य व्यथितहृदयः पुस्तके चापि मूर्खः ।
मुष्ट्या कूर्चं धृतमवहितो दग्धुमारभ्य दीपे
वह्नौ सद्यो ज्वलति च मुखं मुक्तमुष्टिर्ददाह ॥१४॥

नीतिव्याख्यासमितिषु तथा धर्मवार्त्तासदःसु
प्रायो नाट्येष्वथ शवखनिष्ट्याश्रमेषूद्भटानाम् ।
व्यर्थं क्षिप्त्वा भरतवसुधाद्रव्यकोटीः स कीटो
देशप्रेमोल्बणभणितिभिर्नाशयामास विद्याम् ॥१५॥

आनेष्येऽहं हिमगिरितटादौषधं वः क्षुधारि
प्राणायामैर्म्रियति भवतां साधयिष्ये गतिं वा ।
कुब्जे कुब्जे सपदि भविता रामकृष्णावतारः
श्मश्रु च्छित्त्वा प्रकटवनिताभावभाजो रमध्वम् ॥१६॥

जल्पन्नित्थं रसनगरलै रामकृष्णादिनामा-
न्युग्राचारः किल कलुषयन्नार्त्तवं बिभ्रदङ्के ।
सिन्दूराक्तो रणितवलयः शाटिकावेष्टिताङ्गः
सायं चैत्ये प्रतिदिनमसावञ्जिताक्षो ननर्त्त ॥१७॥

बिभ्यद् भूताच्चपलविधवासङ्गमैः पूतचैत्यः
प्रायश्चित्तं मुहुरुपदिशन्स गृहस्थेषु पापः ।
कोटीश्चिन्वञ्जगदुपदिशन्स्वप्नमायोपमानं
गाथा वेदानिव परिपठन् स्फीतकीर्त्तिर्बभूव ॥१८॥

ईशः सृष्टिं स किल विदधे फूत्कृतैश्चिन्तया वा
तावत्पापं क इह कुरुते यावदीशः क्षमेत ।
रे रे मूढाः स्मरत गणिकां तामथाजामिलं वा
व्याख्यायेत्थं निखिलजनतां मज्जयामास पापे ॥१९॥

एकं ब्रह्म स्फुटमिह वृथा पुण्यपापादिभेदः
स्रङ्मुद्राद्यैः स्पृशति न यमो धर्मलिङ्गैरुपेतम् ।
भार्यापुत्रादिकपरिहृतिः स्वर्गसोपानधारा
जल्पन्नित्थं जगति विदधे पातकस्य प्रचारम् ॥२०॥

तन्त्रीवार्त्ता श्रुतिषु विदिता वाष्पयानानि चैव
प्रायः किञ्चिन्न तदिह जने यन्न तास्वीश ऊचे ।
निर्मायर्षीनमिथुनभवांस्ता जगादेश्वरस्ता-
न्कि विज्ञानैरटत सततं तच्छ्रुतीरित्यशात्सः ॥२१॥

एकस्यार्थे ननु पशुशिशोः पक्षिणो वा क्रमेर्वा
लक्षं लक्षं निहत मनुजा मानवा भूरिसंख्यान् ।
मत्स्याः कीटा अथ च पशवो दुर्लभा दिव्यरूपा
व्याख्यायेत्थं करुणहृदयो नैष हिंसां विषेहे ॥२२॥

आसं पूर्वं रजकभवने रासभः साधुवृत्तो
यैषा प्रेष्ठा मम च विधवा रासभी साऽसती या ।
चैत्ये श्वाऽयं मम किल पिता सूकरी हन्त माते-
त्याद्यैर्जन्मान्तरसुचरितैर्नन्दयामास नारीः ॥२३॥

पुष्पाख्याभिर्जननसमयं पाणिरेखाप्रपञ्चै-
रायुर्वार्त्ता क-ख-गणनया लक्षणं कन्यकानाम् ।
चन्द्रादीनां स्थितिभिरधियां दुर्दशां तत्प्रशान्ते-
र्मिथ्योपायानपि च कितवः ख्यापयन्प्राप वित्तम् ॥२४॥

पुत्रो मर्त्त्यैः प्रकुरुत शिलापुत्रकान्यौवनं न
स्त्रीणां नित्यं वितनुत रतीरायसोलूखलेषु ।
भोज्यं पाके भजत विकृतिं वायुमाचामतेति
प्रायस्तर्कैरथ बहुविधैर्मायिकं सर्वमूचे ॥२५॥

अर्थस्याप्तिं सपदि नियतां भावनाभिर्दृढाभि-
र्व्याचक्षाणः प्रखरमतिना केनचिद् धूर्त्तयूना ।
सोऽहं पीत्वा मदपरवशो हन्त संकल्पमद्यं
किं वा कुर्यामिति कथयता ताडितः पादुकाभ्याम् ॥२६॥

श्रीकृष्णस्ते नयनविषयं याति शेषे निशायाः
किं त्वं शेषे तदिति कथयञ्जातु शिष्यं शनैः सः ।
दिव्योष्णीषः कपिशवसनः काष्ठबाहुद्वयाढ्यः
पूजां यष्टिप्रहरणमयीं प्राप तस्माद्विलज्जः ॥२७॥

प्राणायामैर्वियति विहरामीति विख्याप्य रङ्गे
मन्दालोके निभृतनिहितं भित्तिकानागदन्तम् ।
नृत्यन्धूर्त्तः स किल परतो मेखलाबद्धरन्ध्रं
चेतश्चक्रे कुतुकतरलं बालिशानां बहूनाम् ॥२८॥

दत्तोत्कोचं विदितकपटं गर्भदासं च किञ्चिद्
गूढाकूतैः सपदि कितवो मूर्च्छयन्पाणिकम्पैः ।
स्वेन ज्ञात कियदपि सुखेनाद्यवर्णाद्यभिज्ञा-
संकेताद्यैर्निभृतविहितैर्बोधयामास पापः ॥२९॥

सर्वाशुद्धिप्रणयिहृदयो मद्यवार्धेरगस्त्य-
श्चाण्डालीनामधरमधुपो बद्धगर्धः कुसीदे ।
जिह्मो भूयस्तरुणविधवाभ्रूणहत्यापराधी
धर्मव्याख्याचटुलरसनः पूज्यते स्मैष मूढः ॥३०॥

अस्मिन्नेवावसर उदितावत्र सुन्दोपसुन्दौ
मिथ्यावाचां धुरिकृतपदौ भारतस्य क्षयार्थम् ।
एको ब्रूते भ्रमति धरणी राघवो मत्स्वरूपो
लालामन्यस्तडिदणुमयीं पाययत्यात्मभक्तान् ॥३१॥

श्रुत्वा कीर्त्तिर्यतिकुलपतेर्मूर्खदेवस्य भूय-
स्तत्सङ्गेच्छानिधिमिव हृदा धारयन्ती प्रचण्डा ।
रण्डा काचिन्मदनविधुरा स्थूलबीभत्सकाया
प्रायाद्दग्धां भरतवसुधामुत्तराध्वाधिवासात् ॥३२॥

तां सर्वज्ञां खचरचरणां पाण्डुपत्नीमिव द्रा-
ग्देवान्द्र(क्र)ष्टुं पटुमतिरसाद्धोषयन्मूर्खदेवः ।
भूयो भूयः प्रकटकपटामप्यधृष्यां स भक्तै-
र्विद्योच्छेदेऽधिगतविजयोऽपूपुजद्ब्रह्ममूर्खैः ॥३३॥

भक्तस्पर्शैर्ध्रुवमुपनतां वैद्यनाथादिलिङ्गे-
संसद्दम्भप्रचुरहृदयासावयस्कान्तशक्तिम् ।
बन्धस्फोटो वियति चरतां प्रेतसत्त्वादिकानां
मन्त्रोद्घोषैरिति च सततं घोषयामास पापा ॥३४॥

आदर्शेऽस्मिन्मलिनविधुरे स्यात्त्रिकालावभासो
भीष्मादीनां पुनरपि भवेद् दृष्टिरत्राङ्गुलीये ।
भाग्यं सर्वं विलिखति सुखं काष्ठखण्डं तथेदं
धूर्त्ता वादैरिति शिशुजनं मोहयन्ती चचार ॥३५॥

भूताह्वानैस्त्रिपदरुचिरापीठकान्नर्त्तयन्ती
कम्पैः पाण्योश्चिरतरुरजः क्षिप्रमुल्लाघयन्ती ।
भस्त्रारूपं निजगुरुजनं व्योम्नि संदर्शयन्ती
पूजां बालेष्वभजत चिरं दक्षिणारण्यकेषु ॥३६॥

क्रुद्धा शापैरथ निजमहाशक्तिवार्त्ताप्रपञ्चै-
रन्ते भक्तप्रवरविहितैरर्धचन्द्रैश्च भूयः ।
तामाजग्मुर्दृढतरधियो ये परीक्षार्थिनस्ता-
न्दम्भोद्दामा शिशुजनरिपुर्धर्षयामास पापा ॥३७॥

रन्तुं देवैः क्षवथुविधिना वाष्पयानं विधातुं-
कर्त्तुं बन्यूव्रयनविपये योजनानां सहस्रात् ।
प्राणायामैरपि च विषयं प्राप्तुमन्यग्रहाणां
वन्ध्यापुत्रानुसरणसभां स्थापयामास धूर्त्ता ॥३८॥

शून्यध्यानैरमिथुनभवब्रह्मदेवर्षिवादैः
फूत्कारादिप्रभवपृतनायुद्धवृत्तप्रपञ्चैः ।
चिन्तामात्रप्रकटशकटोड्डीनकौलस्तवाद्यै-
र्वन्ध्यापुत्रानुसरणसभां ह्लादयामास भक्ता ॥३९॥

भूतप्रेतःफलितगणनामारणोच्चाटनादि-
स्पर्शाश्मादेरपि च महिमा हस्तसामुद्रिकं च ।
वन्यैर्दस्युप्रभृतिभिरिति व्याहृतं यद्यदेव
प्रायः प्रख्यापितमथ सभा बृंहयामास तत्तत् ॥४०॥

ब्राह्माद्यस्त्राण्यपि च खचरत्वादिसिद्धीर्हिमाद्रेः
शृङ्गादेषा भरतवसुधां नूनमानेष्यतीति ।
वन्ध्यापुत्रानुसरणसमास्थापिकायां विमुग्धाः
सञ्जातास्था अकृतमतयः सन्त्यजन्ति स्म विद्याम् ॥४१॥

वर्षैरल्पैरथ पटुनटी सा शृगालाङ्गनानां
पाथेय्यासीद्विरहविधुरान्मुञ्चती हन्त भक्तान् ।
बद्धाशोऽस्यां हतमतिरसौ मूर्खदेवश्चिराय
व्यामूढः सन्किमपि बुबुधे नेतिकर्त्तव्यतां स्वाम् ॥४२॥

वन्ध्यापुत्रानुसरणसभा तां विना साऽप्यनाथा
वव्रे नाथं विटपटुमथो कालकूटाभिधानम् ।
दिव्याः शक्तीः कलयति करे वल्लभे पांसुलानां
सेर्ष्यस्तस्मिन्नभजत धृतिं नैव मूर्खः कदाचित् ॥४३॥

मूर्खत्वं स्याद्भरतवसुधावासिनां येन शश्व-
त्सिद्धेर्लोभैः कथमविरतं वञ्चितेभ्यश्च तेभ्यः ।
स्त्रीवित्तादेरलमधिगमः स्यात्सदा मादृशाना-
मित्थं चिन्तामगमदतुलां मूर्खदेवः कदाचित् ॥४४॥

तस्योत्कण्ठाकुलमतिचिरं ध्यायतश्चैत्यमूले
मूर्च्छामृच्छन्नथ कपिकृशः कोकिलोदारवर्णः ।
आशावासा नयनविषयं मुद्गरानन्दनामा-
यासीत्सिद्धः शिरसि कलयन्पीततृण्याशिरस्त्रम् ॥४५॥

कस्त्वं नग्नः कथय भगवन्नागतो वा किमर्थं
नूनं देवो भवसि विकटो देवयोनिस्तथा वा ।
इत्थं भीतः किमपि भगवद्दर्शनान्मूर्खदेव-
स्तं पप्रच्छ प्रणयिविधवाशाटके लीयमानः ॥४६॥

एतं मेघस्तनितविशदैरक्षरैः प्रत्युवाच
स्निग्धं पश्यन्प्रहसितमुखो मुद्गरानन्ददेवः ।
मा भैषीर्भो विदितयशस मुद्गरं पश्यसि त्वं
देवं वन्ध्यासुतचरणयोश्चारणं धन्यजन्मा ॥४७॥

सूर्यस्वामी बुधकविमहीभौमजीवग्रहा ये
मन्दाख्यश्चाप्युरणवरुणौ तत्र वासोऽन्तिमो मे ।
दिव्याः शक्तीस्तव समुदितस्येक्षितुं योगभूम्ना
भूमिं प्राप्तं जनमिममये विद्धि विद्वन्नमस्ते ॥४८॥

जन्मानर्घ्ये वरुणभुवने गर्जितं मातृभाषा
क्रीडा शक्रायुधनवतडिद्रोहिताद्यैश्च दिव्या ।
वासः कल्पद्रुमितिरुहतले सैकते देवनद्या
वन्ध्यापुत्रो गुरुरिति सुखं कः प्रवक्तुं ममेष्टे ॥४६॥

दिव्या' कुर्वन्गुरुरथ कथाः कुण्डकानीनपोटा-
भ्रूकुंशानामभजत सुरावेशमत्यर्थघोरम् ।
साक्षात्कुर्वन्पशुपतिमसौ नग्नदेवं महात्मा
ज्योतिर्लिङ्गे विपुलविभवे तस्य लीनश्चिराय ॥५०॥

वन्ध्यापुत्रे गतवति गतिं तामवाच्यामथाहं
मारीचस्य प्रकटयशसो हेमकूटाश्रमान्ते ।
ध्यायन्बाल्यप्रणयिनममुं भक्षितस्याहिफेन-
स्योग्राद्वेगान्न्यपतमतुले तीव्रमूर्च्छासमाधौ ॥५१॥

वल्मीकार्धान्तरितवपुषः कञ्चुकाढ्योरसो मे
जीर्यद्वल्लीनिबिडितगलस्योपचर्यास्थितस्य ।
न्यञ्चन्नीडावलिचितजटामण्डलस्य प्रकामं
दुष्यन्तोऽसावलभत नृपो दर्शनं भाग्यलभ्यम् ॥५२॥

काले गच्छत्यतिविपुलतां बिभ्रती श्मश्रुणी मे
प्रातिष्ठेतां हरितमुभयीमुत्तरां दक्षिणां च ।
एकं सक्तं स्मररिपुवटस्कन्धभागे तथान्य-
त्सुग्रीवाद्रावसजदचिरादाञ्जनेयस्य पुच्छे ॥५३॥

इत्थं श्मश्रूपचयमतुलं धारयन्नर्च्यमानः
पुत्राद्यर्थं तरुणकुलटापाङ्गनीराजनाभिः ।
एकं कृत्यं युगमतिगतं न व्यजानां प्रमोदा-
द्वन्ध्यापुत्रं गुरुमपि चिराद्विस्मरन्व्योममग्नः ॥५४॥

कैलासाद्रिं तुलयति हठाद्रावणेऽथोत्तरं मे
श्मश्रूदस्थाद्ध्रियति रभसोत्पाटितं च प्रसह्य ।
तत्क्षोभार्ते हनुमति ततो दक्षिणं कूर्दति द्रा-
गुत्खातं तद् व्यसनमगमं श्मश्रुणोर्विप्लवेऽहम् ॥५५॥

श्मश्रूत्तापादथ च तपसः संप्रभावात्स धूमं
दृष्ट्वा मौलिं मम गुरुभियस्तापसानां कुमाराः ।
धव्यत्यस्माद्वनमपि विभो मुद्गरानन्ददेवो
दाक्षायण्याः कुलपतिमिति ज्ञापयामासुरार्त्ताः ॥५६॥

भीतश्चित्ते कुलपतिरपि क्षिप्रमेवात्मयोगा-
न्मूर्च्छायां मां पतितमचिरात्प्रापयत्तीर्थराजम् ।
तत्रातिष्ठं तव सुचरितस्यावतारं प्रतीक्ष्य
मात्रालम्बः कथमपि गुरुश्मश्रुलोपार्त्तिदुःस्थः ॥५७॥

धर्मव्याख्याकलकलरवैरैषमः कुम्भकाले
ह्रेषानादैरिव मम गुरोरश्वकानां विबुद्धम् ।
दग्धा गेहाः सनरशिशवो वह्निशौचात्त्वयेति
गुल्माध्यक्षोऽधिकरणभुवं पङ्कसिंहोऽनयन्माम् ॥५८॥

मामालोक्य प्रणिहितदृशं पङ्कसिंहे पुरीषा-
ध्यक्षे श्रुत्वाधिकरणपतिस्तत्कृतं मेऽभियोगम् ।
रे रे मूर्खाः कथमिव नरः पावकावस्करः स्या-
दुच्चैरूचे सरभसमिति त्रासयन्भृत्यवर्गम् ॥५९॥

अश्वस्यान्त्रान्मुनिवरमुखाध्मायमानाद्रसाया
गर्भे वह्निं स्मरसि न कथं हा महाभारतोक्तम् ।
इत्याद्युक्तीरयमगणयन्न्यायवादप्रियाणां
मर्त्यं जानन्व्यमुचदथ मां भर्त्सयन्पङ्कसिंहम् ॥६०॥

हेतोरस्मात्तव चरणयोर्दर्शने मे विलम्बो
मन्तुं क्षन्तुं तमयि भगवन्नर्हसि प्रश्रितस्य ।
साक्षाद् दृष्टा विकटवदना प्रेयसी तेऽवतीर्णा
प्राप्तः कालस्त्वरय सुमते रासभीं द्रष्टुमेनाम् ॥६१॥

वन्ध्यापुत्रो मम गुरुरयं यः पुरोक्तोऽवतार-
स्त्वं तस्यासि प्रकटय निजं वैभवं भूग्रहेऽस्मिन् ।
यैषा याता विकटचरितोदक्पथात्तु प्रिया ते
तस्याः स्पष्टं परुषरसना रासभी सावतारः ॥६२॥

विज्ञानार्कं तम इव जडौ मन्यते बन्धुता वा-
मज्ञानान्धतमसमतुलं हन्त जानाति सूर्यम् ।
येनास्माच्च व्रजति न बहिर्गूथगर्त्तात्तदेत-
द्दिव्यं मोहाञ्जनमयि ददेऽवस्कराचार्यवर्यौ ॥७०॥

इत्युक्त्वा सा निभृतनिहितां भुक्तिकां पूतिजीर्णा-
मन्तःपूयां त्वरितमनयोर्दर्शयामास घोरा ।
गन्धेनास्या रघुवरशरेणेव हा ताटके यः
क्षिप्तो दूरं व्यलुठदवनौ मुद्गरानन्ददेवः ॥७१॥

घ्रात्वा गन्धं मुदितहृदयोऽजामिलस्यावतारो
हृष्यद्रोमा विकसितमुखो मूर्खदेवस्तु तस्याः ।
धन्या रण्डे त्वमसि चटुले योगसिद्धेति भूयः
स्तोत्रं शंसन्नवहितमनाः श्रद्दधे वाचमस्याः ॥७२॥

सर्वत्रैव प्रथय भगवन्दिव्यशक्त्यादिवादं
शंसन् सिद्धान्प्रकटय निजं यस्यकस्यावतारम् ।
पार्श्वे शश्वद् घटय विधवा स्वैरिणीर्याश्च काश्चि-
न्नैवेद्यादीन्यथ च विभजेः शिष्यवर्गेषु भूयः ॥७३॥

सिद्धेर्लोभादलसजनतां वीक्षितुं चावतारं
मूर्खाः सर्वे तरुणकुलटालिप्सया धर्मलिङ्गाः ।
उच्छिष्टाशापरवशहृदो दुष्टबालाश्च शश्व-
न्मुग्धाः सन्तस्तव मतममी लक्षशः संश्रयन्ते ॥७४॥

युक्तश्चेदं किमपि भगवन्नञ्जनं त्वं गृहाणे-
त्युक्त्वा सद्योविकटपरुषं रासभी सा ररास ।
दृष्ट्वा कुब्जेऽपि च विटपतिं हन्त साऽन्तर्दधे द्रा-
ग्ध्यायंस्तां च स्वभुवमगमद्धिक्कवो मूर्खदेवः ॥७५॥

प्रातर्भूयोऽप्यथ मलसरस्तीरमासाद्य पृच्छ-
न्दासांस्तेभ्यः स जरठविटां तां गतां द्वीपमन्यत् ।
श्रुत्वा मूर्च्छन्कथमपि मनस्तामनुप्रेष्य दुःस्थ-
स्तन्वा चैत्यं सुगतहयभृद्राजधानीमिवागात् ॥७६॥

तस्याः शोभामथ सुरुचिरेऽवस्करस्यैष गर्त्ते
ध्यायं ध्यायं व्यलुठदवनौ ताडयन्नात्मवक्षः ।
काले चास्मिन्नशरणगतिर्मुद्गरानन्ददेव-
स्तृण्यामौलिः पुनरपि दधे तस्य नेत्रातिथित्वम् ॥७७॥

अस्याभ्यर्णे शतमुखतया सागरस्येव गङ्गा
तस्योद्दामद्विगुणितरया प्रावहच्छोकधारा ।
दृष्टे बन्धौ प्रियविरहजं हन्त को नाम दुःखं
रोद्धुं सद्यः प्रभवति हठाद्वश्यचित्तोऽपि मर्त्यः ॥७८॥

यत्नाद्बाष्पं कथमपि वशी सन्निरुध्य प्रियाया
वार्त्तामिच्छन्नमुमथ चिरान्मूर्खदेवो जगाद ।
कः स्यादस्यां विपदि शरणं मुद्गर त्वां विना मे
याचे तस्मात्किमपि भगवन् धृष्टतां चेत्क्षमेथाः ॥७९॥

जातं वंशे भुवनविदिते वर्करानन्दकानां
जानामि त्वां विकृतिपुरुषं कामरूपं महात्मन् ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमपगुणे नोत्तमे लब्धकामा ॥८०॥

सर्वज्ञ त्वां किमिव कथये ज्ञातमेवात्मवृत्तं
संदेशं मे हर विटपतिच्छद्मविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरनृता नाम धूर्त्तेश्वराणां
बाष्पाम्भोधिस्थिततटरितडिच्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥८१॥

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
प्राणायामैरपि ननु सखे येन गन्तुं क्षमेथाः ।
स्थाने स्थाने तरुणविधवादृष्टिपातैः प्रमोदः
स्थूलाभ्यूषैः स्वपशुपिशितैः स्याच्च शान्तिः क्षुधायाः ॥८२॥

ज्योतिर्लिङ्गं पुनरपि शिवस्यैति वृद्धिं किमित्थं
दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धवाराङ्गनाभिः ।
स्थानादस्मात्प्रचुरकितवान्निष्पतावाङ्मुखस्त्वं
नन्दन्स्निग्धैः कपटयतिनां शुष्कहस्तावमर्शैः ॥८३॥

पृष्ठे कस्याप्यथ पथि यतो भाटकस्यन्दनस्य
क्रान्त्वा सद्यः फलकमकशाद्यातभीतः प्रसर्पन् ।
गङ्गासेतोर्विपुलरुचिरस्यान्तिके बाष्पयान-
स्थानं गत्वा कतिचन कलास्तत्र यानाय तिष्ठेः ॥८४॥

निद्रादोषादथ कवलितस्याहिफेनस्य दोषा-
च्छून्यध्यानाच्चपलकुलटापादघातस्मृतेर्वा ।
आकौमारानुसृतविषमाचारधारोपनीता-
पस्माराद्वा न यदि कलयेर्बाष्पयानागमं चेत् ॥८५॥

स्थूलाभ्यूषैः सपशुपिशितैर्वर्त्तयंस्तत्र मूढः
जीवाम्यश्नन्विमलमनिलं योगवर्त्त्येति जल्पन् ।
अक्षोभ्यः सन् कतिचन विभो वासरांस्तत्र तिष्ठे-
र्दैवात्कस्मिंश्चिदहनि भवेद्वाष्पयानस्य लाभः ॥८६॥

स्थूलाभ्यूषे सपशुपिशिते क्षारनीरे हिमे च
द्रव्यं प्रायः क्षपयसि यदि क्षिप्रमुत्थाप्य धूलिम् ।
घ्रातायस्मात्प्लुवति मनुजे योगपूर्णाद् गजेन्द्रो
नासारन्ध्रात्प्रभवति सखे तत्सुखं निर्मिमीथाः ॥८७॥

विक्रीयैतत्पथिक निकटे भूरि वित्तं च लब्ध्वा
प्राप्ते बाष्पानसि विश जवाच्छुल्कपत्रं विनैव ।
स्थाने स्थानेऽधिकृतपुरुषान् वीक्ष्य दूराच्छनैस्त्वं
तिष्ठेर्ब्रह्मन्ल्लकटरचितावस्करागारमध्ये ॥८८॥

गङ्गारेवाप्रभृतिसरितः सेतुभिर्विप्रतीर्य
मुम्बामम्बामिव च वणिजां प्राप्य तीरे पयोधेः ।
अङ्गैः सङ्गं कमलमृदुलैः पारसीकाङ्गनानां
लब्ध्वा लेह्यस्यमृतमधुरं मुद्गरायुःफलं त्वम् ॥८६॥

तत्र स्पष्टं कनकघटिताः कामिनीर्भट्टियानां
पश्येर्यासां निविडवपुषां निस्तुलामङ्गलक्ष्मीम् ।
वीक्ष्योन्मत्तः पशुरिव मुहुर्मन्दिरस्याधिपोऽपि
प्रायो लास्यं रचयति निजं गौरवं पृष्ठतोऽस्यन् ॥६०॥

व्यक्तोर्जान्ते कमपि रुचिरं तत्र चित्रं वहित्रं
प्राप्य स्वस्थो जलनिधिजले प्रारभस्व प्रयाणम् ।
द्वीपान्पश्यन्प्रवहणशतालोकधन्यस्तरङ्गा-
स्फालस्फीतावहनविततीर्लङ्घयन्नापगानाम् ॥६१॥

अश्नन्नश्नन्नशनशकटे दिव्यभोज्यं यथेच्छं
तुङ्गाभोगे प्रकटकुटटारःस्थले दत्तदृष्टिः ।
द्राक्षामद्यं तुहिनशकलैः शीतलैः संपिबंस्त्वं
वर्त्मश्रान्तिं गमयसि पुरा बाष्पयानेन विद्वन् ॥६२॥

संत्यज्याराद्थ जलनिधेर्मित्र पारस्यबाहुं
मुक्तागारं यतिमिव सखे गच्छतो दक्षिणेन ।
शोणाब्धिस्ते नयनविषयं धर्मयुद्धं ततान-
मारव्यानां रुधरसरितेवैष्यति रक्तशोणः ॥६३॥

गच्छंस्तेन प्रथितविभवामुत्पथां दक्षिणेन
स्फाराङ्गाणामिव सुमहतीं शिल्पकीर्त्तेः पताकाम् ।
तीर्त्वा रम्यामथ कृतमते तां सुवीजाख्यकुल्यां
मध्याम्भोधिं प्रविश भगवन्नुत्तरेणाजपुत्रान् ॥६४॥

आराद् गच्छन्यवनधरणेः प्राच्यविद्यानिधानाद्
दूरात्पश्यन्कुतुकविवशो रोमकान्साहसाङ्कान् ।
मध्याम्भोधिं हनुबलधरामुत्तरेण प्रसर्प-
न्गान्तास्यग्रे हरिकुलमुखं वीक्षमाणः सुफेनान् ॥६५॥

द्रक्ष्यस्यग्रे विततमतुलं लङ्घयित्वा सुफेना-
न्वार्त्तातन्त्रीशतयुतजलं मित्र तुङ्गाम्बुराशिम् ।
राज्ञां पोतैः प्रवहणचयैः किं च सांयात्रिकाणां
मन्थानाद्रेरिव शिशुकुलैर्मथ्यमानं समन्तात् ॥६६॥

पारे तस्य प्रथितयशसां तत्र धूर्त्तेश्वराणां
राज्यं द्रक्ष्यस्यतुलविभवं मक्षिकाराज्यपार्श्वे ।
यस्मिन्विद्याप्रणयविवशास्तैलकारा अपि द्रा-
क्कोटीर्दत्वाध्ययननिलयान्भूरिशः स्थापयन्ति ॥६७॥

उत्तरमुद्गरः ।

शिल्पागारैर्नगरततयः सागरा युद्धपोतैः
शैला ज्योतिर्गणितभवनैः सेतुभिर्यत्र नद्यः ।
कुल्याम्भोभिर्जनपदपथा राजमार्गैश्च देशा
विद्युद्दीपैः शशधरनिभैर्वीथयो यत्र रम्याः ॥९८॥

यद्वास्तव्यः प्रचरति सरित्सागरे धूमपोतै-
र्भूमौ विष्वक् पवनशकटैर्बाष्पविद्युच्छताङ्गैः ।
दूरं चित्रैः पतति च वियद्वर्त्मनि व्योमयानै-
रित्थं लोकत्रयमपि करेऽवस्थितं मन्यमानः ॥९९॥

श्वेतद्वीप्यानपि नयविदस्तान्विजित्याहवेषु
व्यस्यायोग्यं वनचरकुलं कानने विप्रकृष्टे ।
आनीतायां वशमतिबलैरुर्वरायां प्रजानां
भोगाद् भूयो दहति दहनो यत्र गोधूमशस्यम् ॥१००॥

विद्युद्दीपव्यजनलसिता यन्त्रसोपानगम्या
शेषांशाश्च प्रकटविभवा ये परार्ध्योपबर्हाः ।
दीप्तोद्योगैरतुलमतिभिर्ज्ञाननिष्ठैः श्रितास्ते
चत्वारिंशत्क्षितिकृतरुचो यत्र सौधा विचित्राः ॥१०१॥

यद्विद्वद्भिः प्रकटमतिभिर्हन्त निर्माय तन्त्री-
वार्त्तायन्त्रं जगति विदितं च स्वनग्राह्यन्त्रम् ।
श्वेतद्वीप्यानपि ऋषिवरान्वाष्पयानादिकर्त्तॄ-
ञ्जेतुं शश्वद्विहितमतिभिर्भूः सनाथीकृतेयम् ॥१०२॥

स्थूलाभ्यूषैः सपशुपिशितैर्वर्त्तमानोऽपि नित्यं
शास्त्यन्यान्विकृतमतयो घासमात्रोपभोगम् ।
यत्राश्रद्धाः सुरपितृकुले पिण्डहोमादिशून्या
धूर्त्ता मुग्धान्सुरपितृरुचीन्घोषणैर्वञ्चयन्ति ॥१०३॥

श्रान्ताः कृत्यैरहनि विहितैरीप्समाना विनोदं
सायं ज्योत्स्नामयतनुरुचा मुष्टिसंमेयमध्याः ।
धूर्त्तैर्भूयस्तरुणयतिभिस्तादृशैः कृष्णरूपैः
प्रेम प्रेमेत्युपचितरवैर्यत्र नृत्यन्ति रामाः ॥१०४॥

तत्र स्त्रीणां ललितललितैरङ्गहारैर्विमुग्धो
दिव्यान्भोगान्कृतमतिरुशन्भोगसौधेषु विद्वन् ।
मेकानन्दादिवदयि सखे विस्मरन्योगमूर्च्छां
नूनं प्राप्स्यस्युपचितमदः प्रेममूर्च्छां दुरन्ताम् ॥१०५॥

गच्छन्मार्गे सरितमथ चेन्मिश्रसिप्राभिधानां
पश्येद्दैवादवहितमना विद्धि पारेऽथ तस्याः ।
वृक्षैः शश्वत्फलभरनतैर्नित्यरम्योपकण्ठे
तस्यागारं ननु विटपतेर्येन नीता प्रिया मे ॥१०६॥

नौकाशुल्कं यदि न सुलभं तत्र ते स्यात्तदा त्वं
धृत्वा जन्तोः शवमयि सखे दारुखण्डं तथा वा ।
गाढप्रेमा सपदि तुलसीदासवत्तां प्रतीर्य
प्राप्स्यस्यग्रे विटपतिगृहं रासभीचाररम्यम् ॥१०७॥

द्वारे यस्य स्फुरति तुलसी यत्र रक्षी हनूमा-
न्मातेत्युक्ता चपलविधवा स्वामिनी यत्र चान्तः ।
च्छिन्नश्मश्रुः स च विटपतिः कामिनीवेषधारी
यत्र स्वामी नटति सततं बालकैः स्त्रैणवेषैः ॥१०८॥

नासां भोक्तुं यदि च हनुमान्यामिकस्तत्र तिष्ठे-
न्नागच्छेत्ते सपदि भगवन्रामरामेति जल्पन् ।
पश्चाद्भागे निलयनिरयस्यास्य कुत्रापि लीनो
धैर्यात्सूर्यास्तमयसमयं प्रत्यवेक्षस्व विद्वन् ॥१०९॥

यत्रोद्दामा न किल तुलसी यत्र नार्यो हनूमां-
स्तस्मिन्मार्गे पटुतरमतेऽवस्करागारपार्श्वे ।
दैवात्कञ्चिज्जरठभुजगं लम्बमानं गवाक्षा-
दालम्ब्य द्राङ् निलयनिरयं तं विशेर्वश्यचित्तः ॥११०॥

गत्वा सद्यो मशकशिशुतां शीघ्रसंपातहेतोः
पायुप्रक्षालनगृहगते पूतिगन्धे निषण्णः ।
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्त्तुमत्युग्ररूपां
विद्युद्दीपप्रखरकिरणामात्मनो दन्तभासम् ॥१११॥

स्थूला श्वेता परुषरसना शीर्णकन्दाधरोष्ठी
मध्ये स्फारा स्तिमितशुनकप्रेक्षणा तुङ्गनाभिः ।
श्रोणीकार्श्यात्प्रखरगमना दूरनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्यान्नरविकसनात्पूर्वजा वानरीव ॥११२॥

तां जानीथाः प्रलपनपटुं मृत्युदेवीं द्वितीयां
दूरीभूते मयि सहचरे तत्र घूकीमिवैकाम् ।
गाढामोदां तनुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु वृद्धां
जातां मन्ये विटपतियुतामश्वभार्यामिवान्याम् ॥११३॥

नूनं तस्याः प्रलपनवशाच्छूनवक्त्रं प्रियाया
निःश्वासानामतिजडतया शीर्णनीलाधरोष्ठम् ।
दीर्घग्रीवं शिर उपलसद् व्यक्तिहीनालकत्वा-
त्कान्ति शश्वद्वहति जरठस्यायसोलूखलस्य ॥११४॥

आलोके ते निपतति पुरा सा विटाङ्कस्थिता वा
व्याख्यानैर्वा तरुणजनतामोहनेऽतिप्रसक्ता ।
श्लिष्यन्ती वा परुषरसनं रासभं गर्त्तमग्नं
पृच्छन्ती वा शुनकमयि भो मूर्खदेवः स्मृतस्ते ॥११५॥

तस्मिन्काले सुभग यदि सा दैवयोगात्प्रबुद्धा
स्यात्तां सद्यश्चटुलचरितां मूर्च्छयेर्मूर्धकम्पैः ।
घोरा ह्येषा विकृतवदना जाग्रती भोक्तुमेव
त्वामुद्दण्डं द्रुतमभिसरेत्पातयेच्च प्रसह्य ॥११६॥

तां संमूर्च्छ्य स्वमलकणिकात्यूष्मलैर्मूर्धकम्पैः
प्रेतावेशादिव विदधतीं चेष्टितान्यद्भुतानि ।
तस्मिन्धूर्त्ते विटकुलपतौ क्वापि दूरस्थिते त्वं
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैः स्वैरिणीं प्रक्रमेथाः ॥११७॥

भर्त्तुर्मित्रं चपलविधवे विद्धि मां मुद्गराख्यं
तत्संदेशैः स्मृतिमगमितैरागतं त्वत्समीपम् ।
यो वृन्दानि श्लथयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
तीव्रोद्धत्यैश्चटुलकुलटानीविमोक्षोत्सुकानि ॥११८॥

इत्याख्याते विटमिव चिराद् वृद्धवाराङ्गना सा
त्वामौद्धत्याच्चपलहृदया दृष्टिपातैर्दहन्ती ।
श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता मुद्गर स्वैरिणानां
भर्त्तुर्वृत्तं सुहृदुपनतं वेदनामेव धत्ते ॥११६॥

तामायुष्मन् मम च बचनादात्मनश्चोपकर्त्तुं
ब्रूया जारस्तव चपलिके कामगिर्याश्रमस्थः ।
दुःखेनार्त्तो विकटचरिते दुःखमिच्छत्यसौ मे
शश्वद्वाच्यं दुरितकृतिनां प्राणिनामेतदेव ॥१२०॥

स्थूलः स्थूलं विकटवदने गाढशैत्यैश्च शीतं
रुग्णै रुग्णां विरतकुतुकै कौतुकेनातिशून्यम् ।
शीतश्वासं तुहिनशिशिरश्वासिभिर्दूरवर्त्ती
जारः स्वाङ्गैः स्पृशति चपले तेऽङ्गकं वेदनार्त्तः ॥१२१॥

गूढाख्येयं यदपि किल ते यो विटानां पुरस्ता-
दुच्चैः क्रुद्धः कथयितुमभूत्पादघातादिशङ्की ।
सोऽयं दिव्यश्रवणविषयो दिव्यदृष्ट्याद्य दृश्य-
स्त्वां पारुष्यप्रगुणितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥१२२॥

अश्मस्वङ्गं स्तिमितशुनकप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां विकृतकलसे दर्भजालेषु केशान् ।
उत्प्रेक्षेऽहं त्रुटितविटपश्रेणिषु भ्रूविभङ्गा-
न्हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥१२३॥

त्वामुत्प्रेक्ष्य प्रकटितरुषं पादघाताय सज्जा-
मात्मानं ते खुरविनिहतं यावदिच्छाम्यभव्ये ।
रोषात्तावन्मुहुरुपचितात्त्वत्सकाशात्पलाये
क्रूरः पादाहतिमपि न ते मर्षयत्येष रोषः ॥१२४॥

मामाकाशप्रणिहितपदं निर्दयाघातहेतो-
र्लब्धायास्ते कथमपि मया दिव्यसंदर्शनेषु ।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो नाधमे पुंसखीनां
पूगस्थूलान्युपवनभुवि ष्ठीवनान्युद्भवन्ति ॥१२५॥

भित्त्वा सद्यो जरठममरं पत्तनं नालिकानां
ये तद्गन्धस्तुतिमलजुषः सर्वतः संप्रवृत्ताः ।
ते सेव्यन्ते चपलकुलटे हा परीवाहपाता
व्याख्यानं ते क्वचिदपि भवेज्जातु तत्रेति लोभात् ॥१२६॥

व्याख्याधूलौ चपलरसने ते वियद् व्याप्नुवत्यां
विज्ञानार्कोऽस्तमयमयते सर्वथा लुप्तबिम्बः ।
भक्तिज्योत्स्ना भजति विलयं कर्मतारा न दृश्या
मोहध्वान्तं प्रसरति मुहुर्दम्भघूका रटन्ति ॥१२७॥

सा त्वं दूरे वससि यदि चेद्बन्धुता हा हता ते
तत्कल्याणि प्रकटय मुखं पादयोस्ते पतामः ।
प्रत्यध्वं च प्रतिगृहमथ प्रत्यविद्यालयं च
व्याख्याह्वेषा तव पुनरसौ रासभान्संधिनोतु ॥१२८॥

आगच्छेश्चेद्भगवति मलानन्दनाम्नाथ सख्या
संयोगं ते सपदि घटये येन संमन्त्र्य सार्धम् ।
विश्वाविद्यालयमपि सुखं भारते निर्मिमीथा
यस्माल्लब्धा सकलजनता हन्त सर्वा अविद्याः ॥१२९॥

शुष्कं पर्णं परिणमयितुं मोदकापूपकेषु
प्राणायामैर्वियति चरितुं वायुतो दुग्धमाप्तुम् ।
पुत्रानुत्पादयितुमरणेरश्मरन्ध्रे प्रवेष्टुं
रामं भूमौ भ्रमयितुमलं चिन्तयाह्वातुमन्यम् ॥१३०॥

रन्तुं देवैः क्षवथुविधिना बाष्पयानं विधातुं
लद्दायुद्धं घटयितुमथो योगवस्त्यानिलाशात् ।
सर्वं द्रष्टुं मलिनमुकुरे प्रेक्षितुं चावतारा-
न्बालैर्वृद्धैरथ च तरुणैः कौशलं यत्र लभ्यम् ॥१३१॥

यस्मिन्वृद्धोत्तमवदुहते कौतुकात्केपि विज्ञा-
स्तस्याधस्तात्तितउमपरे धारयन्ते पयोर्थम् ।
प्राणायामैः पतगतनवः संतरन्त्यम्बरेऽन्ये-
ऽभ्यस्यन्तः प्राक्करणमलिनेऽन्ये तितीर्षन्ति चाम्भः ॥१३२॥

चर्मोत्कर्त्तोद्धृत शिविकयोद्वाहतः स्यात्प्रजाप्ति-
बुंद्धेर्वृद्धिं जनयति शिखा कूर्चरक्षा तथा वा ।
सिद्धेर्हेतुर्भवति न च वा सिद्धलालावलेहो
वादैरायुः क्षपयति सदैवेदृशैर्यत्र लोक ॥१३३॥

नीतिक्षोभैर्विविधिषु सततं हन्त विज्ञानवादै-
र्मालाकर्षैरपि च खटिकाभस्मलेपादिकृत्यैः ।
प्रेतच्छायाग्रहणकुतुकैर्दारुखण्डेरणैश्च
प्रायश्छात्रोऽध्ययनसमयं नाप्नुते सिद्धिकामः ॥१३४॥

अस्मिन्विद्याविलयनफले स्थापिते भारतेऽस्मिन्
विश्वाविद्यालय उपचितं मोहमन्तर्दधाना ।
स्थास्यत्येषा भरतवसुधावस्करश्वभ्रमध्ये
वन्ध्यापुत्रानुसरणसभानुग्रहाणां स्मरन्ती ॥१३५॥

प्राणान्तो मे प्रमदशयनादुत्थिते दण्डपाणौ
मैनं कालं गमय चपले लोचने मीलयित्वा ।
एह्येह्यावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतमले तत्र गर्त्तैकदेशे ॥१३६॥

भूयश्चाहं त्वमसि विपिने कण्ठलग्ना पुरा मे
शान्तिं गत्वा किमपि विकृता प्राहरः पादघातैः ।
घोरारावं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः साक्षात्कितव निरतस्त्वं सखीभाववस्तु ॥१३७॥

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनाद्धषकवदने मय्यविश्वासिनी भूः ।
स्नेनानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगाद्
दृष्टे वस्तुन्यपि बहुलिताः कौतुकं वर्धयन्ति ॥१३८॥

निस्तुषैवं प्रथमविरहोदग्रमोदां सखीं ते
वारां राशेः प्रवहणशतक्षोभितात्संनिवृत्तः ।
सोपालम्भैरकुशलमयैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रायो वज्रादपि दृढतरं जीवितं स्रंसयेथाः ॥१३९॥

कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
मन्दं मन्दं स्तनसि न कथं मातृवाचाऽद्य विद्वन् ।
निःशब्दोऽपि स्रवसि भगवन् क्षारमम्बु प्रकामं
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥१४०॥

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्त्तिनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्धया ।
ब्रह्मन्निष्टान्विचर विषयान्प्रौढतासंभृतश्री-
र्मा भूदेवं क्वचिदपि च ते स्वैरिणीविप्रयोगः ॥१४१॥

इत्युक्तोऽसौ विटपतिगृहं मुद्गरानन्ददेवो
गत्वाशंसत्स किल विधवां मूर्खदेवस्य वृत्तम् ।
शुश्रावैतद्विटपतिरथ प्रायशः सर्वमेवं
पायुप्रक्षालनगृहगतः क्रोधदग्धाखिलाङ्गः ॥१४२॥

श्रुत्वा वार्त्तां यतिसमुदितां तां विटेशोऽपि सद्यः
स्वप्राणान्तं विकलहृदयः संविधायातिरोषात् ।
संयोज्यैतौ प्रकटितशुचौ दम्पती प्रेतरूपौ
दुःखान्युग्राण्यविरतमसौ भोजयामास पापः ॥१४३॥

तस्मिन्मृत्युं विटकुलपतौ प्रापिते मुद्गरेण
व्यक्तं शोकाद्विकलहृदयौ दम्पती तु प्रसह्य ।
वन्ध्यापुत्रानुसरणसभाधीश्वरत्वाधिचक्रे
बद्धस्पर्धौ द्रुतमभवतां व्यापदा तस्य रिक्ते ॥१४४॥

आसीद्घोरः कलिरथ तयोस्तत्सभायाः पतित्वं
नाशायास्या भरतधरणेर्वाञ्छतोम्छद्मभाजोः ।
वित्तैर्वाग्भिः कुटिलकपटैर्दिव्यशक्तिप्रवादै-
र्यत्रान्योन्यं किल शठवरौ चिक्लिशाते चिराय ॥१४५॥

ज्योतिर्दिव्यं विटपतिशिरोरन्ध्रतो निर्गतं मे
रात्रौ साक्षादतुलविभवे मूर्धरन्ध्रे प्रविष्टम् ।
सिद्धाः प्राप्ता नयनविषये दीप्तरूपाश्च भूयः
प्राहुर्मा हे भवति सदसो युज्यते ते पतित्वम् ॥१४६॥

श्रुत्वा तस्या वदनकुहरात्सिद्धिवाणीमिवेत्थं
वन्ध्यापुत्रानुसरणसभास्तारवर्गो विमुग्धः।
सद्यो वव्रे चपलरसनां तां सभायाः पतित्वे
यच्छ्रुत्वासावतनुत विभुर्मुद्गरोऽप्यट्टहासम् ॥१४७॥

प्राप्यं धन्यैरमरुकविना यत्प्रियायाः पतित्व
शस्तं भूयस्तदकृतमतिर्मूर्खदेवस्त्वनिच्छन्।
वन्ध्यापुत्रानुसरणसभां तां विहायातिरुष्टः
कल्याणार्थी शरणमगमद् ब्लाकटानन्ददेवम् ॥१४८॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायपण्डितरामावतारशर्मणा प्रणीतं
मुद्गरदूतं समाप्तम्।
(पेशावीये १९१४ अब्दे विरचितम्)

Notes to special words in the Mudgaradutam

मुद्गरदूतस्थानां विशिष्टशब्दानां आङ्ग्लभाषया पर्यायसूचनम् ।

१. अनृता—New York
२. स्थूलाम्पूपः—Loaf
३, वाष्पयानस्थानम्—Railway Station
४. क्षारनीरम्—Soda Water
५. हिमम्—Ice
६. वाष्पयानः—Railway Carriage
७. शुल्कपत्रम्—Ticket
८. अधिकृतपुरुषः—Officer (here Ticket collector)
९. व्नक्तोर्जान्तिम्—Victoria Terminus
१०. अशनशकटम्—Restaurant Car
११. द्राक्षामद्यम्—Grape wine
१२. तुहिनशकलम्—Bits of ice
१३. पारस्यबाहुः—Persian Gulf
१४. शोणाब्धिः—Red Sea
१५. आरब्याः—Arabians
१६. स्फाराङ्गाः—French
१७. सुवीजकुल्या—Suez Canal
१८. मध्याम्भोधिः—The Mediterranean Sea
१९. अजपुत्रा—Egypt
२०, रोमकाः—Romans
२१. हनुबलधरा—Italy
२२. हरिकुलमुखम्—Strait of Gibralter
२३ सुफेनाः—Spain
२४, वार्त्तातन्त्री—Cable
२५. तुङ्गाम्बुराशिः—Pacific Ocean
२६. धूर्त्तेश्वराः—Americans
२७. मक्षिका—Mexico
२८. पवनशकटम्—Motor Car
२९. व्योमयानम्—Aeroplane
३०. श्वेतद्वीप्याः—The English
३१. स्वनग्राहयन्त्रम्—Gramophone
३२. मिश्रसिप्रा—Mississipi

धीरनैषधम् ।

प्राक्कथनम् ।

इदं खलु धीरनैषधं काश्यां कवेर्महामहोपाध्यायस्य श्रीगङ्गाधरशास्त्रिणोऽन्तेवसता श्रीमता महामहोपाध्यायेन साहित्याचार्येण पण्डितरामावतारशर्मणा श्रीहर्षकवेर्नैषधीयचरितमधीयानैः सहाध्यायिभिस्तदीयां कवित्वशक्तिं जिज्ञासुभिः पुण्यश्लोकस्य महाराजनलस्य दमयन्त्याश्चाद्भुतं चरितं रूपके दिदृक्षुभिः सानुरागं सानुबन्धं सकौतुकं चाभ्यर्थितेन पञ्चदशवर्षवयस्केनैव प्रणीतमासीत् ।

तच्च ममाग्रजेन गुरुणा प्रणेत्रा मद्भक्तिपराधीनेनातिप्रीतेनानास्वादितपूर्वरूपकरसास्वादनलोलुपोऽहं सर्वप्रथममाद्यं स्वकाव्यमध्यापितः । एकदा स्वगुरोः श्रीगङ्गाधरशास्त्रिण दर्शनाय तदन्तिकमुपनीतस्तेन किमपि रुचिरं पद्यं श्रावयितुमादिष्टो धीरनैषधस्य नान्दीमपठम् । तामाकर्ण्य भृशं प्रीतेनामुना जिज्ञासितं येन प्रणीतस्य कस्य ग्रन्थस्येदं पद्यमिति । अथ समग्रमेतन्नाटकं दर्शयितुमादिष्टेनाग्रजेन मे समुपहृतमाद्योपान्तमिदं पुस्तकमवलोक्यातिसंतुष्टेन भृशं प्रशस्य ग्रन्थकर्त्ता "रामावतार, त्वं महाकविर्भूया" इत्याशिषा संयुयुजे गुरुवरेण ।

मोदगिरि (मुंगेर) राजकीयविद्यालयस्य
भूतपूर्वप्रधानसंस्कृताध्यापकेन
श्रीकान्तशर्मणा ।

ग्रन्थकर्त्तुः परिचयः ।

विलसत्सरसाचलोत्कलिकाशालिनि सारवे तटे ।
श्रुतिधर्मपरम्परा छपरा नाम पुरी विराजते ॥१॥

रघुनाथपदाम्बुजार्पणात्परिपूतैः सरयूजलैः श्रिताम ।
श्रुतिपाठपराहतेऽमरात्क इमां वर्णयितुं क्षमो भवेत् ॥२॥

अच्छद्मसच्छायवलक्षसून-
तुच्छान्यगुच्छोच्छलिताच्छकच्छाम ।
पुण्यां दधत्याः सरयूं सनीडे
यस्याः कृतार्थं छपरेति नाम ॥३॥

तत्राभवद्भवपदाम्बुजसक्तचेता
नेता श्रुतीरितपथस्य किल द्विजन्मा ।
दिक्कुम्भिकुम्भतटभासुरकीर्त्तिदामा
धामाधिकः प्रथितकोद्रवशर्मनामा ॥४॥

सुधारसालिङ्गितभारतीभरे
समुल्लसत्सूरिसभासु भासरे ।
प्रजल्पति प्राप्तविरञ्चिवैभवे
न कोऽद्रवत्कोद्रवशर्मकोविदे ॥५॥

श्रीदेवनारायणशर्मनाम्न-
स्तदात्मजस्याखिलसूरिमौलेः ।
रामावतारेण सुतेन नत्वा
गुरुं कृतं काव्यमिदं मनोज्ञम ॥६॥

ग्रन्थकर्त्तुः गुरोः परिचयः ।

माद्यत्कोविदवारणेन्द्रघटया सारस्वताख्ये ह्रदे
दुर्गाहे, दधतां महोत्पलरुचं गाधेतरे सद्रसे ।
ज्ञानामोदिमरन्दबिन्दुमुदितच्छात्रालिमालाभृतां
श्रीगङ्गाधरशास्त्रिणां मयि भवेद् दृष्टिर्दयार्द्रा चिरम् ॥१॥

शश्वत्स्तनन्धयसुधाकरशेखरस्य
देवस्य पावनतमा स्फुटसन्निधानात् ।
विद्याविलासवसतिर्नगरी प्रतीता
वाराणसीति भजते महतीमभिख्याम् ॥२॥

उत्तुङ्गसौधकलितां विवलत्तरङ्गा
गङ्गा हिमालयतटीमवगम्य रम्याम् ।
यां चन्द्रचूडचरणाम्बुजवासपूतां
हातुं मनागपि समुत्सहते न जातु ॥३॥

उद्दामरूपकलितप्रियकोपयुक्त-
बालोज्ज्वला सुविमला सुरसिन्धुशुद्धा ।
एषा हिमालयधरेत्यधितिष्ठतीष्टां
यामिन्दुबन्धुरजटो भगवान्पिनाकी[१] ॥४॥

तस्यां कस्यांचन चिति सदा सक्तचेता व्यपेता-
शेषश्रान्तिर्विगलितभवभ्रान्तिरासीन्महात्मा ।
आशान्तेभ्यः कुतुकितहृदोपेत्य विद्वज्जनेन
जुष्टाभ्यर्णः कविकुलगुरुः श्रीनृसिंहाभिधानः ॥५॥

१, पर्वतपक्षे उद्दाम्नां रूपाख्यमृगविशेषयुक्तानां प्रियकाणां मृगविशेषाणामुपयुक्तैः (राङ्कवारि-चस्त्रनिर्माणे) प्रबालै रोमभिरुज्ज्वला । अन्यत्रोद्दामसु विशृङ्खलमज्यासङ्गिषु सुरूपेषु प्रियेषु कोपवतीभिर्युवतिभिरुज्ज्वला । हि इति हेतौ निश्चये वा । मा या लक्ष्म्या आलयधरा गृहभूः ।

गुरोः परिचयः ।

गोत्रावतंसोऽम्बुधिगामिकीर्त्ति-
सरित्प्रवाहोऽमृतलाभहेतुः ।
नमन्दरोद्यद्रुचिरत्र विद्व-
त्कुलेषु यो मन्दर एव जातः[1] ॥६॥

व्याप्तं सप्तसमुद्रमुद्रवसुधां सप्ताश्वधाम्नः सदा
सप्तद्वीपसमेतसूरिविनुतं सप्तापि लोकान्गतम् ।
गीतं सप्तकुलाद्रिमौलिनिवसत्स्वर्गाङ्गनाभिर्नृणां
सन्तापानधुना धुनाति विधुना तुल्यं यदीयं यशः ॥७॥

ज्येष्ठः पुत्रो बहुत्रोदितगुणगरिमा तस्य विश्वावदातैः
कीर्त्तिव्रातैरपातैर्धवलितवसुधो वाक्सुधोद्गारसारैः ।
आस्ते संसारदावानलविकलतरं जीवयञ्जीवजातं
सातङ्कालोकिलोकोद्धृतबुधविनुतः सूरिगङ्गाधराख्यः ॥८॥

पौरस्त्येऽब्धितटे कलिङ्गजगजप्रोद्दण्डदन्तच्छला-
द्वेलावेल्लदमन्दसुन्दरमिलन्मुक्तामिषाद्दक्षिणे ।
पाश्चात्ये च पयःपयोधिलहरीडिण्डीरपिण्डोपधेः
कीर्त्तिर्यस्य विभाति शीतशिखरिव्याजात्सदैवोत्तरे ॥९॥

जडमूर्त्तिनापि तस्य तु
रुचिधाम्न पादसन्निधितः ।
काव्यामृतमिदमब्जे-
नेव मयोद्भावितं रुचिरम्[2] ॥१०॥

प्रह्वो रामावतारशर्मा ।

---

१. पक्षेऽमृतस्य मोक्षस्य । अत्र संसारे दरमीषदुद्यती रुचिरिच्छा यस्य स विरक्तो विद्वत्कुलेष नमन् विनयं दर्शयन् । न मन्दरस्येवोद्यती रुचिः शोभा यस्येति तु विरोधः । गोत्रायाः गोत्राणा गिरीणां वा ।

२. कविपक्षे—जडमूर्त्तिना मूढेन रुचिधाम्नस्तेजोनिधेस्तस्य चरणसन्निकर्षात्, चन्द्रपक्षे जलमय-रुचिधाम्नः सूर्यस्य किरणसम्पर्कात्, पद्मपक्षे जले मूर्त्तिर्यस्येति । शेषं चन्द्रवत् । यथा चन्द्रेण सूर्यकरसम्पर्कादेव सुधा मकरन्दश्चोद्भाव्यते तथा मया तस्यैव कृपयेदं कृतमिति भावः ।

धीरनैषधम् ।

श्रीकृष्णोरसि कौस्तुभच्छविरिव ध्वान्तावृते व्योमनि
प्रत्यग्रा शशिनः कलेव निकषे रेखेव जाम्बूनदी ।
प्रावृड्वारिधरेऽचिरद्युतिरिव श्रीकण्ठकण्ठे भृशं
संसक्ता गिरिजाभुजव्रततिका दूरीक्रियाद् दुष्कृतम् ॥१॥

मलिननलिनलीलालिङ्गितं निर्विलासं
लपनमनतिलोलालोकमालोक्य लक्ष्म्याः ।
लघु लघयितुमस्या मानमानम्य पादौ
दलयतु दुरितं वः स्प्रष्टुकामो मुकुन्दः ॥२॥

नान्द्यन्ते

सूत्रधारः— अलमतिविस्तरेण । भो भोः सामाजिकाः इदं तावदस्मदीय-मभ्यर्थनावाक्यमवधीयतामत्रभवद्भिः—

वैदर्भीललितप्रपञ्चचतुरो नेता प्रणेता तथा
चेतोहारि च धीरनैषधमिदं लोकोत्तरं रूपकम् ।
सभ्याश्चात्रभवन्त एव विदुषामग्रेसरास्तद् ध्रुवं
धाताऽशेषगुणप्रपञ्चनविधौ जातोऽभिजातोऽधुना ॥३॥

(आकाशे) किमुच्यते भारतीविलासनिवासे कालिदासे दुर्मदविबुधकुलदुर्धर्षे श्रीहर्षे दृप्तसूरिसमज्ञानिर्झरिणीनिदाघे माघे कविशेमुषीशाणे बाणे महार्हकविताप्रसूतौ भवभूतौ कोविदमदखण्डिनि दण्डिनि दुर्दान्तलब्धवर्णवारणारौ मुरारौ च दिवंगते केनेदं पश्चिमशिखरिशिखरमारूढे दिनमणौ खद्योतेनेव विस्फुरितमिति । अहो प्रमादः । किं प्रथममेव मया प्रहितेन भावभूरिलेन न विज्ञापितं भवद्भ्यः । तच्छ्रूयताम्—

अस्त्युत्तरे सारवे तीरे भरद्वाजस्य महर्षेः सुमहान्सन्ततिव्रततीवितानः ।

तत्राभवद्भवपदाम्बुजसक्तचेता
नेता श्रुतीरितपथस्य किल द्विजन्मा ।

दिक्कुम्भिकुम्भतटभासुरकीर्त्तिदामा
धामाधिकः प्रथितकोद्रवशर्मनामा ॥४॥

आमुष्यायणस्य च तत्रभवतो विविधविद्याविभावनभासुरभूसुरमरालमालोपनालितचरणसरसीरुहस्य श्रीदेवनारायणशर्मणस्तनूजः

सारस्वतार्णवविगाहविलासधीर-
धीराङ्घ्रिसङ्क्रमितकीर्त्तिसरित्प्रवाहः ।
गोत्रावतंस इममन्वितमन्दराद्री
रामावतारकविरातनुत प्रबन्धम् ॥५॥

(पुनराकाशे) किं वदथ । साम्प्रतं सर्वेषूर्वीपतिषु सुकविपरिश्रमानभिज्ञतां कलयत्सु कथमस्य कवेरीदृशी प्रवृत्तिर्जातेति । अहो किं नाकर्णितो भवद्भिः सकलकविकुलसारसकासारः स महाराजो वाराणसीपतिः ।

(पुनराकाशे) ननु किमनुयुज्यते कीदृग्गुणः स महाराज इति । हन्त कथं नाम सुकवित्वमहीपतित्वयोरैकाधिकरण्यभूमिः स देवो वर्णयितुं शक्यते । यस्य—

समीकयात्रासु मदावलावली-
भरादवस्थां विषमां धरोदरे ।
प्रयाति पत्यौ सरितां रसत्यसौ
ध्रुवं युगान्तं स्मरति श्रियः प्रियः ॥६॥

किञ्च—

कलावसद्राजकदुर्णयात्क्षमां
क्षमामिवोद्धर्त्तुमधो विलम्बिनौ ।
क्रमेण जानुस्पृशतामुपागतौ
भुजौ भजन्भूदयितो विभाति यः ॥७॥

अपि च—

यद्द्वारि रक्षणकृतः शतशः प्रवीरा
रात्रिन्दिवं विलिखिता इव भान्ति खड्गान् ।
तुङ्गाङ्गनाशनपरान् रिपुराजलक्ष्म्या
वङ्गाङ्गनाकचकलापनिभान्वहन्तः ॥८॥

अपि च—

रणाजिरे यस्य भुजोष्मवह्निभि-
र्गतेषु लीलां शलभस्य भर्तृषु ।
वनेऽवरोधैर्द्विषतां विभाव्यते
हुताशनश्चन्दनपङ्कशीतलः ॥९॥

किञ्च—

नानापदानैर्जनितेषु यस्य
यशःसु लोकत्रितयीं श्रयत्सु ।
चित्रीयते को न जनो विलोक्य
सहस्रचन्द्राञ्चितमन्तरिक्षम् ॥१०॥

अन्यच्च—

ब्रह्माण्डस्वर्णपेटोदरविलसदुरुद्योतयद्दोःप्रताप-
भ्राजत्कौसुम्भवासःपरिवृतनिखिलव्याजराजन्निजाङ्गा ।
क्षौणी क्षीणप्रतीपक्षितिपतिविगलद्रक्तसिन्दूरराजि-
व्यालिप्ता ग्राहयित्वा निजकरमतुलं येन हृष्टेयमास्ते ॥११॥

अस्यैव च महाराजस्य विनोदाय रचितोऽयं प्रबन्धः । (सहर्षम्) साम्प्रतं परितोषिता परिषत्तदेवं तावत् । (नेपथ्याभिमुखम्) आर्ये सन्निधेहि ।

(प्रविश्य) नटी— अज्ज एसम्हि[1] ।

सूत्रधारः—अपि सभाजनसभाजनाय सज्जिताः शुभशीलाः कुशीलवाः ।

नटी—अणुट्ठिअं सअलं ।[2]

सूत्रधारः—साम्प्रतं भवत्याः सङ्गीतमाकर्णयितुमिव सुदूरसमुल्लसितकर्णिकारकर्णौ मधुरसौ । तदिममेवोद्दिश्य किमपि गीयताम् ।

नटी—तह[3] (इति गायति) ।

रइवइणरवइप्पहिओ विओइमिअवहकिदे मिअऊ ।
कोइलपत्तिसमेओ समाअओ माहओ णूणं ॥[4]

---

१. आर्य एषास्मि । २. अनुष्ठितं सकलम् । ३ तथा ।

४ रतिपतिनृपतिप्रहितो वियोगिमृगवधकृते मृगयुः ।
कोकिलपत्तिसमेतः समागतो माधवो नूनम् ॥

सूत्रधारः—(अद्भुतमभिनीय) अयि प्रिये पश्य—

वीणाक्वणाधरणकौतुकिना स्वरेण
रम्भोरु यत्किमपि गीतमिदं भवत्या ।
तेनास्ति शोणनयना कलकण्ठराजी
राजीवचारुनयनेऽलिपु हुंकृतिश्च ॥१२॥

(नभो विलोक्य) अहो—

वंहीयसा वसुभरेण विराजमानो
मानोन्नतो जनविलोचनशर्मदायो ॥
हन्ता घनस्य तमसो भृशशीतशीलो
राजत्कलोऽभ्युदयने द्विजराज एषः ॥१३॥

(नेपथ्ये) साधु शैलूषावतंस, साधूपन्यस्तम् ।

(वंहीयसेत्यादि पठ्यते)

सूत्रधारः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)

अहो अयं महाराजनलस्यामात्यः श्रुतशील इत एवाभिवर्त्तते तद्वयमपि प्रस्तुताय साधयामः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

प्रस्तावना

(ततः प्रविशय साध्वित्यादि पठन्नमात्यः ।)

अमात्यः—अहो महाराजस्य कृते तादृशीर्विषमा घटनाः समनुभूयापि रणव्यापारान्न पराजयते मे चेतः । अथवा

नृपेण सर्वाणि निजानुजे यथा
समर्प्य कार्याणि सदा समादृतः ॥
कथं निजं जीवितमस्य वा कृते
वितीर्य नानृण्यमवाप्नुयामहम् ॥१४॥

(पुरोऽवलोक्य) अयं महाराजः किमपि हृदये मन्त्रयन्निवास्मिन्प्रमदोद्याने सवयस्यस्तिष्ठति। तद्यावदुपसमर्पामि।

(ततः प्रविशतो राजा विदूषकश्च)

राजा—(गृहीत्वा विलोक्य) अये सर्वातिशायिनी रूपसंपदेतल्लिखितायाः कुमार्या इति मन्ये। (मन्त्रिणं प्रति) अमात्य अपि केनेदमालिखितं कस्येयं कन्येत्यादि किमपि ज्ञायते।

श्रुतशीलः—महाराज न किञ्चिज्ज्ञायते। मार्गे पतितमिदमासादितम्। तदन्येषां कार्याणामवेक्षणाय मामनुमन्यतां देवः।

राजा—यथा रोचते भवते।

(अमात्यो निष्क्रान्तः।)

राजा—(विदूषकं प्रति) वयस्य (चित्रं निर्दिश्य) पश्य लक्षये वयःसन्धौ वर्त्तते इयम्।

विदूषकः—कहं विअ।[1]

राजा— किं न पश्यसि—

स्तनयुगमिदं धत्ते शोभां दरोर्जितपद्मजां
कुवलयदलद्योते किञ्चिच्चले च विलोचने।
निबिडधृतया दृष्ट्या लक्ष्याऽस्ति लोमलता तथा
नतिगुरुतया श्रोण्योर्न्यासः पदोरनतिस्थिरः ॥१८॥

(सचिन्तम्) वयस्य अपि नाम कोऽपि दयालुरस्या अभिजनादि निवेदयेत्। भवतु तावदस्याः किञ्चिदनुकारिणीभिर्लताभिरात्मानमस्मिन्नुद्याने विनोदयामि।

(इत्युभौ परिक्रामतः।)

राजा—वयस्य इतः पश्य चम्पकमिदं प्रियाङ्गकानां गौरतामनुकर्त्तुं यतते न तूपलभते। तदुपालभे तावदेतत्साहसिकम्।

अयि चम्पकोज्ज्वलहिरण्यवरेण्यं
वपुरिच्छसि त्वमनुकर्त्तुममुष्याः।

---

१. कथमिव।

अलिनां कुलं मलिनमप्यत एत-
द्विजहात्यनात्मविदमद्य वत त्वाम् ॥१६॥

विदूषकः—आणवेदु वअस्सो, सज्जो ज्जेव इमस्स दुट्ठस्स मुण्डं वंसडण्डेण इमेण ढिलेमि।[1]

राजा—ननु विदितस्ते पराक्रमः। (अन्यतः) वयस्य, इतः किमप्यतीव मधुरं वर्तते।

विदूषकः—किं बम्हणभोजणस्स संचिदं मोअअणिउरंबं।[2]

राजा—धिग्ब्रह्मबन्धो सर्वत्र ते दृष्टिर्भोज्यमेव गोचरयति।

विदूषकः—जह तुह प्पिआ तह मे भोअणं, को णु विसेसो।[3]

राजा—(अशृण्वन्) पश्य केतकमिदम्—

विषधरविपर्वह्निमध्यसंस्थं
दलकरपत्रकृताश्रय चिरेण।
कथमपि तपसाऽधिगम्य तस्या
मुखशशिसौरभमश्नुते विकाशम् ॥२०॥

अपि च। इदमप्युपपद्यते।

एतत्सदा मकरकेतनमद्य तस्या
यत्सौरभादनुकरोति वपुर्मृगाक्ष्याः।
मन्ये ततो मकरकेतनशासनेन
नोरीकृतं क नु स्त्रियोऽपि प्रियः स्यात् ॥२१॥

(कुञ्जान्तरं प्रविश्य) सखे इयं मनोविनोदनकुशला—

विदूषकः—किं लद्धा उज्जाणम्मि एव।[4]

राजा—हन्त किमप्रस्तुतं प्रलपसि। नन्विमां मल्लिकामुद्दिश्य भणामि। तदस्याः सौभाग्यमुपश्लोकयामि—

---

१. आज्ञापयतु वयस्य। सद्य एवास्य दुष्टस्य मुण्डं वंशदण्डेनानेन शिथिलयामि।

२. किं ब्राह्मणभोजनस्य सञ्चितं मोदकनिकुरम्बम्।

३. यथा तव प्रिया तथा मे भोजनं को नु विशेषः। ४. किं लब्धा उद्याने एव।

तवान्वयो मल्लि मसारमेचकान्
वतंसयत्युत्पललोचना कचान् ।
अतोऽद्य तेषां त्वमनीव बन्धुभि-
र्मधुव्रतैः शश्वदुपाश्रिता चिरम् ॥२२॥

(अन्यतः) वयस्य पश्यास्य बन्धुजीवस्य हृदि मुधा गर्वः पदं विधत्ते येनेदं फुल्लं तिष्ठति। तदेनदुपालभे । अये वर्णमात्रसाम्यगर्वित बन्धुजीव, सखे-

शोभते न हठ एष मुधा ते
यत्सुधारसभृतोऽप्यधरस्य ।
साम्यमिच्छसि न किं पिकशोभां
वर्णतो वहति वायसलोकः ॥२३॥

(अन्यतः) सखे इतस्तावत्तडागोऽयमतिमनोरमः। ननु दृश्यतामत्र नीलोत्पलानां लीला ।

एतानि हि—

मृगदृशो नयनश्रियमर्जितुं
स्फुरदलिव्रजपक्ष्मसमीरणात् ।
तरलतामनुरूपमधीयते
श्रितजडा न वहन्ति रुचं तु ताम् ॥२४॥

(पुरतो विलोक्य सकौतुकम्) एते मानसागता राजहंसाः ।

तस्या गतिं विकचवारिजलोचनाया
वाञ्छन्ति हन्त सुतनोरनुकर्तुमेते ।
दानान्धगन्धकरिणामपि तां दिशन्तीं
व्रीडां ध्रुवं जनिशतैरपि नो लभेरन् ॥२५॥

तथापि किञ्चित्तद्गतिमनुविदधाना जनयन्ति मे कुतूहलमेते। पश्य सखे अयमेकः—

चिररतिपरिखिन्नो दामतश्चञ्चुकोटिं
नवकिसलयरम्यामंसभागे निवेश्य ।

चरणमपरमुर्व्या दक्षिणं कन्धरायां
विदधदयति निद्रां स्वर्णभृङ्गारशोभः ॥२६॥

(शनैः) तदेनं ग्रहीतुं पञ्जरमुपनय ।

विदूषकः—णणु मोअअपव्वदसपेसणकुलिसणिहाङ्कुलिसलाइआजुदभुअपञ्जर-इमं करेमि ।[1]

राजा—मैवं भोः । नायमादृशो मनोज्ञः पत्री कुलिशपञ्जरे नियन्त्रणामर्हति । हिरण्मयं पञ्जरमानय ।

विदूषकः—तहि कणअपिञ्जरम्मि णिअपाणिपञ्जरम्मि गेण्हदु भवं ।[2]

राजा—भवत्वेवम् । को दोषः (इति शनकैरुपसृत्य राजहंसं गृह्णाति)

(ततस्तत्करगत एव)

राजहंसः—अयि नरनाथ विजयस्व । अवधत्स्व मद्व्याहारम् ।

भीमेन समरकर्मसु भीमेन महीभुजा गुप्तम् ।
कुण्डलमिव वसुधायाः कुण्डिननामास्ति विश्रुतं नगरम् ॥२७॥

तत्र च—

नरदेव केवलमपाकृतकाम-
द्युतिदर्पदर्पकवती तव रूपे ।
श्रुतिमागतेऽसदृशचारिमभूमि-
र्दुहिताऽस्ति तस्य नृपतेर्दमयन्ती ॥२८॥

किन्तु—

बलसूदनादिविबुधार्थितया ते
न तवास्ति सङ्गमसुख सुखलभ्यम् ।
दलकण्टकौघवृतयेव षडङ्घ्रे-
र्नवकेतकी सुमनसा निहता रे ॥२९॥

---

१. ननु मोदकपर्वतसंपेषणकुलिशनिभाङ्गुलिशलाकिकायुतभुजपञ्जरनिबद्धमिमं करोमि ।

२ तर्हि कनकपञ्जरे निजपाणिपञ्जरे गृह्णातु भवान् ।

तन्मुञ्च माम्। अहं तया सह ते सङ्गमोपायं करिष्यामि।

राजा—एष मुक्तोऽसि। (इति तथा कृत्वा) व्रज साम्प्रतम्। स्वयमुपकर्त्तुं प्रवृत्तस्य किं तेऽन्यत्संदिशामि।

हंसः—तथेति (उड्डीनः)।

राजा—(किञ्चिद्वैलक्ष्यं नाटयित्वा) वयस्य गत एव स पक्षिराजः। अधिरूढेव रजनी प्रतिभाति।

विदूषकः—णणु णिसीधं वट्टइ।[1]

राजा—वयस्य एवमेतत्। तथाहि—

रतिपरिचयताम्यद्वामनेत्रास्यपद्म-
श्वसितपरिमलौघे भ्राम्यतां भृङ्गयूनाम्।
न लघुरपि विभेदो लक्ष्यते गुञ्जिताना-
मपि कलमणितानां सुभ्रुवाणां गवाक्षैः ॥३०॥

तच्छयनागारमार्गमादेशय।

विदूषकः—इदो इदो महाराओ।[2]

(इति निष्क्रान्तौ)

इति प्रथमोऽङ्कः।

जनकचरणचिन्तावाप्तविज्ञानलेशो
व्यधित यदतिहृद्यं सूरिरामावतारः।
रसभरपरिपूर्णे नाटकेऽत्रादिमोऽद्य
व्यगलदनवशेषक्षीणपङ्कोऽयमङ्कः ॥३१॥

---

१. ननु निशीथो वर्त्तते। २. इत इतो महाराजः।

द्वितीयोऽङ्कः ।

(प्रविशतः सख्यौ)

एका—सहि कमले, कहिं संपदं भट्टिणी महाराओ अ ।[1]

कमला—सहि मिस्सकेसि भअवदो संडिल्लस्स सआसं सन्तुदअत्थं मं आदिसिअ गरुअवेअणावाउलाए कुमारीए नंदस्सणत्थ पमदवणं गदा ।[2]

मिश्रकेशी—ता तहिं ज्जेव साहेम्ह ।[3]

(निष्क्रान्ते)

(ततः प्रविशति राजा, राज्ञी दमयन्ती च)

राजा—(सविषाद स्वगतम्)

भावी स्वयंवरविधिर्दिवसैश्चतुर्भि-
र्यस्याः शिरीषकुसुमाधिककोमलाङ्ग्याः ।
सेयं बतागमदिमां विषमामवस्थां
को हन्त वेत्ति परुषस्य विधेर्विलासान् ॥१॥

अथवा (प्रकाशम्) वत्से, दैवं कः प्रतिकर्त्तुं क्षमते ? तथापि न कस्मिश्चिदायासावहे कर्मण्यात्मा नियोजनीयस्त्वया । (अन्यतः) अहो शाण्डिल्याश्रमं प्रेषिता कमलापि चिरयति । कः को भोः ?

(कमलया सह प्रविश्य)

प्रतीहारः—देव, इयं कमला शाण्डिल्याश्रमादागता ।

राजा—भवतु, ज्ञातं कार्यम् । स्वं नियोगमशून्यं कुरु

प्रतीहारः—तथा । (इति निष्क्रान्तः)

---

१. सखि कमले, कुत्र साम्प्रतं भट्टिनी महाराजश्च ।

२. सखि मिश्रकेशि भगवतः शाण्डिल्यस्य सकाशं शान्त्युदकार्थं मामादिश्य गुरुवेदनाव्याकुलायाः कुमार्याः सान्त्वनार्थं प्रमदवनं गता । ३. तत्तत्रैव साधयामः ।

कमला—जअदु जअदु भट्टा। भअवं सडिल्लो सासिब्बअणं समादिसइ।[1]

राजा—(साञ्जलिबन्धम्) किमिव।

कमला—(संस्कृतमाश्रित्य) मया योगचक्षुषावगतमस्य परिणामः सुखावह एवेति। तथापि सद्यस्तापोपरमाय सम्यगभिमन्त्रितेनानेन जलेन वत्साया मौलावभिषेकः कार्य इति।

(इति जल समर्पयति।)

(राजा जलं गृहीत्वा दमयन्तीमङ्कमारोप्याभिषिञ्चति।)

दमयन्ती—साम्प्रतं निर्वृतानीव मेऽङ्गकानि।

राजा राज्ञी च—प्रियं नः।

राजा—वत्से, अद्य विष्णुपूजनाय सविधानं कार्यमिति प्रासादमुपयामि।

देवी—वच्छे, हं पि तुज्झ इमेण वेअणोपसमेण णिव्वुदा विदरणेहि बम्हणाणं पसाअणत्थं साहेम्हि। (इत्युत्थितौ)[2]

(दमयन्ती उपसृत्य तयोः पादौ गृह्णाति।)

राजा—वत्से,

निजभुजोर्जितवैभवभासिता-
वनितलं दधतं सकलाः कलाः।
वरय वीरमदान्तकरं वरं
त्वमधुना मधुनाशनसन्निभम्॥२॥

देवी—तुह तादस्स वअणं सच्चं होदु।[3]

(निष्क्रान्तौ।)

दमयन्ती—(पल्लवशयनमधिशय्य) सखि कमले, बलवत्परितापाकुलास्मि पुनः।

कमला—पिअसहि, अस्स दावस्स णिदाणप्पआसणेण मं पि समदुःखभाइणिं काउं अरिहसि।[4]

---

१. जयतु जयतु भर्ता। भगवाञ्छाण्डिल्यः साशीर्वचनं समादिशति।

२. वत्से, अहमपि तवानेन वेदनोपशमेन निर्वृता वितरणैर्ब्राह्मणानां प्रसादनार्थं साधयामि।

३. तव तातस्य वचनं सत्यं भवतु।

४. प्रियसखि, अस्य तापस्य निदानप्रकाशनेन मामपि समदुःखभागिनीं कर्तुमर्हसि।

दमयन्ती—प्रियसखि तस्य स्मरणेन सुतरां हृदयं ज्वलति तथापि यद्येष ते ग्रहस्तर्हि श्रूयताम्। अद्य रजनीविभवे—

स्वप्ने स्मिताञ्चितकपोलतलं विलोल-
राजीवलोचनमनङ्गतरङ्गिताङ्गम्।
दस्रोपमं तरुणमूर्जितचारिमाणं
रोमाञ्चमञ्चिततनुं सहसालुलोकम् ॥३॥

कमला—सहि तदो तदो।[1]

दमयन्ती—ततश्च—

तस्मिन्मृगारिकुलदूरवलग्नशोभे
मन्दस्मितद्युतिनितान्तलसत्कपोले।
अभ्याशमागतवति प्रसभं मदीयं
चित्तं स्मरः क्षपितसाध्वसमाविवेश ॥४॥

अनन्तरं च—

मामेति मे मितमनाकलयन्वचोऽयं
सञ्चारयन्हृदयचोरचटुप्रपञ्चम्।
पञ्चेषुसञ्चितशराञ्चितकुञ्चिताङ्ग-
श्चेलाञ्चलं चलमलम्बत जातकम्पः ॥५॥

कमला—तदो तदो।[2]

दमयन्ती—ततश्चाहम्—

क्व गतोसि विहाय हा प्रिय
त्वयि सक्तामनुरागिणीमिमाम्।
इति सानुशयं प्रलापिनी
परिहीये सखि निद्रया द्रुतम् ॥६॥

(इति मूर्च्छति।)

कमला—(चेतनामुपनीय) पिअसहि किं अदिदरं अत्ताणं सिविणदिट्ठस्स किदे खेदावेसि। सिविणेहिं बहुसो सुहाइं दुक्खाइं वा दिस्सन्ति। ण ताणं किदे दुक्खं वा जुज्जइ।[3]

---

१ सखि ततस्ततः। २. ततस्ततः। ३. प्रियसखि किमतितरामात्मानं स्वप्नदृष्टस्य वस्तुनः कृते खेदयसि। स्वप्ने हि बहुशः सुखानि दुःखानि वा दृश्यन्ते। न तेषां कृते हर्षो दुःखं वा युज्यते।

दमयन्ती— सखि कथाशेषमश्रुत्वैव किं मामुपालभसे ।

कमला—तत्कथय ।

दमयन्ती—सखि,

अत्रान्तरे तरलतारकतारहारे
तारापथे तरणिरश्मिरुचस्तरन्त्यः ।
विस्तारिमाल्यनिकरे सरसीव रेजु-
र्नारीस्तनोपनतकुङ्कुमरागरेखाः ॥७॥

कमला—तदो तदो ।[1]

दमयन्ती— ततश्च समाकर्षतीव हृदयं विधुरयतीव धैर्यं कीलयतीव प्रेमानुबन्धं श्लथयतीव शीलं विदूरयतीव व्रीडां तस्मिन्हृद्गते तरुणे विन्यस्तभावनाहं कथंकथंचिन्मधुकरकुलनिपीयमानकमलिनीपीयूषे प्रत्यूषे साकमम्बया सारससरसकेलिकौतुकाकुलिताम्भसि सरसि स्नातुमयासिषम् ।

कमला—णणु अम्हेहि साकं ज्जेव ।[2]

दमयन्ती— तत्र स्नानोत्तरं देवीपरिचर्याव्यापृता भवतीष्वनवगतमदीयकुतुकासु तटभुवि चरतो दैवादत्रागतान्मानसबिसिनिवर्तंसान्कनकहंसान्विलोक्य शैशवसुलभतरलताकलितान्तरा तानन्वसरम् ।

कमला—तदो तदो ।[3]

दमयन्ती--ततश्च किञ्चित्क्लान्तमिव तेषामन्यतमं पाणिना प्रधर्त्तुं मतिमकार्षम् । स शनैः शनैरपसरन्मां विजनं निकुञ्जं नीत्वा मानवगिरा न्यगादीत्—

सुभगा भव राजपुत्रि

अस्त्युत्तरस्यां निषधाभिधानो
देशः समुत्सारितदोषलेशः ।
तस्मिन्ननल्पावनिपालपूज्यो
बभूव भूपः किल वीरसेनः ॥८॥

---

१. ततस्ततः । २. ननु अस्माभिः साकमेव । ३. ततस्ततः ।

विडौजसो यद्भुजभूरिवैभवा-
द्भवन्विरक्तः कुलिशस्य सौहृदे ।
चिराय पाणिर्भवति स्म शर्मणे
शचीकपोले बिसपुष्पकोमले ॥६॥

तस्यात्मजः सर्वगुणावदातो
लावण्यनिर्भर्त्सितपञ्चबाणः ।
अदभ्रभूपालकिरीटकोटि-
लाल्याङ्घ्रिपद्मोऽस्ति नलो नरेन्द्रः ॥१०॥

निशम्य रूपश्रियमिन्द्रवैभवो
जनाधिनाथः स नरेन्द्रपुत्रि ते ।
मनोभवार्त्तो लभते न वा मना-
ग्विनोदनां हा तुहिनद्युतावपि ॥११॥

किं बहुना—

सदा हृदि त्वां निदधन्मनोभुवः
शरव्यतां प्राप्य तनूभवत्तनुः ।
तवैव सापत्न्यभयान्न निद्रया
कदाचिदेष श्रयते समागमम् ॥१२॥

अपि च साम्प्रतं स विश्वम्भरेश्वरः—

शीतांशुं निशितांशुकण्टकजुषं चक्रं वियोगिच्छिदं
शुभ्रं बालमृणालमुल्बणविषं व्यार्तं स्मरप्रेषितम् ।
काश्मीरं स्मरवह्निमुर्मुरममो पाटीरमैरम्मदं
पाण्डुज्योतिरशर्मदं कलयते भीमात्मजे त्वामृते ॥१३॥

इति गदित्वैव स राजहंसोऽन्तरीक्षमाश्रितः। मयाप्यनेन यस्तरुणो वर्णितः एव दैवेन मे स्वप्ने दर्शित इत्युदञ्चिततर्कया सरभसमेत्य यूयमासादिताः ।

अहह सखि,

पतत्रिणा प्राणसमस्य भूभुज-
स्तथा मुधायासविधायिकोदिता ।

न पारये धारयितुं धृति हृदा
कथं नु जह्यां हतजीवितं जवात् ॥१४॥

(इति मूर्च्छति ।)

(सखी चेतनामुपनयति ।)

(नेपथ्ये आलोकध्वनिः) (सर्वाः सप्रणयं शृण्वन्ति) (पुनर्नेपथ्ये) भो भोः पौरा, प्रतिप्रतोलि प्रतिनिलयं समारभ्यतां महोत्सवः ।

अद्य हि—

ब्रह्मर्षिणा हि दमकेन रतेरतीतां
रूपश्रियं शुभगुणां तनयां वितीर्य ।
तस्याः किमप्यतिगते तु किशोरभावे
रक्षाविधिर्निगदितः किल कोऽपि राज्ञे ॥१५॥

पूर्त्यै तस्य प्रियजनयुतः केशवाभ्यर्चनार्थं
यास्यन्देवः सकलजनतानन्दिनान्दीनिनादः ।
पुत्रीं मूर्तामिव भगवतः पञ्चबाणस्य लक्ष्मीं
शश्वद्रम्यद्युतिरमणकोद्यानमायाति नेतुम् ॥१६॥

सर्वाः—(ससम्भ्रमम्) अये तातः संप्राप्तस्तद्वयमेव तं मध्येपथं प्राप्नुमः ।

(निष्क्रान्ताः सर्वाः ।)

इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

जनकचरणचिन्तावाप्तविज्ञानलेशो
व्यधित यदतिहृद्यं सूरिरामावतारः ।
रसभरपरिपूर्णे नाटकेऽत्र द्वितीयो
व्यगलदनवशेषक्षीणपङ्कोऽयमङ्क ॥१७॥

तृतीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशत्याकाशमार्गेण गन्धर्वद्वयम् ।)

एकः—धिक्पराधीनताम् । तथाहि-देवेन्द्रविनोदाय रात्रिन्दिवमुपवीणयता थंचित्क्षणमात्रं विश्रामो लब्धः संप्रति । अथवा किमनेन विश्रामेण । मुहूर्त्तानन्तरमेव कमपि रूपकं सुधर्मायां प्रयोद्यत इति जनश्रुतिस्तत्र च मया सत्वरमेवमुपस्थातव्यमेव । पुरतः परिक्रम्य विलोक्य) अये मम प्रियसखश्चित्ररथ इत एवायाति । (उपसृत्य) चित्ररथ, कुत आगतोसि ? क्लान्त इव लक्ष्यसे । किञ्चेदं करे ।

चित्ररथः—सखे चित्राङ्गद, ननु त्वया ज्ञातमेव भवेद्यथा भर्त्तुर्विनोदनाय भरतमुनिना प्रणीतं किमपि रूपकमस्ति ।

चित्राङ्गदः—अथ किम् ।

चित्ररथः—तस्यैवानयनाय स्वामिना ब्रह्मलोकं प्रेपितोऽस्मि । तेन च मुनिना त्रमिदं दत्त्वानुपदेमेवाहमागत इति भर्त्रे संदिश्याहं प्रहितः ।

चित्राङ्गदः—सखे मया नावगतं कि तावत्स्वामिनो वैमनस्यनिदानं येन स मनोविनोदनमीहते ? अपि नाम त्वया किमप्युपलब्धं स्यात् ?

चित्ररथः—सखे, गुरुणा नारदेन समतीतसकलाप्सरःसौन्दर्या कापि मनुजेऽनुरक्ता मानवकन्या काचिन्निवेदिता । तस्या अभिजनादि तल्लाभोपायं च पृष्टः स मुनिरेतस्य रूपकस्य प्रयोगेणैव सर्वं ज्ञास्यत इत्यादिष्टवान् । तस्या एव विरहेण तल्लाभोपायं चिन्तयन्विमनायते भर्त्तेति वितर्को मे ।

चित्राङ्गदः—युज्यते, तदेहि सुधर्मामेव व्रजामः ।

(निष्क्रान्तौ ।)

विष्कम्भकः ।

(प्रविशतीन्द्रो वाचस्पतिश्च ।)

इन्द्रः—(दीर्घं निःश्वस्य स्वगतम्) अहो—

वैणिकेन मुनिना हि वर्णिता—
मेणनेत्ररुचिहारिलोचनाम् ।
भीमभूपतनयां विचिन्तय—
न्सीमदुविधरसाकुलोऽस्म्यहम् ॥१॥

तदाप्रभृति—

न मे मनो मेनकयाऽनुरज्यते
न चास्ति रम्भापरिरम्भलोलुपम् ।
न हारिणीयं हरिणी विभाव्यते
न वा घृताची रुचये प्रकल्पते ॥२॥

अथवा अलमावेगेन । साम्प्रतं संनिहित एव तस्या लाभोपायः । भवतु । (प्रकाशम्) भगवन्नाङ्गिरस, तन्नाट्याचार्येण प्रहितं पत्रम् ।

जीवः— देव, इदम् । (ददाति ।)

इन्द्रः—(गृहीत्वा वाचयति) स्वस्ति देवेन्द्राय—

पुण्यं रहस्यं परमं मयेदं
बिनोदनायैव निरूपितं ते ।
सद्योऽप्सरोभिः समितौ तवेदं
प्रयोजयिष्यन्नयमागतोऽस्मि ॥३॥

(नेपथ्ये॰ नन्वयमागतोऽस्मि ।)

इन्द्रः—(विलोक्य) अये कथमयं संप्राप्त एव भगवन्भरतः (तदभिमुखं परिक्रम्य) भगवन्नयमभिवादये । इदमासनमुपविश्यताम् । (इत्यासनं निर्दिशति ।)

भरत.—विजयी भूयाः । (इत्युपविशति ।)

इन्द्रः—भगवन्नाङ्गिरस, अवहितीक्रियन्तां सभ्याः ।

जीव —यथाह महेन्द्रः । (इति पुरतः परिक्रम्य) भो भोः सभासदः, अद्य किलात्रभवता भुवनत्रयराज्यातपत्रान्तावसक्तकल्पशाखिकुसुमसौरभभ्रमदद्भ्रभ्रमर-कुलकलरवमुखरितहरिदन्तरेण पुरन्दरेण समाज्ञापिता ब्रह्मलोकादुपागता अप्सरसो

भगवता भरतेन प्रणीतमद्भुतं कलिदुर्विलसितं नाम रूपकं प्रयोदयन्तीति समवहितै-र्युष्माभिर्भाव्यम्। (इति जीव इन्द्रश्च यथोचितमासने उपविशतः।)

(प्रविश्य)

सूत्रधारः—

श्रीशेन्द्ररुद्रचतुरास्यमुखाः सुरौघा
द्राग्येन धैर्यविधुरा विहिताः प्रसह्य।
तस्मै जगद्विजयिने बत वामनेत्रा—
नेत्राञ्चलाय कलये शतशो नमस्याः ॥४॥

इन्द्रः—(स्वगतम्) तथ्यमेवोपन्यस्तमनेन भरतपुत्रेण।

सूत्रधारः—(परितो विलोक्य) अये, कथं किमपि सज्जीकृतं नास्ति ? (नेपथ्या-भिमुखमवलोक्य) इयमार्या विमनायमानेवेत एवाभिवर्त्तते। तद्विषादकारणमस्यास्ताव-दवगच्छामि। (उपसृत्य) आर्ये किमिति विमनायसे ?

(प्रविश्य)

नटी—उवक्कन्तजोव्वणाए वच्छाए विआहस्स किदे दुक्खिदं मे मणो।[1]

सूत्रधारः—आर्ये कोऽयं मुधा विषादः ? पश्य—

वत्सा सुतेन सख्युर्मे सुभद्रेण मनीषिणा।
नलेन दमयन्तीव नचिरात्परिणेष्यते ॥५॥

इन्द्रः—(स्वगतम्) अये कथं मत्सखस्य वीरसेनस्य सुते नलेऽनुरक्ता भैमी। तदिदानीमतिविषममापतितम्। अथवा कामाकृष्टमानसस्य को धर्माधर्मविवेकः। तत्तमेव दूतं कृत्वा कार्यं साधयिष्ये।

(नेपथ्ये। आ पाप, परिमुषितशेमुषीक शैलूषकिशोरक, इत्यर्धोक्ते)

सूत्रधारः—आर्ये, अयं कलिः पापो नलदमयन्त्योः समागममात्मनोऽनिष्टमाकर्ण्य क्रुधा मेऽभिमुखमायाति। तन्न युक्तमाततायिनोऽस्याग्रे स्थातुम्।

(निष्क्रान्तौ।)

---

१. उपक्रान्तयौवनाया वत्साया विवाहस्य कृते दुःखितं मे मनः।

(प्रविश्य)

भीषणवेषः कलिः—(आः पापेत्यादि पठित्वा) अथवा अलं वराकस्यास्य नटस्य वाचि विशेषदर्शनेन। आः पाप, मुधाभैमीकामुक नल—

धर्मस्य मे द्विषत अर्जयितारमुच्चै—
गर्वेण भीमतनयापरिरम्भलुब्धम्।
त्वामद्य हन्ति कलिरेष विनाश्य सर्वां
राज्यश्रियं सह यशःप्रसरां जवेन ॥६॥

किञ्च—

धर्मावधीरणविधोद्धुरबुद्धिधैर्य—
निर्धूतनैषधभुजोर्जितवीर्यगर्वः।
हर्षोदयोद्धतनखाङ्कुररश्मिकान्त—
श्मश्रूत्करः कलिरुपैष्यति बन्धुवर्गम् ॥७॥

इन्द्रः—आः कलिचाण्डाल, सुदूरमतिप्रसक्तोऽसि धर्माक्षेपेण। एष न भवसि। (इति वज्रमुद्यच्छति)

जीवः—देव, किमिदमकाण्डे वज्रमुद्यम्यते? ननु प्रेक्षणकमिदं न पुनर्भूतार्थः।

इन्द्रः—(वज्रं संहृत्यात्मगतम्) अहो कामाकुलितं मे चेतो न किमपि कलयति। (प्रकाशम्) भगवन्कार्यजालपरिचिन्ताकुलोऽस्मि।

कलिः—वत्स वज्रनाभ, (इत्यर्धोक्ते) अहो व्यग्रता! स तु दमयन्त्याश्चित्रमानेतुं प्रेषितस्तल्लिखित्वागच्छन्नेव भ्रमान्मार्गे न्यपातयत्। केवलं नलस्यैव चित्रं गृहीत्वा समागत इति पुनस्तदानयनाय गतः। हा! दैवदुर्विलसितेन तच्चित्रं तस्यैव वीरसेनसुतस्य हस्तं गतम्। तेन च साम्प्रतं स भैम्यां द्विगुणिताभिलाषो वर्त्तत इति समुपलब्धं चरेभ्यः। भवतु प्रस्तुतं तावदनुसरामि। (नेपथ्याभिमुखम्) वत्सौ काममोहौ, इतस्तावत्।

(विटचेटवेषेण प्रविश्य)

काममोहौ—जअदु जअदु भट्टा।[1]

कलिः—वत्सौ, चरेभ्य उपलब्धं यथा रमणकोद्याने साम्प्रतं दमयन्ती वर्त्तते। ततस्तन्मार्गमादेशयतम्।

१, जयतु जयतु भर्त्ता।

कामसोहौ—इदो इदो भट्टा ।[१] (सर्वे परिक्रामन्ति ।)

तौ—एदं उज्जाणं, एदु भट्टा ।[२] (इति पुरो निर्दिशतः ।)

कलिः—(प्रविश्य) (परितोऽवलोक्य) हा हतोऽस्मि ! इतः कश्चिज्जरठोऽग्रजापसदः सामानि गायति ! (अन्यतः) हा हतविधे, मृतोऽस्मि । दग्धोऽस्मि । इतोऽयं चपलो द्विजबटुर्हुतवहाय वषट्कुरुते । (परितः) आः अस्मिन्मन्दिरे श्रुतिपथोन्माथी घण्टाघणघणात्कारः श्रूयते ! हा ! उत्क्रामन्तीव मे प्राणाः । (दूरमपसृत्य सविषादं दीर्घं निःश्वसिति ।)

इन्द्रः—पापोऽयं कलिः सर्वथैव धर्मद्वेषपरः ।

कलिः—अहो दुष्प्रवेशमिदं स्थानम् ! तत्कुत्र स्थितः कार्यजातमपि चिन्तयामि । अथवा कामं मदनुरूपस्थानगवेषणे प्रवर्त्तयामि । स हि सुदुर्ग्रहाण्यपि वस्तूनि ग्रहीतुं शक्नोति । तथाहि । अयम्—

निमग्नमन्तर्दुरवग्रहं प्रियै—
रपास्य मानाभिधनक्रमूर्जितम् ।
त्रपाजलं मानवतीमनोर्णवं
सुखावगाह्यं विदधाति कामिनाम् ॥८॥

वत्स, काम, किमस्त्यत्र मदुपवेशयोग्यं स्थानम् ?

कामः—णणु विहीदओ एसो सामिणा पुरदो ज्जेव चिट्ठइ ।[३]

कलिः—वत्स, सुष्ठूपलक्षितं त्वया । यतो भूतावासमहीरुहैरत्र सुखेनोपविष्टं मां न धर्मस्तस्य वृद्धप्रपितामहो वा व्यथयितुं शक्नोति । किञ्च मत्प्रीतिपात्रतयैवेमं जनाः कलिद्रुममामनन्ति । (इति तस्य तले उपविष्टः ।)

कामः—(सहर्षम्) देव, अवरं अम्हाणं अणुकूलं ।[४]

कलिः—किमिव ।

---

१. इत इतो भर्त्ता । २. एतदुद्यानम् । एतु भर्त्ता ।

३. ननु बिभीतक एष स्वामिनः पुरत एव तिष्ठति ।

४. देव, अपरमस्माकमनुकूलम् ।

कामः—दमयन्तीए सहीओ कुसुमावचअणिमित्त इदो ज्जेव अहिवट्टन्ति ।[1]

कलिः—(विलोक्य) प्रियं नः प्रियम् । किमुच्यते वत्स, सर्वातिशायि बुद्धिवैभवं ते । तच्छृणुमस्तावदेतयोर्विस्रम्भालापम् ।

(ततः प्रविशतः पुष्पावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ ।)

एका—सहि मिस्सकेसि, कुमारीए रत्तिवुत्तन्तेण क्खुहिदं विअ भीदं विअ मे हिअअं ।[2]

मिश्रकेशी—सहि कमले, को सो वुत्तन्तो ?[3]

कमला—जदा तुम देवीए परिचज्जाइ आसि तदा कुमारीए विस्सद्ध णलगुणणिज्झाणपराइ णिसीधवेलाइ सहस ज्जेव तस्स घरस्स भित्ती वज्जोहदा विअ विदिण्णा ।[4]

कलिः—अहो मायाविनैवेद साहसमनुष्ठितमिति मन्ये ।

मिश्रकेशी—तदो तदो ।[5]

कमला—अध तदो छिद्दादो विणिग्गदो को वि रक्खसो ।[6]

मिश्रकेशी—हला ण किम्पि अच्चाहिदं जादं ।[7]

कमला—सहि जादप्पाअं जेव्व आसी, किं पुणो दमणअमुणिणा विदिण्णेण भट्टिदारिआए चूडारअणेण प्पआसेहि दहिज्जन्तो विअ सो रक्खसो पुणो रन्धं पविट्ठो । वसुहा वि जहट्ठिअं जादा ।[8]

---

१. दमयन्त्याः सख्यौ कुसुमावचयनिमित्तमित एवाभिवर्त्तेते ।

२. सखि मिश्रकेशि, कुमार्या रात्रिवृत्तान्तेन क्षुभितमिव भीतमिव हृदयम् ।

३. सखि कमले, कोऽसौ वृत्तान्तः ?

४. यदा त्वं देव्या परिचर्यायामासीः तदा कुमार्या विस्रब्धं नलगुणनिध्यानपरायां निशीथवेलायां सहसैव तस्य गृहस्य भित्तिर्वज्रोपहतेव विदीर्णा । ५. ततस्ततः ।

६. अथ ततश्छिद्राद्विनिर्गतः कोपि राक्षसः ।

७. हला न किमपि अत्याहितं जातम् ।

८. सखि, जातप्रायमेवासीत् किं पुनर्दमनकमुनिना वितीर्णेन भर्तृदारिकायाश्चूडारत्नेन प्रकाशैर्दह्यमान इवासौ राक्षसः पुना रन्ध्रं प्रविष्टो वसुधापि यथास्थितं जाता ।

मिश्रकेशी—सहि, दिट्ठिआ महुसूअणस्स पूअणं करिअ गअदिअसम्मि भट्टा तं मणिं भत्तिदारिआए दिण्णवां ।[1]

कमला—सहि महाणुहाओ सो महरिसो सुणिज्जदि । एवं क्खु सा मणिणो विअरणकालम्मि समादिट्ठवां ।[2] (संस्कृतमाश्रित्य)

यः कश्चिदेतां तनयां हताश—
स्त्वामन्यदृष्ट्या विनयातिवर्त्ती ।
यतेत लब्धुं प्रसभं तमेष
चूडामणिः शिक्षयिता विनीतिम् ॥९॥

इन्द्रः—दिष्ट्या दुष्टराक्षसकुलमुखमर्दनायाय मणिस्तया धार्यते ।

(नेपथ्ये)

अद्यागमिष्यति नृपो निषधाधिराजो
भैमीस्वयंवरमहो महनीयकीर्त्तिः ।
देवस्ततो रमणकोपवनान्तवर्त्ति—
प्रासादमाव्रजति तत्प्रतिपालनाय ॥१०॥

सख्यौ—अम्हो महाराओ पासादं गदो । ता अम्हे वि साहेम्ह ।[3]

(इति निष्क्रान्ते ।)

कलिः—वत्सौ काममोहौ, श्रुतमेव भवद्भ्यां यथा दुष्टवटुना दमनकेनेन्द्रजालं रचितम् । तदेवं क्रियताम् । (कर्णे एवमेवम्)

(नेपथ्ये)

वैतालिकौ—

एक.— हत्वा धराम्बरचराणि तमांसि नून—
मन्वेषणाय तमसोऽम्बुधिगर्त्तगर्भे ।
लीनस्य गूढमवमज्जति संहृतांशु—
र्निष्कारणाम्बुजवनीकमनीयबन्धुः ॥११॥

---

१. सखि, दिष्ट्या मधुसूदनस्य पूजनं कृत्वा गतदिवसे भर्त्ता तं मणिं भर्तृदारिकायै दत्तवान् ।

२. सखि, महानुभावोऽसौ महर्षि । श्रूयते एव खल्वसौ मणेर्वितरणकाले समादिष्टवान् ।

३. अहो महाराजः प्रासादं गतः । तदावामपि साधयावः ।

अपरः— राजंश्चिराय विजयस्व पति सुशीलं
पुत्री तवोपलभतां निजरूपयोग्यम् ।
आरोहरोहणवनीयकमेलकानां
तुङ्गं यशोद्रिशिखरं मनुजैर्दुरापम् ॥१२॥

कलिः—अविशेषज्ञ वैतालिकाधम, 'पुत्री तवोपलभतां कलिमात्मयोग्यम्' इति वक्तव्यं खलु । (अन्यतः) वत्सौ, मायाविन उद्यानस्य मार्गमादेशयतम् ।

तौ—इदो इदो भट्टा ।[1]

(निष्क्रान्ताः कलिकाममोहाः ।)

इन्द्रः—कथमवसितोऽभिनयस्तत्प्रासादमेव व्रजामि । अद्य हि देवी द्रष्टव्येति ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति तृतीयोऽङ्कः ॥

जनकचरणचिन्तावाप्तविज्ञानलेशो
व्यधित यदतिहृद्यं सूरिरामावतारः ।
रसभरिपरिपूर्णे नाटकेऽस्मिस्तृतीयो
व्यगलदनवशेषक्षीणपङ्कोऽयमङ्कः ॥१३॥

---

१. इत इतो भर्त्ता ।

चतुर्थोऽङ्कः ।

(प्रविशति सचिन्तो नलो विदूषकश्च ।)

नलः—(सचिन्तम्) अहो अन्तरायबहुलाः प्रियजनसमागमाः । मध्येपथमेभिस्तपस्विभिर्यज्ञरक्षायै प्रार्थितोऽस्मि । कथं वा स्वधर्ममवधूय कुण्डिनपुरं प्रयामि । भवतु, सर्वथा समाप्त एव तपस्विनामवभृथोत्सवे पुनः प्रस्थास्ये । (प्रकाशम्) वयस्य माधव, संप्रति सेनापतिना तपोवनोपरोधपरिहाराय बहिर्निवेशितान्येव सैन्यानि । तदेहि तपोवनोपकण्ठस्य रामणीयकं पश्यावः । (इति परिक्रामतः ।)

नलः—(परितोऽवलोक्य) वयस्य, अतिरमणीयोऽयमुद्देशः । पश्य—

क्वचिन्मरिचपल्लवं कवलयन्ति हारीतकाः
क्वचिच्चपलचञ्चवः शुकवरा इमे दाडिमे ।
रसालमुकुले क्वचिद्रसभरः पिकैः पीयते
क्वचिच्च दयिताधरं धयति मत्तपारावतः ॥१॥

(स्तोकमन्तरमतीत्य) वयस्य, अस्मिन्सरसरसत्सारसे सरसि—

प्रत्यग्रकुंकुमनिभारुणरश्मिरक्त—
व्यक्तानुरागमिव चक्रपतत्रियुग्मम् ।
सौत्सुक्यमेतदितरेतरवक्त्रचुम्बि
प्राप्नोत्यमन्दमदनप्रमदप्रकर्षम् ॥२॥

विदूषकः—एव्वं तुमं पि होहि ।[1]

नलः (अश्रुत्वैव) वयस्य, अत्र तावत्प्रच्छायशीतले कङ्केलितले उपविशावः ।

(इति तथा कुरुत ।)

(चित्र हस्तस्थं दर्शयित्वा) वयस्य, विप्रलम्भावस्थायास्ते सख्याश्चित्रमिदं प्रतिभाति । तथाहि—

---

१. एवं त्वमपि भव ।

मृणाललतिका तनुं भुजलतामपास्य स्थिता
स्मरज्वरभृताङ्कव्यतिकरावशुष्यत्तरे ।
नवीननलिनीदलाकलितपाण्डुतल्पाञ्चले
विभाति शरदि स्फुटं शशिकलेव मेघान्तरे ॥३॥

कथितमपि कुण्डिनेशस्य दूतेन सहैव प्रेषितया प्रियंवदाभिधानया सारिकया ।

विदूषकः—किं विअ ।[1]

नलः— रतिप्रियेण प्रसभं तवार्पिता
सुता विदर्भाधिपतेर्भवत्कृते ।
व्यथामनल्पामधिगम्य साम्प्रतं
न निर्वृतिं यात्यमृतद्युतावपि ॥४॥

किञ्च—
स्वप्नेषु भैमी रतिजीवितेन
देवेन दत्तामुपलभ्य शिक्षाम् ।
विहाय भोगांस्त्रिदिवे दुरापां-
स्त्वदेकचित्ता किल साम्प्रतीयम् ॥५॥

(सबाष्पगद्गदम्) वयस्य, साम्प्रतं पश्य मेऽवस्थाम् ।

ध्यायं ध्यायं मधुरमधुरं प्रेयसीवक्त्रपद्मं
धृत्वा धृत्वा धृतिमथ गलद्बन्धनं कामबाणैः ।
विद्धं विद्धं विधुरविधुरं शून्यभूयं दधानं
दूनं दूनं हृदयकुसुमं मामकं म्लायतीदम् ॥६॥

(इति मूर्च्छति ।)

विदूषकः—(चेतनामुपनीय) वअस्स, मा समधिअं आआस किधा ।[2]

राजा-वयस्य, किं करोमि, शम्बरारेः शाम्बर्या वितीर्णं मोहमपासितुं न पारये ।

(नेपथ्ये)

अब्रह्मण्यम् । परित्रायतां महाराजः । परित्रायताम् ।

१, किमिव ।

२. वयस्य, मा समधिकमायासं कृथाः ।

यावन्महर्षिभिरमू परिशोध्य वेदीं
न स्थापितो हुतवहो भगवान् समन्त्रम् ।
तावद् व्यदूषि पिशिताशनगर्धुयं
रक्षोक्षणेन ननु मण्डपमेव सर्वम् ॥७॥

राजा—(श्रुतिमभिनीय) न भेतव्यम् । कथमरे यातुधानापसदाः कथं सति मयि सुदूर प्रगल्भध्वे ।

(उच्चैः) नन्वेषः—

आसन्ननीरनिधितीरमनन्तभूम—
भूभृद्व्रजोपहृतरत्नमरीचिजालैः ।
नीराजितो रिपुनृपालकरालकाल—
दण्डोऽङ्घ्रिदण्ड उपयातु शिरस्तटं वः ॥८॥

(पुनर्नेपथ्ये भिन्नस्वरेण)

आस्ते कोपि यदि क्षमः स कुरुतां कोदण्डदण्डः करे
क्षुद्रक्षोणिपलक्षवीर्यविभवक्षादक्षमोऽहं क्षणात् ।
व्याक्षिप्तक्रतुकर्मविधानमुदयत्त्रासेषु विप्रेष्विदं
वातायुष्विव साम्प्रतं वितनवै शार्दूलविक्रीडितम् ॥९॥

नलः—आः पापान्तर्धानगर्वित राक्षसाधम अनुभूयतामनुचितं क्रतुविनाशस्य फलम् । (धनुषि समन्त्रकं बाणमारोप्य)

येनोज्झितास्तु पशुना पिशिताशनेन
वर्णाः स्वगवापशुनास्त्वरितं तदीयम् ।
पीत्वा प्रसह्य रुधिरं हृदयस्य तूर्णं
तूणीरमाव्रजतु शब्दभिदेष बाणः ॥१०॥

(इति नेपथ्याभिमुखमाकाशे शरं विमुञ्चति ।)

(नेपथ्ये तारतरचीत्कारोत्तरं बहूनां जनानां पलायनध्वनिः ।)

(उभौ सविस्मयमाकर्णयतः ।)

(पुनर्नेपथ्ये)

जय नृप निहतारे राक्षसास्ते शरेण
च्छलकृतमुनिवेषा नाशिताः सर्व एव ।
व्रज विघटितविघ्नं सप्रमोदं विदर्भान्
भवतु भवति धन्या वीक्षिता भीमकन्या ॥११॥

नलः—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये ! कथमिमे सिद्धगणा मामाशिषाभिनन्दन्ति ! तत्किमेते राक्षसा एवार्धपथे मामुपरोद्धुमागता न मुनयः ।

विदूषक—वअस्स बहुमाया रक्खसा सुणिज्जन्ति ता कि चित्तं ।[1]

नलः—भवतु प्रसङ्गादिदमपि देवकार्यं निर्वर्त्तितम् । तद् वयस्य, मुहूर्त्तमत्र शीतच्छायेऽशोकतले समुपविशावः ।

(इत्युपविष्टौ ।)

नलः—सखे, अपि नामैते राक्षसाः कुण्डिनपुरेऽप्येव मायां कुर्युः ? अथवा सर्वमीश्वरः क्षेमं विधास्यति । किमत्र बहुशो विचिन्तनेन ।

विदूषकः—जधाह प्पिअवअस्सो ।[2]

नलः—सखे, निष्करुणो मदनोऽतिवेलं तापयति माम् ।

नूनम्—

विरहिणीवदनद्विजपत्यसु—
क्षतिमहावृजिनं कृतवानहो ।
त्रिनयनानलमाप्य मृतोऽपि स—
न्मनसिजो गतवान्स पिशाचताम् ॥१२॥

अन्यथानङ्गः कथं प्रहरेत् ? हा वयस्य, दक्षिणानल, त्वमप्येवं मद्भाग्यविपर्यया-द्विषममाचरसि । अथवा-

पाटीरद्रुमकोटरोदरचरत्काकोदरश्वासजै-
रालिप्तो गरलैरलं प्रचलयन्पत्राणि वित्रासदः ।

---

1. वयस्य, बहुमाया हि राक्षसाः श्रूयन्ते तत्किं चित्रम् ।   2, यथाह प्रियवयस्यः ।

कन्दर्पेण रयाद्वियोगिहरिणव्यापादनायेरितो
नूनं सह्यशिलालिघर्षणवशात्तीक्ष्णो भवानाशुगः ॥१३॥

(सविषादम्) वयस्य, किं करोमि । एवमुपालब्धावपीमौ न लज्जेते । का गतिः । (चित्रं निर्वर्ण्य)

अपि श्वसितविक्लवं तदधरं पिबेयं द्रुतं
प्रिये ननु मनागिमौ श्रयतु ते कपोलौ स्मितम् ।
प्रपञ्च्य किलकिञ्चित चिततनुं स्मरस्येषुभिः
कृतार्थय पदाब्जयोरुपनतं तवेमं जनम् ॥१४॥

विदूषकः—(स्वगतम्) अम्महे अदिभूमि गदो इमस्स मणोरहो । (प्रकाशम्) वअस्स, कहिं नाम तुहस्स प्पिआ ? चित्तं क्खु एदं ।[1]

राजा—हा धिक् । कथं चित्रमिदम् ! (इति मूर्च्छति ।)

(विदूषकः पटान्तेन बीजयति ।)

(नेपथ्ये)

निषधजनपदेन्द्रं द्रष्टुमौत्सुक्यभाज-
स्तपनरुचिरहैमस्यन्दनैरिन्द्रमुख्याः ।
परिमलपरिपूर्णोदारमन्दारमाला-
स्ततिमनुगहनानामागता लोकपालाः ॥१५॥

राजा—(उच्छ्वस्य) अये कथं लोकपाला मां द्रष्टुमागतास्तद् गत्वा संभावयामः ।

(निष्क्रान्तौ ।)

इति चतुर्थोऽङ्कः ॥

जनकचरणचिन्तावाप्तविज्ञानलेशो
व्यधित यदतिहृद्यं सूरिरामावतारः ।
रसभरपरिपूर्णे नाटकेऽस्मिंश्चतुर्थो
व्यगलदनवशेषक्षीणपङ्कोऽयमङ्कः ॥१६॥

---

१. अतिभूमिं गतोऽस्य मनोरथः । वयस्य कुत्र नाम तव प्रिया ? चित्रं खल्वेतत् ?

पञ्चमोऽङ्कः ।

एका—सहि, दिट्ठिआ तेण मुणिणा संडिल्लेण णलरूवादो महाराअवञ्चणत्थं समाअदादो रक्खसादो रक्खिदा भट्टिदारिआ । तेण हि मुणिणा एदं संदिट्ठं ।[1]

रक्षोऽधमोऽय नलरूपधारी
समागतस्ते नृप वञ्चनाय ।
मायाविनामा कलिना प्रयुक्त-
स्तदप्रमादो भव घातयैनम् ॥१॥

द्वितीया–सहि, तदो तदो ।[2]

प्रथमा—तदो एव्वं संदेसं घेत्तूण आअदमत्तम्मि मुणिसिस्सम्मि अन्तहिदो सो रक्खसो सपरिअणो ।[3]

द्वितीया--सहि, अदो ज्जेव रक्खसोपद्दवादो भत्तिदारिआ विमणाअदि संपदं ।[4]

प्रथमा--अण्णं वि कारणं । एक्कदा देएहि वितिण्णंतद्धाणसिद्धी णलो सुद्धन्तं आअदो । लोअवालाणं कं वि भत्तारं वरेहीति च भत्तिदारिअं संदिट्ठवां । तदो तुमं ज्जेव मह भत्ता णण्णो होदुं अरिहदि । एव्वं च--(संस्कृतमाश्रित्य)[5]

देवानां यदि निरवग्रहो ग्रहोऽयं
ते कामं सह भवता स्वयवरं मे ।
आयान्तु स्वयमद्दमेभिरेव तुभ्यं
दास्ये न त्वमपि तथापराधभाक् स्याः ॥२॥

---

१ सखि, दिष्ट्या तेन मुनिना शाण्डिल्येन नलरूपान्महाराजवञ्चनार्थं समागताद्राक्षसाद्रक्षिता भर्तृदारिका, तेन हि मुनिना एतत्संदिष्टम् ।

२. सखि, ततस्ततः । ३. तत एव संदेशं गृहीत्वा आगतमात्रे मुनिशिष्ये अन्तर्हितोऽसौ राक्षसः सपरिजनः । ४. सखि, अत एव राक्षसोपद्रवाद्विमनायते साम्प्रतम् । ५, अन्यदपि कारणम् । एकदा देवैस्तान्तर्धानसिद्धिं लब्ध्वा शुद्धान्तमागतः । लोकपालानां कमपि भर्तारं वरयेति च भर्तृदारिकां संदिष्टवान् । ततस्त्वमेव मम भर्ता नान्यो भवितुमर्हति । एवं च ।

एव्वं भत्तिदारिआए संदिट्ठं । तदो लोअवालादो विग्धं संकन्ती सा विमना-

ᐟ

द्वितीया—जुज्जदि । ता एहि । जामो ।[2] (निष्क्रान्ते ।)

विष्कम्भकः ।

(प्रविशति सचिन्तो नलः)

नल—अहो तदा गृहीतदूत्ये मयि कीदृशीमवस्थां भैमी समन्वभवत् । हन्त'

निर्बन्धमारचयति प्रचुरं दिगीश-
संतोषणाय मयि मन्युविकम्पितौष्ठम् ।
सा यत्सखीं प्रचलिता सरय निरस्य
चेतो न मुञ्चति चिरादपि तन्मदीयम् ॥३॥

किञ्च—

दूत्यान्नृशंसमनपेक्षितभूरिभावं
श्रोत्राध्वभेदि वचनं मयि भाषमाणे ।
नीहारहारितरुचो रक्षिताब्जयोस्त-
न्नेत्रे श्रियं श्रितवती मनसो न यातः ॥४॥

(सविषादम्) हा वज्रमयचित्त, एतावतापि न व्यथा ते जाता । ?

तदा—

कामाङ्कुशैः सुनयनानयनाञ्चलैस्त्व—
मुत्तोदितोपि परुषत्वमनूनयन्हा ।
गम्भीरवेदिनमनेकपमन्वकार्षीः
किं साम्प्रतं व्रजसि शोकमकाण्ड एव ॥५॥

(साशसम्) अपि श्वसितकम्पितस्तनमदम्भरम्याधरं
सदाश्रुजलनिर्गलन्नयनकज्जलं सुभ्रुवः ।

---

१. एवं भर्तृदारिकया संदिष्टम् । ततो लोकपालभयाद्विघ्नं शङ्कमाना सा विमनायते ।
२. युज्यते, तदेहि यावः ।

वपुर्विरहवेदनाविधुरमङ्कपाल्यामहं
विधाय गुरुसंमदोपचितमानसः स्यां कदा ॥६॥

(नेपथ्ये) ननु अविलम्बितमेव (इत्यर्धोक्ते)

नलः—(श्रुतिमभिनीय) कथमविलम्बितमेवेत्युत्तरं वितीर्णं दैवेन। (दक्षिण-बाहुस्पन्दं सूचयति ।)

(पुनर्नेपथ्ये)

ननु अविलम्बितमेव सज्जीभवतं प्रियसख्यौ । गौरीपूजनाय याम्यहम् ।

नलः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) अये कथमत्रैवोद्याने गौरीपूजनाय भैमी सह सखीभ्यां समायाति। तदत्रैव लोकपालप्रभावाधिगतयान्तर्धानविद्ययादृश्यो भूत्वा शृणोम्यासां विस्रम्भालापान्।

(इति तथा करोति ।)

(ततः प्रविशति भैमी गृहीतपूजासंभारे सख्यौ च ।)

दमयन्ती—सखि कमले, अत्यन्तं निस्सहानि मेऽङ्गकानि नाल्पमपि गन्तुं प्रभवन्ति। तदियं गौरी भगवती। पूजयामीमाम्। (इति तथा करोति।)

नलः—अहो ! संनिधानवशात्संप्रति स्फुटमस्या अङ्गानां लावण्यं विभाव्यते। (निपुणं निरूप्य) हन्त ! कथं निराभरणैवेयमस्ति ? (सविमर्शम्) अथवा सहजेनास्या लावण्येन तिरोहिताभरणलक्ष्मीरिति मन्ये। तथाहि—

हेमावदाततनुबाहुलताद्वयेऽस्मिन्
शोभा न विस्फुरति हेमविभूषणानाम् ।
तत्रत्यरम्यकुरुविन्ददलप्रभापि
पाण्योर्विसारिरुचिभिर्ननु भर्त्सितैव ॥७॥

किञ्च—

श्रवणाश्रितं हि नयनोत्पलद्वय
श्रवणोत्पले विधुरयत्यनारतम् ।
स्मरघर्मवारिकणभूषितौ स्तनौ
न च हारभाररुचिमञ्चतो मनाक् ॥८॥

चन्द्रनन्दिवदनाम्बुजा पति
प्राप्नुयाद् द्रुतमियं सखी मम ॥१३॥

नलः—(स्वगतम्) सखि कमले, चन्द्रादीनामुपन्यासाद ग्राम्यतैव लक्ष्यते। क्व तावदिदं मुखं क्व वा स वराको राकारजनीरमणः।

दमयन्ती—सखि, निर्वर्त्तितं पूजनं तदिदानीं गच्छामः। (सवैलक्ष्य विमृश्य) कमले, साम्प्रतं न पारयामि जीवितं धारयितुम्।

पश्य—

प्राणाधिको मम तथा यदि नैषधोऽपि
पारुष्यमाश्रयति हन्त दयां विहाय।
पापा तदा कथमिदं हतजीवितं हा
धृत्वा पताम्यनुशयाम्बुनिधौ दुरन्ते ॥१४॥

(इति मूर्च्छति।)

सख्यौ—(नलिनीदलैरुपवीज्य सविषादम्) हा कधं चिरं उपवीइदा वि ण उच्छसिदि। (दीर्घं निःश्वस्य) हा लोअवाला एत्तिकं ज्जेव्व अहिलसिदं तुम्हाणं ? हा महाराअ, नेसध, कुदो एदं अवत्थन्तरं गदं अत्तणो दयिदं ण ओलम्बसि ?[1]

(संस्कृतमाश्रित्य) हा हतविधे,

भीमावनीन्द्रतनुजां विबुधेन्द्रतुल्ये
रक्तां नले विरहवह्निवितप्यमानाम्।
मूर्च्छां गतामहह कोपि न पश्यतीमां
दैवस्य दुर्विलसितं हि गिरामगम्यम् ॥१५॥

नलः—(ससम्भ्रमम्) अहह संप्रति न धैर्यमवलम्बितुमुत्सहे। (इति कथंचिदुपसृत्य पाणिना भैमीं स्पृशति।)

दमयन्ती—(मीलितलोचनैव) सखि, अन्यादृश एव ते करस्पर्शः प्रतिभाति। अमृतेनेवानेन तव स्पर्शेनोज्जीवितास्मि।

---

१. हा कथं चिरमुपवीजिता अपि न उच्छ्वसिति। (दीर्घं निःश्वस्य) हा लोकपालाः एतावदेव अभिलषितं युष्माकम् ? हा महाराज नैषध, कुत एतदवस्थान्तरं गतामात्मनो दयितां नावलम्बसे ?

कमला—अयि मुद्धे, अहं दूरादो म्हि, किं अलीअं भणसि ?[1]

नलः—(स्वगतम्) दिष्ट्या प्रत्युज्जीवितेयम् । तदपसरामि । (विमृश्य) अहो हर्षजडीभूत इव मे करो नेतः प्रचलति । (इति कथंचिदपसृतः ।)

दमयन्ती—(मीलितलोचना सखीवाक्यमश्रुत्वैव) सखि, किमिति सत्वरमपसृतासि । एहि पुनरपि तादृशेनामृतहस्तेन स्पर्शेन संभावय माम् ।

(इति नेत्रे उन्मीलयति ।)

नलः—(स्वगतम्)

ननु सुतनु तवैव स्पर्शनान्निर्वृतिर्मे
नवघनजलदानाच्चातकस्येव जाता ।
इयममृतमनोज्ञा श्रोत्रमामोदयन्ती
पुनरपि तव वाणी हारिणी कर्णमेतु ॥१६॥

कमला—सहि सच्चं भणीअदि । मया हि ण तुह प्फंसो किदो ।[2]

दमयन्ती—अत्र न कोऽप्यन्योऽस्ति । तत्केन स्पृष्टाहं । मन्ये त्वयैव परिहासार्थं गोप्यते न मया स्पृष्टासीति ।

(नेपथ्ये)

स्वयंवरः श्वो भवितेति देवी
प्रसान्त्वनायाद्य निजात्मजायाः ।
प्रासादमभ्येति समर्च्य देवं
रमापतिं मङ्गलमूलभूतम् ॥१७॥

दमयन्ती—अहो प्रमादः ! चिरायितमत्रास्माभिः । अम्बा प्रासादमागता । तत्सत्वरं संभावयामः । (इति निष्क्रान्ताः ।)

नलः—हा कथं गता एव । (सवैलक्ष्यम्) हा निष्करुण दैव,

---

१. अयि मुग्धे, अहं दूरतोऽस्मि, किमलीकं भणसि ?
२. सखि, सत्यं भण्यते, मया हि न तव स्पर्शः कृतः ।

तल्लीलाञ्चितचारुलोचनमहो वक्त्रं चिरं नेक्षितं
वाचो नापि यथेष्टमाश्रितसुधासाराः समास्वादिताः ।
नैवान्तःकरणस्य निर्वृतिरभूत्तत्संनिधानादलं
किं जातेऽपि समागमे सपदि हा विघ्नः कृतोऽयं त्वया ॥१८॥

(ऊर्ध्वमवलोक्य) कथं मध्याह्नः संवृत्तः । तथाहि—

प्रत्यग्राम्बुजिनीदलान्तरगतः प्राणाधिकां सारसः
पक्षाभ्यामुपवीजयत्ययमलिर्नीलोत्पलश्यामलः ।
प्रेयस्यास्तृषमूर्जितां शमयितुं दूरान्मधून्यानय-
न्नस्यै यच्छति तन्मुखाच्च मुदितो लीढे रसादादृतः ॥१९॥

तत्संध्योपासनाय शिबिरमेवानुप्रविशामि ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

जनकचरणचिन्तावाप्तविज्ञानलेशो
व्यधित यदतिहृद्यं सूरिरामावतारः ।
रसभरपरिपूर्णे नाटके पञ्चमेऽस्मिन्
व्यगलदनवशेषक्षीणपङ्कोऽयमङ्कः ॥२०॥

षष्ठोऽङ्कः ।

(प्रविशति प्रहृष्टः सिन्दूराञ्चितश्मश्रुः पीतवस्त्रधारी दधिविलिप्तललाटः कज्जलोपचित-कपोलो विदूषकः ।)

विदूषकः—ही ही भो कहं सोहम्हि एदेण प्पसाहणेण, मण्णे मह ज्जेव बम्हणस्स तोसत्थं वअस्सस्स विआहमहूसओ जादो । लड्डुआ भक्खिदा, वत्थाइं लद्धाइं ।[1]

(प्रविश्य)

वामनकः—साहु बम्हण, साहु सोहसि अणेण प्पसाहणेण ।[2]

विदूषकः—अवेहि रे दासीए पुत्तअ, उवहससि मं ।[3]

वामनकः—ण उवहसम्मि, णणु जरढभल्लुओ विअ साहु सोहसि त्ति भणम्हि ।[4]

विदूषकः—णणु तुमं कुदो मण्डूओ विअ अणेण जिण्णचेलेण परिविदो भमसि ।[5]

वामनकः—णणु देवीए सहीए वितिण्णं एदं चीणंसुअं, मा दाव हत्थिणो मं तुंगं दट्ठूण क्खुहिदा होन्तु त्ति एदेण परिविदो भमम्हि ।[6]

विदूषकः—साहु तु कणिट्ठामेत्तेन सरीरेण दिट्ठेण हत्थिणं क्खोहो । भण कहिं वअस्सो ।[7]

वामनकः—भट्टिणीं दट्ठुं गच्छेइ ।[8]

विदूषकः—हि वि तहिं जेव जाम्हि ।[9] (निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः ।

---

१. ही ही भोः कथं शोभे एतेन प्रसाधनेन । मन्ये ममैव ब्राह्मणस्य तोषार्थं वयस्यस्य विवाह-महोत्सवो जातः । लड्डुका भक्षिताः । वस्त्राणि लब्धानि ।

२. साधु ब्राह्मण साधु शोभसे अनेन प्रसाधनेन । ३. अपेहि रे दास्याः पुत्र, उपहससि माम् ?

४. नोपहसामि ननु जरठभल्लुक इव साधु शोभसे इति भणामि । ५. ननु त्वं कुतो मण्डूक इव अनेन जीर्णचैलेन परिवृतो भ्रमसि । ६. ननु देव्याः सख्या वितीर्णमेतच्चीनांशुकम् । मा तावद्धस्तिनो मां तुंगं दृष्ट्वा क्षुभिता भवन्तु इति एतेन परिवृतो भ्रमामि ।

७. साधु तव कनिष्ठामात्रेण शरीरेण दृष्टेन हस्तिनां क्षोभः । भण कुत्र वयस्यः ।

८. भट्टिनीं द्रष्टुं गच्छति । ९. अहमपि तत्रैव यामि ।

(प्रविशति कौतुकिताऽन्तरङ्गो राजा ।)

नलः—अहो चिरान्मे संप्रति मनोरथोपपत्तिर्जाता । तथाहि—

अलङ्घितरदांशुकस्मितमलच्यनेत्राञ्चल-
प्रचारमभृशोदयन्मणितमस्फुरद्भ्रूलतम् ।
अपूर्णसकलाङ्कक्षणकुतूहलं दुर्लभं
जनः कृततपश्चयो बत लभेत मुग्धारतम् ॥१॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—जअदु जअदु प्पिअवअस्सो । अवि णाम णववधूलाभादो सुप्पहादा रअणी प्पिअवअस्सस्स ।[1]

राजा—ननु भवति शुभचिन्तके किं न सुलभम् । तद्वयस्य, साम्प्रतं निर्वर्त्तितकृत्योऽस्मीति देवीं द्रष्टुमिच्छामि । तत्त्वमपि मया सहैवागच्छ । (इत्युभौ परिक्रम्य) कथमियं देवी सखीभ्यां सह किमपि मन्त्रयन्तीव दृश्यते ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा देवी सख्यौ च ।)

कमला—सहि, अलं अण्णधा सम्भावणाए । अणुऊलो महाराजो क्खु ।[2]

राजा—वयस्य, मत्संबद्धैव वार्त्ता । तदिहैव भूत्वा शृणुमः ।

(इति तथा कुरुतः ।)

दमयन्ती—सखि न ते वचने प्रत्येमि ।

कमला—णणु मह वअणम्मि ण पच्चओ होदु । तवैव सापत्न्यभयान्न निद्रापि संगच्छते महाराज इति महोवआरिणो पतत्तिराअस्स वअणम्मि किं ण पच्चेसि ।[3]

राजा—अहो किं नु स्यात् ? किं मयैव किमपि स्खलितम् ?

---

१. जयतु जयतु प्रियवयस्यः । अपि नाम नववधूलाभात्सुप्रभाता रजनी प्रियवयस्यस्य ।

२. सखि अलमन्यथा संभावनया । अनुकूलो महाराजः खलु ।

३. ननु मम वचने न प्रत्ययो भवतु । (तवैव...इति) महोपकारिणः पतत्रिराजस्य वचने किं न प्रत्येषि ।

दमयन्ती—अयि किमेवं मां वञ्चयसि ? तेषु किल दिवसेषु तथा भवेदार्यपुत्रस्य चेतोवृत्तिः ।

राजा—(सानुशयम्) वयस्य, अपि किञ्चिल्लक्षयसि ?

विदूषकः—हंहो पिअवअस्स, हं बह्मणो मोअएक्करसण्णो कहं णाम एदाणं वक्कवअणाणं अत्थं जाणिस्सं ।[१]

राजा भवतु स्वयमेवाग्रतः स्फुटीभविष्यति ।

कमला—अयि मिच्छाणिवंधग्गहिले एसा पदिकिदी तुह ज्जेव ।[२]

राजा—(सानुतापम्) अहो सामात्योपलब्धा देव्याः प्रतिकृतिर्गोपयितुं विस्मृता । मन्ये तामेव दृष्ट्वा देव्यान्यथैव परिशङ्कितम् । भवतु शृणोमि किं तावत्प्रतिपद्यते देवी ।

दमयन्ती—सखि किं न पश्यसि ?

कुचकुड्मलयुगमचिरोद्भिन्नमनामृष्टमञ्जुलं भाति ।
अयमधरपल्लवोऽप्यप्रचुरितरागो रदास्पृष्टः ॥२॥

तत्कस्याश्चित्कुमार्या आर्यपुत्रेण बहुमतायाः प्रतिकृतिरियम् ।

नलः—अहो मुग्धतातिशयो यत्कुमारीभावस्थस्यात्मनः प्रतिकृतिमन्यथैव संभावयति देवी ।

कमला—णणु मह उणो थणकुम्हा पिअकरपरिमद्दपिहुला अहरबिंबं पि पिअविस्सद्धपरिचुम्बणसमेहिदराअं त्ति वक्कसेसो कुदो गोविदो । णणु मुद्धे अलिअपरिसंकिदे, इमाइं पेक्ख (इति प्रतिकृतेर्भ्रूमध्ये स्थिते पिप्लुनामिके भीमवंश्यानामसाधारणचिह्ने दर्शयति) ।[३]

दमयन्ती—(सुनिपुणं निरूप्य) सखि सुष्ठूपलक्षितं त्वया, मयैवात्र भ्रान्तं तदयं वृत्तान्तो राजपुत्रस्य न वर्णनीयः ।

---

१. हंहो प्रियवयस्य, अहं ब्राह्मणो मोदकैकरसज्ञः कथं नाम एतेषां वक्रवचनानामर्थं ज्ञास्यामि ?

२, अयि मिथ्यानिबन्धग्रहिले, एषा प्रतिकृतिस्तवैव ?

३ ननु मम पुनः स्तनकुम्भौ प्रियकरपरिमर्दपृथुलौ अधरबिम्बमपि प्रियविस्रब्धपरिचुम्बनसमेधितरागमिति वाक्यशेषः कुतो गोपितः । ननु मुग्धे, अलीकपरिशङ्किते इमे प्रेक्षस्व ।

नलः—अवसरोऽयमात्मानं दर्शयितुम्।

विदूषकः—(उपसृत्य) जअदु जअदु देवी।[1]

नलः—(उपसृत्य) देवि किमिवाद्य विमनायमानामिव देवीं पश्यामि।

(दमयन्ती कमलायै चित्रगोपनाय संज्ञा करोति।)

कमला—(अबुद्ध्वैव) महाराअ ण किम्पि। केवलं चित्तं एदं (इत्यर्धोक्ते)।

(दमयन्ती सरोषं तां पश्यन्ती समुत्थाय चलिता।)

राजा—(अवष्टभ्य) अयि सुतनु, अलं कोपेनास्यां वराक्याम्। सर्वं श्रुतमेव मया। कृतमत्र व्यलीकेन।

सुतनु जहिहि रोषं पश्य मञ्जीरयुग्मं
रसति परिचलन्त्यां त्वय्यलं श्रोणिभारात्।
अधिगतनिजवासस्थानपादाब्जबाधं
ध्रुवमिदमनुकम्पां याचते शिञ्जितेन ॥३॥

अपि च—

मदिराक्षि वीक्ष्य तव रोषजृम्भणा-
दतिवेलवेल्लितमरालिते भ्रुवौ।
श्रयते जवादपि गुरू कुचाविमौ
बत वेपथुस्तनुवलग्नसुदुःसहः ॥४॥

तत्प्रसीद शतपत्रलोचने
रोचनेयमनुगण्डमुद्रितैः।
मार्जिमाञ्जमजलस्य शीकरै-
र्दास एष चरणौ स्पृशामि ते ॥५॥

(इति चरणौ स्प्रष्टुमिच्छति।)

(दमयन्ती ससाध्वसं किञ्चिदपक्रम्य संकोचिताङ्गी स्थिता।)

१, जयतु जयतु देवा।

२. महाराज न किमपि, केवलं चित्रमेतत्।

राजा—(ससंभ्रममूर्ध्वमवलोक्य) अहो सत्यमेव महोत्पातानां संरम्भः । तथाहि-

ज्वालाजालैर्जनानां ज्वरमुपजनयञ्जातवेदाः समिन्धे
देवश्चाय विवस्वान्मलिनतरघृणिर्दृश्यते लग्नकीलः ।
आशाश्चेमा न भान्ति प्रचुरतररजोराजिसंछादिताङ्गा
धात्री पात्रीभवन्तां विदलयति मनो वेपथूनामियं नः ॥८॥

(कञ्चुकिनं प्रति) आर्य विद्याधर, इदं सर्वं गुरवे गौतमाय निवेद्य सत्वरं तदादेशं मह्यमुपनय ।

कञ्चुकी—तथा (इति निष्क्रान्तः ।)

राजा—देवि, अत्रोत्पातानां महती बाधेति प्रासादाभ्यन्तरमेव प्रविशामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति षष्ठोऽङ्कः ॥

जनकचरणचिन्तावाप्तविज्ञानलेशो
व्यधित यदतिहृद्यं सूरिरामावतारः ।
रसभरपरिपूर्णे नाटके तत्र षष्ठो
व्यगलदनवशेषक्षीणपङ्कोऽयमङ्कः ॥६॥

सप्तमोऽङ्कः ।

(नेपथ्ये)

हा हा पुत्रि,—हा वत्से, किमिदम् ?

पुत्रि, मा साहसं कार्षीद्‌यात्ते कमलापतिः ।
शाश्वतं ननु सौभाग्यं न चिरात्पतिमाप्स्यसि ॥१॥

(प्रविश्य संभ्रान्ता ।)

चेटी—अम्भो कहं एसा भत्तिदारिआ उब्बन्धणाय किदोज्जोआ असरीरिणीए भारदीए णिवारिज्जदि ! हा कहं एदाए ण सुदो अज्जदणो वुत्तन्तो ?[1]

(ततः प्रविशति पाशहस्ताशोकतलस्था दमयन्ती ।)

दमयन्ती—हा कथं मन्दभागिन्यहं प्राणपरित्यागेऽपि नानुमता देवैः ।

(उपसृत्य)

चेटी—भत्तिदारिए, को एसो तुह मिसा विसाओ ? किं णु एदं ववसिदं ? किं अज्जदणो वुत्तन्तो ण सुदो ज्जेव ?[2]

दमयन्ती—अयि कः सः ?

चेटी—जं अज्ज क्खु महाराअस्स णाराअणपूअणं करिअ तदहिमुहं बहु विलअन्तस्स एवं आआसवअणेण भअवदा अणुग्गहो किदो ।[3] (संस्कृतमाश्रित्य) राजन्,

मा स्म विक्लवतां प्रायः सत्वरं क्रियते मया ।
कोऽप्युपायो नलो येन प्राप्यते धीरतां व्रज ॥२॥

---

१. अहो कथमेषा भर्तृदारिका उद्बन्धनाय कृतोद्योगा अशरीरिण्या भारत्या निवार्यते ? हा कथमेतया न श्रुतोऽद्यतनो वृतान्तः ?

२. भर्तृदारिके, क एष तव मृषा विषादः ? किं न्वेतद् व्यवसितम् ? किमद्यतनो वृत्तान्तो न श्रुत एव ?

३. यदद्य खल महाराजस्य नारायणपूजनं कृत्वा तदभिमुखं बहु विलपत एवमाश्वासवचनेन भगवता अनुग्रहः कृतः ।

दमयन्ती—हा निष्करुण विधे, कमपराधं संभाव्य नृशंसं बान्धवापसर्दं दुष्करं प्रयुज्येदृशीमवस्थां प्रापितस्त्वार्यपुत्रः ।

चेटी—अलं विसाएण । णणु लद्धा आसा । तं एहि भट्टिणी तुमं दट्ठुं इच्छदि ।[1]

दमयन्ती—क्वाम्बा साम्प्रतम् ?

चेटी—पासादब्भन्तरम्मि ।[2]

दमयन्ती—ततस्तन्मार्गमादेशय ।

चेटी—इदो इदो भट्टिदारिआ ।[3]

(निष्क्रान्ते ।)

विष्कम्भकः ।

(प्रविशति सरस्वती भीमश्च ।)

सरस्वती—वत्स, संदिष्टं च मां प्रह्णिवता देवेन कैटभारिणा यदस्यैव रूपकस्य प्रयोगेण भवतो मनोरथः संपत्स्यते । (परितो विलोक्य) वत्स, समागता एव सदेवासुरगन्धर्वा मानवाः सदसि । तत्किमिति विलम्ब्यते ?

राजा—यथाह भगवती ।

(उच्चैः) भो भोः कुशीलवाः प्रवर्त्त्यतामिदानीमभिनयः ।

(प्रविश्य)

सूत्रधारः— चक्रपाणिरसौ देवो जगतो मङ्गलं महत् ।
जयत्यनादिसंसारसूत्रधारो महामहाः ॥३॥

भो भोः सामाजिकाः, तस्यैव देवस्य निदेशादभ्युदितः करुणापावनः सारस्वतः प्रबन्धोयं लोकमङ्गलाय प्रयुज्यते ।

---

१. अलं विषादेन । ननु लब्धा आशा । तदेहि, भट्टिनी त्वां द्रष्टुमिच्छति ।

२. प्रासादाभ्यन्तरे ।

३. इत इतो भर्तृदारिका ।

(नेपथ्ये)

हा महाराज ! हा त्रैलोक्यबन्धो ! हा आर्यपुत्र ! कथमिमां त्वदेकजीवितां दासीमुपेक्षसे ?

सूत्रधारः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) अहह कष्टमापतितम् ! महाराजनलस्य धर्मपत्नी—

शोकातिभारात्कलुषान्तरेयं तपात्ययादम्बुधिगामिनीव ।
भर्त्रा वियुक्ता विधृता सखीभ्यामाक्रीडमायाति मुहुः स्खलन्ती ॥४॥

(सखेदोद्वेगम्) हन्त न पारयेऽस्या इमामवस्थां साक्षात्कर्त्तुम् !

(इति निष्क्रान्तः ।)

(ततः प्रविशति सह सखीभ्या यथानिर्दिष्टा दमयन्ती ।)

दमयन्ती—हा महाराज !—(इत्यादि पठित्वा मूर्च्छति ।)

भीमः—हा वत्से, कथमीदृशमवस्थान्तरमनुभवसि ? (इति मूर्च्छति ।)

सरस्वती—अयि वत्स, प्रेक्षणकमिदं किमतितरां विषीदसि ?

(इति चेतनामुपनयति ।)

भीमः—कथं प्रेक्षणकमिदं न भूतार्थः !

दमयन्ती—हा आर्यपुत्र ! हा नाथ ! हा प्राणप्रिय ! हा सुकृतिकुजनयनक्षणद ! क्षणदाकरकुलोत्तंस !

मनुजपशुना तेन द्यूतोपधेः सकले हृते
जलधिवलये राज्ये प्राज्ये न मन्युभरेण यत् ।
नगरमनुजैर्दृष्टः शोकाकुलं बहिरागतो
विपिनमगमस्तस्य स्मृत्वा मनो मम ताम्यति ॥५॥

किञ्च—

तदा बुभुक्षाकुलितो मराला-
न्विलोक्य हैमान्ग्रहणाय तेषाम् ।
उपर्युपाक्षिप्य निजान्तरीयं
नभः प्रयातेषु च तेषु खिन्नः ॥६॥

अङ्गानि यत्क्षौमवरोचितानि
ममार्धवस्त्रेण कथं कथंचित् ।
व्रीडानमन्मौलि तिरोदधस्त-
दद्यापि ते निर्दहतीव चेतः ॥७॥

(दीर्घं निःश्वस्य)

हा प्राणनाथ, मम मानद, दैवदोषा-
द्विस्रब्धमाकलितसुप्तिसुखां विहाय ।
दासीमिमां विदलितार्द्धदुकूलवासाः
कां कां दशामधिगतोऽसि वनान्तरेषु ॥८॥

(सापस्मारमिव) हा महाराज—

शार्दूलदारितकुरङ्गकुले भ्रमित्वा—
ऽरण्येऽतितान्तचरणाम्बुरुहो दिनान्ते ।
दास्याऽनया विरहितो व्यथमानचेता
रात्रिं कथं सह मृगैरनयः सुदीर्घाम् ॥९॥

(इति मूर्च्छति ।)

भीमः—हा वत्से, सम्प्रति न शक्तोऽस्मि । अभिभवति मां विमोहः ।

(इति मूर्च्छति ।)

सरस्वती—(चेतनामुपनीय) वत्स, कियद्दर्शयामि प्रेक्षणकमिदम् ।

भीमः—भगवति, यत्किञ्चिदस्तु । न पारये द्रष्टुम् ।

सरस्वती—ननु शुभोऽस्योदर्क इति भगवता समादिष्टं तत्किं विषीदसि ?

(दमयन्ती मूर्च्छति ।)

सख्यौ—(चेतनामुपनीय) हा सहि केत्तिअं दूरं खेदावेसि अत्ताणं ?[1]

दमयन्ती—(अश्रुत्वैव)

हा नाथ हा सकलभूतलरत्न राज-
न्नद्यापि यापितबहुव्यसनां दयार्द्रैः ।
आश्वासनस्य वचनैरमृतोपमाहः-
र्हा हन्त हन्त परिवर्द्धयसे न किं माम् ॥१०॥

---

१. हा सखि, कियद्दूरं खेदयसि आत्मानम् ।

(सावष्टम्भम्) अथवा किमत्र निरागसं महाराजमुपलभे। ममैव दौर्भाग्य-
विलसितमिदं सकलम्।

(सविषादम्) भो हतविधे, किं नाम तत्र निर्जने वने विचरन्तीं माम्—

व्यालेन तेन समवर्त्ति[1]गृहप्रकोष्ठ-
द्वारप्रभं वदनमुद्वहता निगीर्णाम्।
संमोच्य पारपरिवर्जितदुःखवार्धौ
निक्षिप्तवानसि श्यामपहाय दूरम् ॥११॥

(सविमर्शम्) अथवा कोऽत्र दैवस्य दोषः। स व्याल एव पातकिनीं मामर्द्धनि-
घृणया मुखादपाकृतवान्। हा भगवन् वासुदेव, त्वयापि नानुकम्पितेयं दुःख-
किं मां मातृष्वसुर्गृहे वह्निप्रवेशमहोत्सवमनुभवितुं समुद्यतामकस्मादेव
पित्रोर्वैक्लवतामुपश्राव्य समानीतवानसि। (इति मूर्च्छति।)

सख्यौ—(चिरमुपवीज्य) हद्धी कहं ण अज्ज वि उज्जिवइ। ता सुद्धन्तं ज्जेव
प्पविसामः।[2]

उभे—(संस्कृतमाश्रित्य)

हा सोमवंशाङ्कुर नैषधेन्द्र
प्राणांस्त्यजन्तीं दयितां तवेमाम्।
किं नाम नाश्वासयसे समेत्य
द्यूते हता ते करुणापि किं वा ॥१२॥

(इति पठन्त्यौ रुदत्यौ कथंचिद्दमयन्तीमवष्टभ्य निष्क्रान्ते।)

गर्भाङ्कः।

भीमः—हा कथं नैवोज्जीविता वत्सा। (इति मूर्च्छति।)

(सरस्वती चेतनामुपनयति।)

(नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

---

१. समवर्त्ती—यमराजः।

२. हा धिक् कथंनाद्यापि उज्जीवति, तत् शुद्धान्तमेव प्रविशावः।

हृद्यो— जन्मान्तरेऽपि 'भवतीं' दयितां लभेय
भीमावनीन्द्रतनुजे विगलद्वियोगम् ।
इत्यालपन्स गतवानृतुपर्णनाम्नो
भूपस्य सारथिरनौषधमेव मोहम् ॥१३॥

(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति ।)

भीमः सरस्वती च—(ससम्भ्रममुत्थाय) हन्त किमिदं स्यात् ? कथितं च ह्यः कमलया वत्सायाः सख्या यथा ऋतुपर्णस्य राज्ञो रथघोषमनुकरोतीति । तद् गत्वा पश्यामः (इति परिक्रामतः ।)

(ततः प्रविशति सारथिभ्यां वीज्यमानो मूर्च्छितो विरूपो नलः ।)

सारथी—हद्धि कहं अज्ज वि ण उच्छसिदि ![1]

(उपसृत्य)

सरस्वतीभीमौ-(सविमर्शम्) हा कथमिदं रूपान्तरमधिगतो वत्सः ! (उपवीज्य) हा कथं नोज्जीवति !

भीमः—हा वत्स ! क्वासि गतः ? हा भगवन् मधुसूदन, किमिदमुपन्यस्तम् ? हा भगवति भारति एष ते रूपकार्थः ! (मूर्च्छितः ।)

सरस्वती—आश्वसितु वत्सः । सर्वं शुभमेव भावि ।

(आकाशात्प्रविश्य)

नारदः—भो भो. अन्तःपुरचारिणः परिचारकाः !

आदेशादित एव दानवरिपोर्भैमी समानीयताम्
(उच्चैः) आतोद्यादि च मङ्गलं पुरजनैः स्वैरं समारभ्यताम् ।
(सहर्षातिरेकम्) उत्तीर्णो निषधाधिपोऽयमधुना दीर्घाममूमापदम्
(सोत्कण्ठम्) जातं सम्प्रति भूतलं किमथवा त्रैलोक्यमेवोज्ज्वलम् ॥१४॥

(ततः प्रविशति सखीभ्यां धार्यमाणा कृशाङ्गी करुणरसाधिदेवतेव दारकाभ्यामनुगता भैमी ।)

(नारदः कमण्डलूदकेन नलं सिञ्चति ।)

---

१. हा धिक् ! कथमद्यापि नोच्छ्वसिति !

(नलः उत्थाय पादयोः पतति नारदस्य ।)

नारदः—वत्स, उत्तिष्ठ, नागराजेन कर्कोटकेन वितीर्णं वस्त्रं परिधत्स्व । (नलः तथा करोति)

(सर्वे सविस्मयं तस्य पूर्वं रूपं पश्यन्ति ।)

दमयन्ती—(दारकौ प्रति) (सास्रम्) वत्सौ प्रणमतं चिराद्दृष्टस्य तातस्य चरणौ ।

(दारकौ तथा कुरुतः)

नारदः—वत्स नल, इयं भगवती भारती, अयं च ते श्वशुरः । तदिमौ प्रणम ।

नलः—(सरस्वत्याः पादयो पतित्वा) भगवति अयं दासो वैरसेनिः प्रणिपतति ।

सरस्वती—(उत्थाप्य) वत्स, चिराय जगतो मङ्गलं भूया ।

(नलः भीमं प्रणमति ।)

भीमः—(उत्थाप्य) वत्स, चिराय ते देवो मधुसूदनः क्षेमं दिश्यात ।

(प्रविश्य)

वार्ष्णेयः—महाराज, देशं हित्वा पुष्करः पलायितः ।

सर्वे—प्रियं नः प्रियम् । नष्टः स द्यूतकराधम ।

भीमः—(दमयन्तीं प्रति) वत्से, भगवतीं महर्षिं च प्रणम ।

(भैमी तथा करोति ।)

उभौ—वत्से, अवियुक्ता दयितेन चिरं वसुधाराज्यसुखमनुभूयाः ।

सरस्वती—वत्स, वैरसेने, किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ।

नलः—भगवति, किमत परं प्रियमस्ति ।

प्राप्ता त्रिलोकतिलकत्वमिता प्रियेयं
दुःखाम्बुधिश्च सुमहान्परितीर्ण एषः ।
नष्टो रिपुर्जलधि-ारविसारि किं च
साम्राज्यमाप्तमतुलो हि तव प्रसादः ॥१५॥

तथापीदमस्तु ! (भरतवाक्यम्)

भूयाद्रूपकमुत्तमं परिमलैरानन्दयन्सज्जना-
नेतत्सूरिमिलिन्दमानसमुदे वृन्दारकैर्वन्दितम् ।
शुभ्रेन्दीवरदामसुन्दरतरं वन्दारुवृन्दे परं
दाक्षिण्यं दधत. सदा करुणया नारायणस्य प्रभोः ॥१६॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

॥ इति सप्तमोऽङ्कः ॥

जनकचरणचिन्तावाप्तविज्ञानलेशो
व्यधित यदतिहृद्यं सूरिरामावतारः ।
रसभरपरिपूर्णे नाटके सप्तमोऽस्मिन्
व्यगलदनवशेषक्षीणपङ्कोऽयमङ्क. ॥१७॥

॥ समाप्तमिदं धीरनैषधम् ॥

साहित्यरत्नावली

(१) परिमलः ।

तत्रभवान् मृगांकदत्तसूनुः पद्मगुप्तापराख्य परिमलमहाकविः श्रीभोजदेवपितृव्यस्य धारेश्वरस्य वैक्रमीयैकादशशतकोद्भूतस्य वाक्पतिराजदेवस्य सभां भूषयामास। वाक्पतिराजदेवो भोजपितामह इति निर्णयसागरमुद्रितेषु प्राचीनलेखेषु दुर्गाप्रसादपण्डितस्योक्तिस्तु प्रमादमूलिका, लेखेषु 'तत्पादानुध्यात'शब्देन तदुत्तराधिकारिणो ग्रहणान्न पुत्रस्यैव, तथा च वाक्पतिराजपादानुध्यातः सिन्धुराजस्तत्पादानुध्यातो भोज इत्यादिना सिन्धुराजो वाक्पतिराजानन्तरं भुवं बुभोजेत्येव गम्यते। तयोः कः संबन्ध इत्यत्र तु—

"दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रामदत्त यां वाक्पतिराजदेवः ।
तस्यानुजन्मा कविबान्धवस्य भिनत्ति तां संप्रति सिन्धुराजः ॥"

इति श्लोक एव परिमलस्य प्रमाणम् ।

अस्यैव च वाक्पतिराजानुजस्य भोजपितुः सिन्धुराजस्य कुमारनारायणापरनाम्नो नवसाहसाङ्कोपाधिकस्येतिवृत्तं नवसाहसाङ्कचरिताख्यं परिमलः प्रणिनाय ।

सिन्धुराजो मृगयानुसारेण विन्ध्यकानने भ्रमन्कनकशृंखलावेष्टितग्रीवमद्भुतं कमपि मृगं विलोक्य मोहित इव तमनुजगाम । अनुगच्छता च नृपेण—

"शिलाभेदक्षमेणापि किमपि श्लथमुष्टिना ।
अभूद्विद्धः स सारङ्गस्तेन त्वचि न मर्मणि ॥"

नृपनामाङ्कं बाणमङ्गे वहन्मृगोऽपि जवात्कुञ्जान्तरेषु धावन्ननतिदूरे नर्मदातटे सखीभिः सह क्रीडन्त्याः निजस्वामिन्याः फणिकन्यायाः समीपं जगाम। तत्र च बाणं नृपनामाङ्कं विलोक्यैव दैवनिर्देशितेव शशिप्रभा तस्मिन्ननुरागं बभार। नृपोऽपि मृगमन्वेष्टुं रमाङ्गदाख्येन निजामात्येन सहितोऽनुचरान् विहाय घने वने विचरन् मुक्ताहारं वहन्तं कमपि हंसमाकाशे विलोक्य, तदनुसारी कस्यापि ह्रदस्य पुलिने तत्पातितं हारं गृहीत्वा, तत्र नीलमणिभिर्लिखितं शशिप्रभाया नाम विलोक्य तस्यां

मुत्कण्ठितस्तां रात्रिं तत्रैव नीत्वा, प्रभाते शशिप्रभायाः सखीं पाटलाख्यामितस्ततः
देहृतहारविचयव्यग्रां दृष्ट्वा तत्सकाशादात्मनि नागदुहितुः प्रणयं ज्ञात्वा नर्मदातटे
ददर्श। तत्र तदागमनमसहमानैः फणिभिर्मायाबलाद्विघ्नितमनोरथः सहसोदिते
मिरचक्रवाताद्युपद्रवेऽन्तर्हिता प्रियामन्विष्यन्नृपः शरीरिण्या नर्मदयोपसृत्य "यो
त्रांकुशराक्षसात्स्वयं तस्य सरसि निर्गतं कनक कमलमाहृत्य शशिप्रभायाः कर्णावतंसो-
र्यात्स एव तस्याः पाणिग्राही भवेदिति" तत्पितुर्नियमं परिज्ञाय नर्मदोपदिष्टमेव
न्थानमनुसरन् ऋषिभ्यो विद्याधरेभ्यो नागेभ्यश्च साहायकं दैवोपस्थापितमाददानो
द्याधरसेनया वज्रांकुशं विजित्य कनककोकनदं शशिप्रभायाः कर्णपूरीकृत्य तां परि-
ीय पुनः स्वनगरीमाजगामेति मूलकथा अस्मिन् काव्ये वर्णिता। अयं च कविर्भास-
ौमिल-कालिदास--भर्तृमेण्ठाश्वघोष-बिह्लणादिवत् वैदर्भरीतिमेव सर्वदानुसरति।
था च बिह्लणसूक्तयो द्राक्षापाकापमास्तथैवास्य सूक्तयः सद्योवृन्तविलूनद्राक्षामधुराः
तां मनोवृत्तय इव च सुप्रसन्नाः। प्रौढौ बिह्लणः प्रकृष्यते, सरसत्वे तु परिमलः।

यद्यप्यस्य केचिन्मालवेन्द्रस्तुतिरूपाः

"मग्नानि द्विषतां कुलानि समरे त्वत्खड्गधाराजले
नाथास्मिन्निति बन्दिवाचि बहुशो देव श्रुतायां पुरा।
मुग्धा गुर्जरभूमिपालमहिषी प्रत्याशया पाथसः
कान्तारे कृपणा विमुञ्चति मुहुः पत्युः कृपाणे दृशौ॥"

इत्याद्याः श्लोकाः सुभाषितग्रन्थेषूपलभ्यन्ते, तथापि नाद्याप्यस्य प्रबन्धान्तराणि
नाम्नापि विदितानि।

साहसाङ्कचरितं प्राचां प्रियमासीत्, तथाहि दशरूपके धृतः श्लोकः,

'चित्रवर्तिन्यपि नृपे तत्त्वावेशेन चेतसि।
व्रीडार्धवलितं चक्रे मुखेन्दुमवशैव सा॥' (षष्ठे सर्गे ४२)

दर्पणे च—'अनातपत्रोऽप्ययम्' इत्यादिचतुर्थसर्गश्लोकः।

अस्य ग्रन्थस्य कीदृशं माधुर्यादिकमित्यादि अधोविलिख्यमानात्प्रबन्धात्स्फुटी-
भविष्यति।

परिमलकृते साहसाङ्कचरिते चतुर्थे सर्गे—

ततः स चेतस्यवनिपतिर्दधे शशिप्रभालोकमहोत्सवस्पृहाम् ।
उपोढरागामुदधिस्तटोदरे नवोद्गतां विद्रुमकन्दलीमिव ॥१॥
शशिप्रभाशानलिनीमृणालतामुपागते मौक्तिकदाम्नि सादरः ।
तदागते दूत इव न्यवेशयत् स दर्शितप्रेमलवे विलोचने ॥२॥
पुनः पुनः षट्पदराजिमेचकां तदिन्द्रनीलाक्षरपंक्तिमैक्षत ।
स तत्क्षणान्मन्मथजातवेदसस्तनीयसीं धूमलतामिवोद्गताम् ॥३॥
सुगन्धिहारादनुलेपनं करे समुन्मिषत्स्वेदलवे विलुम्पति ।
असंगताया अपि दीर्घचक्षुषः पयोधरस्पर्शमिवाससाद सः ॥४॥
तदीयनामाङ्कलिपि शनैः शनैः सलीलमावर्त्तयितुं प्रचक्रमे ।
परिस्फुरत्पल्लवपाटलाधरो रहस्यविद्यामिव मन्मथस्य सः ॥५॥
अनेकरूपालिखनप्रगल्भया सुतीक्ष्णया वर्त्तिकयेव चिन्तया ।
स तामनाप्तेक्षणसंस्तवां पुरा लिलेख चित्ते मुहुरन्यथान्यथा ॥६॥
अनङ्गचण्डातपतप्तयोस्तदा शशिप्रभाविभ्रमदर्शनं प्रति ।
द्वयोरभूदुत्सुकता वनान्तरे विलासिनस्तस्य च कैरवस्य च ॥७॥
उदग्रदिग्वारणहस्तहारिणा स दक्षिणेन स्फुरता च बाहुना ।
स्थिरीकृताशो मनसापि दुर्लभामदुर्लभामिन्दुमुखीममन्यत ॥८॥
पुरो विमुञ्चन्नयने यदृच्छया नृपस्तमालद्रुमकाननोदरे ।
अपश्यदत्रावसरे विलासिनीं पयोदमध्ये शशिनः कलामिव ॥९॥
विभिन्नचूर्णालकभक्ति कुर्वतो विकीर्णचूडामणिचन्द्रिकं शिरः ।
अथानुभावेन निदेशितेव सा ननाम मानिन्यवशा विशाम्पतिम् ॥१०॥
दृशा नरेन्द्रेण निदेशिते स्वय शिलातले नातिविदूरवर्त्तिनि ।
उपाविशत्सा रशनामणित्विषा निषिच्यमानेऽमरचापशोभिनि ॥११॥
तयातिदीर्घैर्दशनानुपातिभिर्विकृष्यमाणामिव भूषणांशुभिः ।
इति क्षितीशेङ्गितवर्त्मदीपिकामुदीरयामास गिरं रमाङ्गदः ॥१२॥
अनेन विन्ध्याद्रिविहारजन्मना श्रमेण कामं भवती कदर्थिता ।
प्रसुप्तजूटाहिमुखानिलोष्मणा जटाविटङ्केन्दुकलेव शूलिनः ॥१३॥
अमी सरोजप्रतिमे मुखे मुहुस्तवातपाताम्रकपोलभित्तिनि ।
समुन्मिषन्ति श्रमवारिबिन्दवो नताङ्गि लावण्यसुधालवा इव ॥१४॥

इतोऽवतंसोत्पललास्यदेशिके निरन्तरं गन्धवहे वहत्यपि ।
न घूर्णते स्विन्नललाटसङ्गिनी तवालकश्रेणिरियं मनागपि ॥१५॥

अनेन पीनस्तनकम्पदायिना निरायतेनोद्वहता कदुष्णताम् ।
अयं प्रवालादपि पाटलच्छविर्न दूयते निःश्वसितेन तेऽधरः ॥१६॥

उदित्यपंक्त्या श्रमवारिविप्रुषां निरन्तराध्यासितरेखयानया ।
तवैप कण्ठः कुटजावदातया ःविलासमुक्तालतयेव भूष्यते ॥१७॥

इद महच्चित्रममानुपं त्वया विगाह्यते यद्वनमद्वितीयया ।
इमाः क्व विन्ध्यस्य भुवोऽतिदुर्गमाः क्व राजवेश्माभरणं भवादृशी ॥१८॥

नवोद्गताशोकपलाशकान्तिना निकामनिर्यन्नखचन्द्रिकेण च ।
बिभर्षि कस्येदमनेन पाणिना वदावधूतेन्दुमरीचि चामरम् ॥१६॥

नृपस्य कस्यापि परिच्छदाङ्गना यदि त्वमुच्चैर्विभवो हि कोऽपि सः ।
मरुत्पतिर्मेनकयेव तन्वि यस्त्वयापि वालव्यजनेन वीज्यते ॥२०॥

अथर्धिमत्या परवत्यसि स्त्रिया कयापि कासौ जगदेकसुन्दरी ।
नतभ्रु यस्याः स्मरचापयष्टयो विधेयतां यान्ति भवद्विधा अपि ॥२१॥

परस्परस्पर्धिविलाससम्पदां भयं भवत्स्वामितया विकल्प्यते ।
मरुत्वतो वा रमणी रमाऽथवा कलत्रमर्धेन्दुविभूषणस्य वा ॥२२॥

इयं परिश्रान्तिरगेन्द्रकन्दरे सखीव तं शंसति कार्यगौरवम् ।
भवादृशः श्वापददूषितेऽन्यथा चरन्त्यरण्यं किमधीतनीतयः ॥२३॥

अनेन खेलन्मददन्तिना वद त्वमागता चण्डि कुतो दुरध्वना ।
विधाय विश्लेषविपादमावयो. स्वकार्यनिष्ठे कथय क्व यास्यसि ॥२४॥

इति साभिहिता मृगायताक्षी समुपोढप्रणयं यशोभटेन ।
सहसा न जगाद लज्जया (नु) श्रमतः किं नु नृपस्तु तामवोचत् ॥२५॥

श्रान्तासि कौतुकहृतेन कदर्थितासि
प्रश्नैरनेन विहितो न तवोपचारः ।
आतिथ्यमेष कुरुते परमङ्गलेखा—
संवादनैकचतुरो निचुलानिलस्ते ॥२६॥

एवं निसर्गमधुरेण सुधारसैक—
निष्यन्दिना फणिवधूरथ सा हसन्ती ।
चन्द्रांशुना कुमुदिनीव दिनोष्मतप्ता
वीतक्लमा नरपतेर्वचसा बभूव ॥२७॥

('मित्रगोष्ठी-पत्रिका', वाराणसी, प्रथमे वर्षे, प्रथमसंख्या, १८२६ शाकाब्दाः, वैशाखः ।)

[२] अश्वघोषः ।

अश्वघोषमहाकविः कदा बभूवेति निश्चेतुं न शक्यते । भदन्ताश्वघोषनाम्नो बौद्धस्य केचिदपरेऽपि ग्रन्था आसन्निति विविधग्रन्थपरिशीलनादवगम्यते । अयं बुद्धचरितकर्त्ता तु बौद्धो न वेत्यापि न वक्तुं शक्यते । अबौद्धेनापि हि व्यासदासापरनाम्ना क्षेमेन्द्रमहाकविना बोधिसत्त्वावदानकल्पलता प्राणायि । न चात्रोपक्रमादिशैलीतोऽपि कवेर्बौद्धत्वमवगन्तुं सुशकम् । किं तु रामायणेन रघुवंशेन च केषुचित्स्थलेषु साम्यात् कालिदासस्येवास्यापि कवेः प्रसादप्रियत्वान्माघाद्यर्वाचीनकवीनां रीतेश्च क्वचिदप्यस्मिन्ग्रन्थे दर्शनाभावात् कालिदासात्पूर्वं वा तत्समकालमेव वा कविरयमासीदिति ज्ञायते ।

साम्प्रतमेकं बुद्धचरितमेवैतत्प्रणीतमुपलभ्यते । अत्र शान्तोऽङ्गी, करुणोऽङ्गम् । प्रसादमाधुर्यमयी वैदर्भी रीतिः । स्वाभाविकं चैतत् । तथाहि भवभूतिं विहाय करुणप्रधानो न कोऽपि कविरोजःप्रियः । नच शान्तस्य परिपोषः शब्दकाठिन्येन क्लिष्टार्थबाहुल्येन च कथञ्चित्साध्यः ।

प्रायस्त्रिविधाः कवयः सर्वदेशेषूपलभ्यन्ते—

"केचिद्वदन्त्यभिमतं प्रायोऽनभिमतमपि ब्रुवन्त्यपरे ।
किमभिमतं तेषामिति केचिन्नैव प्रकाशयन्ति पुनः ॥"

तत्र कालिदासोऽभिमतवादिनां मुख्यः । को हि संदिग्धे—

"क्लेशावहा भर्त्तुरलक्षणाहं सीतेति नाम स्वमुदीरयन्ती ।
स्वर्गप्रतिष्ठस्य गुरोर्महिष्यावभक्तिभेदेन वधूर्ववन्दे ॥"

(रघौ चतुर्दशे सर्गे)

इत्येतस्य

"मृग्यश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम् ।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि ॥"

(तत्रैव त्रयोदशे)

इत्यस्य वा श्लोकस्यार्थग्रहणे ।

नैषधीयकारस्तु कदाचिदनभिमतमपि वक्ति, तद्यथा सुप्रसिद्ध 'तव वर्त्मनि शिवमिति'[1] श्लोके। ईदृग्विधेषु तु श्लोकेषु प्रकरणादिना समुचितोऽर्थो निश्चेतुं शक्यते। क्वचित्तु कविः किमभिप्रैतीति नारायणपण्डितोऽपि वक्तुमशक्नुवन् 'किं वेत्यादि' प्रलपन् 'ग्रन्थग्रन्थिरिह' 'प्राज्ञं मन्यमना हठेन पठितामस्मिन् खलः खेलतु' श्रीहर्षोच्चारितस्योपालम्भस्य भाजनमात्मानं विधत्ते। न हि केनापि—

महानटः किं नु स भानुरागे सन्धाय सन्ध्या कुनटीमपीशाम्।
तनोति तन्वा वियतापि तारहारस्रजा साम्प्रतमङ्गहारम्॥"

(नैषधीये द्वाविंशे सर्गे)

पद्यस्य कः स्वारसिकोऽर्थ इति सुखेन निश्चीयते।

ईदृशेषु च त्रिविधेषु कविषु अश्वघोषः कालिदासवदभिमतवादिनामन्यतमः। च करुणशान्तयोरादृशः परिपोष, ईदृशो माधुर्यानुबन्धो प्रसादश्च ान्प्रबन्धान्विहाय न क्वाप्युपलभ्यते।

अत्र च —

"अभवच्छयिता हि तत्र काचिद्विनिवेश्य प्रचले करे कपोलम्।
दयितामपि रुक्मपत्रचित्रां कुपितेवाङ्कगतां विहाय वीणाम्"
नवपुष्करगर्भकोमलाभ्यां तपनीयोज्ज्वलसंगताङ्गदाभ्याम्।
स्वपिति स्म तथापरा भुजाभ्यां परिरभ्य प्रियवन्मृदङ्गमेव॥

इत्यादिप्रबन्धेन सुन्दरकाण्डस्थस्य[2] हनुमत्कर्तृकरावणान्तःपुरदर्शनस्य साम्यं बुद्धे विनिर्गत्य नगरोपवनं व्रजति विलासिनीनां चेष्टाश्च "बभूवु- त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि।" इत्यादिना रघौ कृतस्य वर्णनस्या- समुपलभ्यन्ते।

अत्रोदाहृतानां गुणानां स्पष्टप्रतिपत्तयेऽत्यन्तमधुरः करुणोऽयं प्रबन्ध उपन्यस्यते-

---

१. तव वर्त्मनि वर्त्ततां शिवं पुनरस्तु त्वरितं समागमः।
अयि साधय साधयेप्सितं स्मरणीयाः समये वयं वयः॥

तपश्यते काव्यप्रकाशकृते मम्मटाय श्रीहर्षेण स्वकविताया आदर्शभूतोऽयं श्लोकः प्रद- तेन च दूषणोल्लासप्रणयनात्पूर्वं न मया भवतो ग्रन्थ उपलब्धोऽन्यथा दूषणोदाहरणान्वे- प्रयुक्तो महान् मे क्लेशः परिहृतोऽभविष्यदित्यनुतापः कृतः। अत्र वर्त्म निवर्त्ततां, स त्वं मागमः वयं स्मरणीयाः कथावशेषा इत्यादि विरुद्धोऽर्थः प्रतिभाति।

२. तद्यथा वाल्मीकीये सुन्दरकाण्डे—

"स्त्रियो ज्वलन्तीस्त्रपयोपगूढा निशीथकाले रमणोपगूढाः।
ददर्श काश्चित्प्रमदोपगूढा यथा विहङ्गा विहगोपगूढाः॥"—इत्यादि

बुद्धचरिते—

ततस्तथा भर्त्तरि राज्यनिःस्पृहे तपोवनं याति विवर्णवाससि ।
भुजौ समुत्क्षिप्य ततः स वाजिभृद् भृशं विचुक्रोश पपात च क्षितौ ॥१॥
विलोक्य भूयश्च रुरोद सस्वर हयं भुजाभ्यामुपगूह्य कन्थकम् ।
ततो निराशो विलपन्मुहुर्मुहुर्ययौ शरीरेण पुरं न चेतसा ॥२॥
यमेकरात्रेण तु भर्त्तराज्ञया जगाम मार्गं ,सह तेन वाजिना ।
इयाय भर्त्तुविरहं विचिन्तयंस्तमेव पन्थानमहोभिरष्टभिः ॥ ३ ॥
निशम्य च स्रस्तशरीरगामिनौ विना गतौ शाक्यकुलर्षभेण तौ ।
मुमोच वाष्पं पथि नागरो जनः पुरा रथे दाशरथेरिवागते ॥ ४ ॥
पुनः कुमारोविनिवृत्त इत्यथो गवाक्षमालाः प्रतिपेदिरेऽङ्गनाः ।
विविक्तपृष्ठं च विलोक्य वाजिनं पुनर्गवाक्षाणि पिधाय चुक्रुशुः ॥ ५॥
विगाहमानश्च नरेन्द्रमन्दिरं विलोकयन्नश्रुवहेन चक्षुषा ।
स्वरेण पुष्टेन रुराव कन्थको जनाय दुःखं प्रतिवेदयन्निव ॥ ६ ॥
ततः सबाष्पा महिषी महीपतेः प्रनष्टवत्सा महिषीव वत्सला ।
प्रगृह्य बाहू निपपात गौतमी विलोलपर्णा कदलीव काञ्चनी ॥ ७ ॥
तथैव रोषप्रविरक्तलोचना विषादसम्बन्धकषायगद्गदम् ।
उवाच निःश्वासचलत्पयोधरा विगाढ़शोकाश्रुधरा यशोधरा ॥ ८ ॥
निशि प्रसुप्तामवशां विहाय मां गतः क्व स च्छन्दक मन्मनोरथः ।
उपागते च त्वयि कन्थके च मे समं गतेषु त्रिषु कम्पते मनः ॥ ६ ॥
प्रियेण वश्येन हितेन साधुना त्वया सहायेन यथार्थकारिणा ।
गतोऽर्यपुत्रो[1] ह्यपुनर्निवृत्तये रमस्व दिष्ट्या सफलः श्रमस्तव ॥१०॥
वरं मनुष्यस्य विचक्षणो रिपुर्न मित्रमप्राज्ञमयोगपेशलम ।
सुहृद्ब्रुवेन ह्यविपश्चिता त्वया कृतः कुलस्यास्य महानुपप्लवः ॥११॥
अनर्थकामोऽस्य जनस्य सर्वथा तुरंगमोऽपि ध्रुवमेष कन्थकः ।
जहार सर्वस्वमितस्तथाहि मे जने प्रसुप्ते निशि रत्नचौरवत् ॥१२॥

---

१. एतादृशेभ्य' प्रयोगेभ्यो बुद्धचरितस्य रघुवंशादिभ्योऽपि प्राचीनत्वं सम्भाव्यते ।

यदा समर्थः खलु सोढुमागतानिषुप्रहारानपि किं पुनः कशाः ।
गतः कशापातभयात् कथं त्वयं श्रियं गृहीत्वा हृदयं च मे समम् ॥१३॥
अनार्यकर्मा भृशमद्य हेषते नरेन्द्रधिष्ण्यं प्रतिपूरयन्निव ।
यदा तु निर्वाहयति स्म मे प्रियं तदा हि मूकस्तुरगाधमोऽभवत् ॥१४॥
समाप्तजाप्यः कृतहोममङ्गलो नृपस्तु देवायतनाद्विनिर्ययौ ।
जनस्य तेनार्त्तरवेण चाहतश्चचाल वज्रध्वनिनेव वारणः ॥१५॥
निशम्य च च्छन्दककन्थकावुभौ सुतस्य संश्रुत्य च निश्चयं स्थिरम् ।
पपात शोकाभिहतो महीपतिः शचीपतेर्वृत्त इवोत्सवे ध्वजः ॥१६॥
ततो मुहूर्त्तं सुतशोकमोहितो जनेन तुल्याभिजनेन धारितः ।
निरीक्ष्य दृष्ट्या जलपूर्णया हयं महीतलस्थो विललाप पार्थिवः ॥१७॥
बहूनि कृत्वा समरे प्रियाणि मे महत्त्वया कन्थक विप्रियं कृतम् ।
गुणप्रियो येन वने स मे सुतः प्रियोऽपि सन्नप्रियवत्प्रचारितः ॥१८॥
तदद्य मां वा नय तत्र यत्र स व्रज द्रुतं वा पुनरेनमानय ।
ऋते हि तस्मान्मम नास्ति जीवितं विगाढरोगस्य सदौषधादिव ॥१९॥
प्रयच्छ मे भद्र तदाश्रमाजिरं हृतस्त्वया यत्र स मे जलाञ्जलिः ।
इमे परीप्सन्ति हि मे पिपासवो ममासवः प्रेतगतिं यियासवः ॥२०॥
इति तनयवियोगजातदुःखः क्षितिसदृशं सहजं विहाय धैर्यम् ।
दशरथ इव रामशोकवश्यो बहु विललाप नृपो विसंज्ञकल्पः ॥२१॥

[मित्रगोष्ठी-पत्रिका, काशी, शकाब्दः १८२६, प्रथमवर्षस्य द्वितीया संख्या ।]

कुमारदासः

"जानकीहरणं कर्त्तुं रघुवंशे स्थिते सति ।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ ॥"
(सूक्तिमुक्तावल्यामुद्‌धृत.) राजशेखरः ।

कुमारदासो वैक्रमीये षष्ठशतके सिंहलाधीश आसीत् । अशोकापराख्यस्य चन्द्रगुप्तपौत्रस्य प्रियदर्शिनो वंशे समुद्‌भूतोऽयमिति बौद्धग्रन्थेभ्योऽवगम्यते । रघुवंशादिप्रणेतुः कालिदासस्यायं मित्रमासीदिति किंवदन्ती । तत्र नान्यत्प्रमाणम् । एतस्य मित्रं कोऽपि रघुवंशकर्त्तुर्भिन्न एव कालिदासाख्यः शृङ्गारतिलकादिक्षुद्रप्रबन्धानां प्रणेता भवेत् । बहवो हि कालिदासाख्यया प्रथिताः कवयः । कालिदासस्य तादृशी प्रसिद्धिर्येन तन्नाम कविसामान्यापरपर्यायत्वेनावतिष्ठते । राजशेखरस्य त्रयः कालिदासा विदिता बभूवुः । तथाहि तस्य श्लोकः—

"एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु" ॥२॥

एषां त्रयाणामेको मुख्यः कालिदासः श्रव्यकाव्यत्रयस्य नाटकत्रयस्य च प्रणेता विक्रमार्कसभ्यः कविकुलगुरुः । अपरौ काविति विशेषौ दुरूहः । अष्टमशतके भवभूतेः समकालिकः कश्चित् कालिदासः । परिमलोऽपि कालिदासापराख्यः । कश्चित् कालिदासो भोजसभायामप्यासीत् । एतावेकादशशतकोद्भूतौ । अनयोरन्यतरो माघसमकालिकः । भागवतचम्पूकारः अभिनवकालिदासाख्ययात्मानं व्यवहरति । एवं शंकरविजयकारो माधवोऽप्यात्मानं कालिदासमाचष्टे । कुमारदासमित्रस्य कालिदासस्य कदाचित् सिंहले गमनं, तत्रराजकीयवारविलासिनीद्वारे राज्ञा लेखितायाः 'कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते' इत्यस्याः समस्यायाः 'बाले तव मुखाम्भोजे दृष्टमिन्दीवरद्वयमिति तेन पूरणमित्यादिकथा सिंहलवृद्धेषु प्रसिद्धा । सर्वं चैतद्यथा तथा वास्तु कुमारदासेन प्रणीतं जानकीहरणमतिरुचिरं रघुवंशशैलीं च सर्वथाऽनुकरोति । नान्यः कोऽपि कविः कालिदासीयां शैलीमनुकृत्यै तादृशीं सफलतामासादितवान् । ग्रन्थोऽयं खण्डित एवाद्यावधि प्राप्त इति दुःखस्य विषयः । पूर्वसूरीणां विदितोऽयं प्रचुरप्रचारो ग्रन्थः । तथाहि गणरत्नमहोदधिकारेण 'मद्विषधूसरितः सरितस्तटः' इति जानकीहरणे

यमकमित्युक्तम्। 'वरतनु संप्रवदन्ति कुक्कुटाः' इति वाक्यस्य पातञ्जले महाभाष्ये उद्धृतस्य औचित्यविचारचर्चायां क्षेमेन्द्रेणोद्धृते कुमारदासीये—

"अयि विजहीहि दृढोपगूहनं त्यज नवसगमभीरु साध्वसम्।
अरुणकरोद्गम एष वर्त्तते वरतनु संप्रवदन्ति कुक्कुटाः॥"

इत्यत्र दर्शनात् पतञ्जलेरपि कुमारदासः प्राचीन इति केषांचित् प्रमादः। पतञ्जलिना तद्वाक्य ग्रन्थान्तरे दृष्टमिति सभवात्। श्लोकश्चायं खण्डितेऽस्मिन् ग्रन्थे नोपलभ्यते। किंच लेखशैलीतः कविरयं कालिदासादत्यन्तमर्वाचीन इति ज्ञायते। एतत्सूक्तेरादर्शभूतोऽयं सन्दर्भ उपन्यस्यते—

जानकीहरणे।

प्रथमसर्गे।

विधेयचित्तश्चलितव्यधेषु हलायुधाभः स कुतूहलेन।
अन्येद्युरन्यायनिवृत्तवृत्तिर्मृगेन्द्रगामी मृगयां जगाम॥ १॥

अथ क्वणन् निर्झररेणुविद्धैः शैतैर्विधूतागरुपादपान्ते।
अधिज्यधन्वा धनदप्रभावश्चचार मैनाकगुरोर्निकुञ्जे॥ २॥

अन्योन्यवक्त्रार्पितपल्लवाग्रग्रासं नृवीरस्य कुरङ्गयुग्मम्।
प्रियानुनीतौ भृशमिष्टचाटुचेष्टस्य घाताभिरतिं निरासे॥ ३॥

स द्वीपिनोऽथ द्विपराजगामी हन्तुं तुरंगं रचितक्रमस्य।
जघान देहं प्रतिबिन्दु बाणैरेकेन दुर्लक्ष्यभुजः क्षणेन॥ ४॥

तस्मिन्नृपे पाटयति प्रसह्य शस्त्रेण गण्डं भिषजीव भीमम्।
तदीयनादप्रतिनिःस्वनेन त्रासादिवाद्रिर्भृशमुन्ननाद॥ ५॥

युद्धाय यूथादभितो निवृत्तं क्रोडं मुहुः क्रोधविमुक्तनादम्।
शरस्य लक्ष्यं शरजन्मतुल्यश्चकार चक्रीकृतचापदण्डः॥ ६॥

क्वचिन्मृगं मार्गणगोचरेऽसौ दृष्ट्वा विकृष्टायतचापदण्डः।
शरं मुमुक्षुः शरभोरुवेगं तमन्वयादन्वयकेतुभूतः॥ ७॥

विलङ्घ्य मार्गं नृपमार्गणानां रेखायमानो गगने रयेण।

धनुस्सहायोऽश्मवति प्रदेशे विहाय वाहं सहसा नृवीरः ।
चचार पद्भ्यां गहने तरूणामसौ वने तत्पदद्त्तदृष्टिः ॥ ६ ॥
तटेऽथ तस्या घटपूरणोत्थं श्रुत्वा रवं बृंहितनादशङ्की ।
शरं शरण्योऽपि मुमोच बाले मुनेस्तनूजे मनुवंशकेतुः ॥१०॥
पुत्रो मुनेः पत्रिविभिन्नमर्मा शरानुसारेण नृपं प्रयातम् ।
नेत्राम्बुदिग्धेन विलापनाम्ना बाणेन भूयो हृदि तं जघान ॥११॥
एकं त्वया साधयताऽपि लक्ष्यं नीतं विनाशं त्रितयं निरागः ।
मच्चक्षुषा कल्पितदृष्टिकृत्यौ वृद्धौ वने मे पितरावहं च ॥१२॥
वनेषु वासो मृगयूथमध्ये क्रिया च वृद्धान्धजनस्य पोषः ।
वृत्तिश्च वन्यं फलमेषु दोषः संभावितः को मयि घातहेतुः ॥१३॥
व्रती विनाथो विगतापराधः स्मर्तव्यदृष्टेः पितुरन्धयष्टिः ।
इत्येषु किं निष्करुणेन कश्चिद्वध्यभावे गणितो न हेतुः ॥१४॥
साधुः कृपामन्थरमक्षि शत्रौ प्रीत्यर्थसंमीलितमादधाति ।
नीचस्तु निष्कारणवैरशीलस्तत्पूर्वसंपादितदर्शनेऽपि ॥१५॥
जीर्णो जतुन्यासनिरुद्धरन्ध्रः कुम्भश्च मौञ्जी तरुवल्कलं च ।
एतेषु यन्मां विनिहत्य गम्यं तद् गृह्यतामस्तु भवान्कृतार्थः ॥१६॥
मैवं भवानेनमदुष्टभावं जुगुप्सतां स्माहतसाधुवृत्तम् ।
इतीव वाचो निगृहीतकण्ठैः प्राणैररुध्यन्त तपस्विसूनोः ॥१७॥
भोज्यासुतश्चारुभुजद्वयेन घटं गृहीत्वा घटितारिनाशः ।
बाष्पायमाणो बहुमानपात्रं यमप्रभावो यमिनं ददर्श ॥१८॥
दयानुयातस्तनयस्य नाशं श्रुत्वा तपस्वी मुहुरात्तशोकः ।
दिदेश देशस्तुतसद्गुणाय विशान्वशी विश्वभुजं सशापम् ॥१९॥
अथ स विषमपादगोपतार्थं जगदुपयोगविियुक्तभूरिधातुम् ।
बहुतुहिननिपातदोषदुष्टं गिरिमसृजत् कुकवेरिव प्रबन्धम् ॥२०॥

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका', काशी; १८२६ शकाब्दाः, आषाढः, प्रथमे वर्षे तृतीया संख्या]

लीलाशुकः

अस्य कवेर्विषये न किञ्चिन्निश्चितं वक्तुं शक्यते। अयं दाक्षिणात्यः शिवभक्तस्तथापि श्रीकृष्णेऽस्य परमा प्रीतिरिति सुप्रसिद्धादुत्तररामचरितटीकाकृता वीरराघवेणोद्धृतात्—

शैवा वयं न खलु तत्र विचारणीयं
पञ्चाक्षरीजपपरा नितरां तथापि।
चेतो मदीयमतसीकुसुमावभासं
स्मेराननं स्मरति गोपवधूकिशोरम् ॥१॥

इति पद्यादवगम्यते।

अयं च न महाकविः, किन्तु हरि-भल्लट-मूक-जगन्नाथ-कुलशेखरादिवत् सुमधुराणां भावगर्भाणां श्लोकानां प्रणेता। एक एव चाद्यावधि कवेरस्य पद्यानां संग्रहः शतकत्रयात्मकः 'कृष्णकर्णामृताख्यः' प्रबन्ध उपलब्धः।

अस्य माधुर्यमभिनवशैलीविलासं चास्वाद्य चिरं चित्रीयते सहृदयानां चेतः। रामानुजीयैरन्यैश्च वैष्णवैरत्यन्तमादृतोऽस्य ग्रन्थः। कवितार्किकसिंहो वेङ्कटोऽपि प्रौढिमात्रे एनमतिशेते। माधुर्ये तु नायं केनापि दाक्षिणात्यकविना तुलितः। अपरदाक्षिणात्यकविवद्यमपि आद्यनुप्रासप्रियः। आलङ्कारिकैः प्राय उपेक्षितोऽपि आद्यनुप्रासः नवीनकविभिर्विशेषतो दाक्षिणात्यैरत्यन्तमादृतश्चमत्कारप्रदश्चेति सुविदितं सर्वेषां साहित्यरसिकानाम्।

कर्णामृतस्य शतकत्रयाद्रुचिरतमानि पद्यान्यत्र संगृह्य विन्यस्यन्ते—

मुकुलायमाननयनाम्बुजं विभो-
र्मुरलीनिनादमकरन्दनिर्भरम्।
मुकुरायमाणमृदुगण्डमण्डलं
मुखपङ्कजं मनसि मे विजृम्भताम् ॥१॥

मदशिखण्डिशिखण्डविभूषणं
मदनमन्थरमुग्धमुखाम्बुजम्।
व्रजवधूनयनाञ्चलवञ्चितं
विजयतां मम वाङ्मयजीवितम् ॥२॥

पुनः प्रसन्नेन मुखेन्दुतेजसा पुरोऽवतीर्णस्य कृपामहाम्बुधेः ।
तदेव लीलामुरलीरवामृतं समाधिविघ्नाय कदा नु मे भवेत् ॥३॥

परामृश्यं दूरे परिषदि मुनीनां व्रजवधू—
दृशां वश्यं शश्वत् त्रिभुवनमनोहारिवपुषम् ।
अनामृश्यं वाचामनिदमुदयानामपि कदा
दरीदृश्ये देवं दरदलितनीलोत्पलरुचिम् ॥४॥

मुष्णानमेतत्पुनरुक्तशोभमुष्णेतरांशोरुदयं मुखेन ।
तृष्णाम्बुराशिं त्रिगुणीकरोति कृष्णाह्वयं किंचन जीवितं मे ॥५॥

शुश्रूषसे यदि वचः शृणु मामकीनं
पूर्वैरपूर्वकविभिर्न कटाक्षितं यत् ।
नीराजनक्रमधुरं भवदाननेन्दो-
र्निर्व्याजमर्हति चिराय शशिप्रदीपः ॥६॥

यां दृष्ट्वा यमुनां पिपासुरनिशं व्यूहो गवां गाहते
विद्युत्वानिति नीलकण्ठनिवहो द्रष्टुं समुत्कण्ठते ।
उत्तंसाय तमालपल्लवमिति च्छिन्दन्ति यां गोपिकाः
कान्तिः कालियशासनस्य वपुषः सा पावनी पातु वः ॥७॥

अयि मुरलि, मुकुन्दस्मेरवक्त्रारविन्द-
श्वसनमधुरसज्ञे, त्वां प्रणम्याद्य याचे ।
अधरमणिसमीपं प्राप्तवत्यां भवत्यां
कथय रहसि कर्णे मद्दशां नन्दसूनोः ॥८॥

अमुनाखिलगोपगोपनार्थं यमुनारोधसि नन्दनन्दनेन ।
दमुना वनसंभवः पपे नः किमु नासौ शरणार्थिनां शरण्यः ॥९॥

वृन्दावनद्रुमतलेषु गवां गणेषु
वेदावसानसमयेषु च दृश्यते यत् ।
तद्वेणुनादनपरं शिखिपिच्छचूडं
ब्रह्म स्मरामि कमलेक्षणमभ्रनीलम् ॥१०॥

देवकीतनयपूजनपूतः पूतनारिचरणोदकधूतः ।
यद्यहं स्मृतधनञ्जयसूतः किं करिष्यति स मे यमदूतः ॥११॥

आताम्रपाणिकमलं प्रणयिप्रतोद-
मालोलहारमणिकुण्डलहेमसूत्रम् ।
आविःश्रमाम्बुकणमम्बुदनीलमव्या-
दाद्यं धनञ्जयरथाभरणं महो नः ॥१३॥

कालिन्दीपुलिनोदरेषु मुसली यावद् गतः खेलितुं
तावत्कर्बुरिकापयः पिब हरे वर्धिष्यते ते शिखा ।
इत्थं बालतया प्रतारणपराः श्रुत्वा यशोदागिरः
पायाद्वः स्वशिखां स्पृशन्प्रमुदितः क्षीरेऽर्धपीते हरिः ॥१४॥

अरुणाधरामृतविशेषितस्मितं वरुणालयानुगतवर्णवैभवम् ।
तरुणारविन्ददलदीर्घलोचनं करुणालयं कमपि बालमाश्रये ॥१५॥

लावण्यवीचीललिताङ्गभूषां भूपापदारोपितपुण्यबर्हाम् ।
कारुण्यधाराच्छकटाक्षमालां बालां भजे बल्लववंशलक्ष्मीम् ॥१६॥

प्रातः स्मरामि दधिघोषविधूतनिद्र
निद्रावसानरमणीयमुखारविन्दम् ।
हृद्यानवद्यवपुषं नवनीतचोर-
मुन्मीलिताब्जनयनं नयनाभिरामम् ॥१७॥*

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका,' काशी; १८२६ शकाब्दाः, श्रावणः, प्रथमे वर्षे चतुर्थसंख्या]

---

* काव्यप्रकाशटीकाकृता बहुश्रुतेन कमलाकरेणोद्धृतोऽयं श्लोकः ।

पाणिनिः

रामायणप्रणेता वाल्मीकिः, विष्णुपुराणप्रणेता पराशरः, भारतप्रणेता पाराशर्यः कृष्णद्वैपायनः, एतेभ्योऽर्वाचीनाः कालिदासाच्च प्राचीनाः बहवः कवयो बभूवुः । तेषां प्रबन्धाश्च काश्मीरकविदुषां क्षेमेन्द्रादीनां सुविदिता बभूवुः । किं बहुना वङ्गीयो नातिप्राचीनः साहित्यदर्पणकारः कविराजविश्वनाथोऽपि दृष्टवानमीषां कांश्चित्प्रबन्धानिति प्रतीयते । तथापि द्वित्रेषु गत-शतकेषु तादृशी दुरवस्था विद्याभ्यासस्य जाता, येन ग्रन्थांशान्नात्युपयुक्तान् वादबहुलानवलम्ब्य तत्परिष्कारात्मकेषु पत्रिकादिषु मुधा श्रमं विदधानैर्जनैस्तथोपेक्षिताः परार्ध्या अपि निबन्धाः, येन साम्प्रतं बहूनां कवीनां शास्त्रकृतां च नामापि लुप्तप्रायम् । न साम्प्रतं भासस्य स्वप्नवासवदत्तप्रभृतीनि नाटकान्युपलभ्यन्ते, न रामिलसौमिलयोः शूद्रककथा प्राप्यते । क्वाधुना पाणिनेः पातालविजयकाव्यम्, क्व वा वररुचेः कण्ठाभरणम् । किमभून्मेण्ठप्रणीतस्य हयग्रीववधस्य, किं वा जातं धर्मकीर्त्तेर्महाप्रबन्धानाम् । धन्यास्ते सूक्तसंग्रहकारा, यत्प्रभावादधुना नामाप्येषां महाकवीनां श्रूयते । मोहान्धकूपकुहरादाच्छिद्य वैदेशिकैरुद्धृतेभ्यः सूक्तिमुक्तावली-सदुक्तिकर्णामृत—शार्ङ्गधरपद्धति-सुभाषितावल्यादि-संग्रहग्रन्थेभ्यः पाणिनि-भास-मेण्ठादिमहाकवीनां विषये किञ्चिद्विदितमास्ते साम्प्रतम् । तत्र वैयाकरणत्वेन सुप्रसिद्धो दाक्षीपुत्रः पाणिनिः पातालविजयकाव्यं जाम्बवतीविजयापराख्यं प्रणिनायेति—

"स्वस्ति पाणिनये तस्मै यस्य रुद्रप्रसादतः ।
आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम् ॥" इति

राजशेखरश्लोकादवगम्यते । तथा चान्यस्यापि कस्यचित्पद्यम्—

"सुबन्धौ भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते,
धृतिर्दाक्षीपुत्रे, हरसि हरिचन्द्रोऽपि हृदयम् ।
विशुद्धोक्तिः शूरः, प्रकृतिमधुरा भारविगिर—
स्तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते ॥"

किञ्च सुवृत्ततिलके केषां कवीनां कानि च्छन्दांसि रम्यतमानीति प्रस्तावे भारवेर्वंशस्थं, राजशेखरस्य शार्दूलविक्रीडितं, भवभूतेः शिखरिणी, पाणिनेश्चोपजातिरिति

। अत्र चोपजातिशब्देन सुप्रसिद्धाया इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्राचरणमिश्रणात्मिकाया
। पाणिनेः पाटलिपुत्रे भगवतो वर्षस्य सन्निधावध्ययनं तपसा प्रसादिता-
महेश्वरादक्षरसमाम्नायप्राप्तिश्च बृहत्कथायां कथापीठलम्बके दृश्यते। यत्तु न वैयाकरणेन
प्रणीतं जाम्बवतीविजयकाव्यं, किन्तु कविपाणिनिः प्रसिद्धपाणिनेर्भिन्न
कश्चित् नहि वैयाकरणमुख्यो रुद्रटटीकाकृता नमिसाधुनाऽन्यैश्च प्रदर्शितानि
सन्ध्यावधूं गृह्यत्यादि' च्युतसंस्कृतीनि पदानि प्रयुञ्जीतेति केचिदाधुनिकाः। न तत्स-
युक्तिकम्, न हि नवप्रणीतं स्वकीयमेव व्याकरणं पाणिनिरनुसर्त्तुं शशाक। रामायण-
भारतादिपरिशीलनात् करामलकीभूतानि इन्द्रशाकटयनादिव्याकरणानुसारीणि पदानि
व्रततमबोधपूर्वमपि तस्य हृदये स्फुरन्ति स्मेति तेषां तद्ग्रन्थे दर्शनं सुसङ्गतमेव।
अस्य च विरलाः सूक्तयः संग्रहेषूपलभ्यन्ते। तासां चातिरमणीयत्वात् कवेः शैली
निवेशः क्रियते—

पाणिनेः श्लोकाः।

अथाससादास्तमनिन्द्यतेजा जनस्य दूरोज्झितमृत्युभीतेः।
उत्पत्तिमद्वस्तु विनाश्यवश्यं यथाहमित्येवमिवोपदेष्टुम् ॥१॥

असौ गिरेः शीतलकन्दरस्थः पारावतो मन्मथचाटुदक्षः।
घर्मालसाङ्गीं मधुराणि कूजन्संवीजते पक्षपुटेन कान्ताम् ॥२॥

ऐन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण शरद्दधानार्द्रनखक्षताभम्।
प्रसादयन्ती सकलङ्कमिन्दुं तापं रवेरप्यधिकं चकार ॥३॥[1]

गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघाः।
अपश्यती[2] वत्समिवेन्दुबिम्बं तच्छर्वरी गौरिव हुंकरोति ॥४॥

सरोरुहाक्षीणि निमीलयन्त्या रवौ गते साधुकृतं नलिन्या।
अक्ष्णां हि दृष्टापि जगत्समस्तं फलं प्रियालोकनमेकमेव ॥५॥

निरीक्ष्य[3] विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः।
धारानिपातैः सह कि नु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्त्ततरं ररास ॥६॥

शुद्धस्वभावान्यपि संहितानि निनाय भेदं कुमुदानि चन्द्रः।
अवाप्य वृद्धिं मलिनान्तरात्मा जडीभवेत्कस्य गुणाय वक्रः ॥७॥

---

१. दर्पणोद्धृतोऽयं श्लोकः। २. च्युतसंस्कृतिः, शपूश्यनोर्नित्यमित्युक्तेः।
३. कुवलयानन्दे दृश्यतेऽयंश्लोकः।

उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम् ।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया पुरोऽपि रागाद् गलितं न लक्षितम् ॥८॥
प्रकाश्य लोकान्भगवान्स्वतेजसा प्रभादरिद्रः सवितापि जायते ।
अहो चला श्रीर्बलमानदाप्यहो स्पृशन्ति सर्वं हि[1] दशा विपर्यये ॥९॥
नृपाः क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बु सरितां
प्रतप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम् ।
क्व संप्रत्युष्णांशुर्गत इति समालोकनपरा-
स्तडिद्दीपालोका दिशि दिशि चरन्तीह जलदाः ॥१०॥
पाणौ शोणतलेः तनूदरि दरक्षामा कपोलस्थली
विन्यस्ताञ्जनदिग्धलोचनजलैः किं म्लानिमा नीयते ।
मुग्धे चुम्बतु नाम चञ्चलतया भृङ्गः क्वचित्कन्दली-
मुन्मीलन्नवमालतीपरिमलः किं तेन विस्मर्यते ॥११॥
उद्बुद्धेभ्यः सुदूरं घनजनिततमःपूरितेषु द्रुमेषु
प्रोद्ग्रीवं पश्य पादद्वयनमितभुवः श्रेणयः फेरवाणाम् ।
उल्कालोकैः स्फुरद्भिर्निजवदनदरीसर्पिभिर्वीक्षितेभ्य-
श्चोतत्सान्द्रं वसाम्भः क्वथितशववपुर्मण्डलेभ्यः पिबन्ति ॥१२॥
कल्हारस्पर्शगर्भैः शिशिरपरिचयात्कान्तिमद्भिः कराग्रै-
श्चन्द्रेणालिङ्गितायास्तिमिरनिवसने स्रंसमाने रजन्याः ।
अन्योन्यालोकिनीभिः परिचयजनितप्रेमनिष्यन्दिनीभि-
र्दूरारूढे प्रमोदे हसितमिव परिस्पष्टमाशासखीभिः ॥१३॥
चञ्चत्पक्षाभिघातं ज्वलितहुतवहप्रौढधाम्नश्चितायाः
क्रोडाद् व्याकृष्टमूर्त्तेरहमहमिकया चण्डचञ्चुग्रहेण ।
सद्यस्तप्तं शवस्य ज्वलदिव पिशितं भूरि जग्ध्वार्द्धदग्धं
पश्यान्तःप्लुष्यमाणः प्रविशति सलिलं सत्वरं गृध्रवृद्धः ॥१४॥
विलोक्य संगमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः ।
कृतं कृष्णमुखं प्राच्या न हि नार्यो विनेर्ष्यया ॥१५॥

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका' काशी; १८२६ शकाब्दाः, भाद्रः, प्रथमवर्षे पञ्चमसंख्या]

---

१. दशाः दुर्गतयः स्पृशन्तीत्यर्थः ।

भट्टभल्लटः

अतिप्राचीनोऽयं कविः। अस्य प्रबन्धो 'भल्लटशतक'नाम्ना विदितः। नामास्य काश्मीरकत्व सूचयति। समयस्त्वस्य न शक्यतेऽनुमातुम्। 'सोऽपूर्वो रसनाविपर्ययविधि.' इत्यादयोऽस्य श्लोकाः काव्यप्रकाशे उद्धृताः। अस्य शैली प्रायो भर्तृहरेः किंचिदेव भिद्यते। केवलं क्वचिदस्य काठिन्यं भर्तृहरितोऽर्वाचीनत्वं द्योतयति। शब्दालङ्कारप्रियत्वं चास्य कदाचित्तथाविधं येन कालिदास दर्वाचीनत्वमस्य निश्चितप्रायं प्रतिभाति। नहि भास–कालिदास–भर्तृहरि–मेण्ठप्रभृतीनां प्राचीनतराणां महाकवीनां प्रबन्धेषु—

"दन्तान्तकुन्तमुखसन्ततपातघातसंताडितोन्नतगिरिर्गज एव वेत्ति।
पञ्चास्यपाणिपविपञ्जरपातपीडां न क्रोष्टुकः स्वशिशुहुंकृतिनष्टचेष्टः॥"

इतीदृशाः परुपानुप्रासप्राया श्लोकाः सुलभाः। किञ्च भल्लटः प्रायोऽन्योक्तिप्रियो, भर्तृहरिस्तु कान्दिय नथेत्यपि विशेपः। अस्य प्राचीनेष्वालङ्कारिकेपु महती प्रसिद्धिरासीदिति प्रतीयते। तथा च कस्यचित्पद्यम्—

माघश्चोरो मयूरो मुररिपुरपरो भारविः सारविद्यः
श्रीहर्षः कालिदासः कविरथ भवभूत्यादयो भोजराजः।
श्रीदण्डी डिण्डिमाख्य. श्रुतिमुकुटगुरुर्भल्लटो भट्टबाणः
ख्याताश्चान्ये सुबन्ध्वादय इह कृतिभिर्विश्वमाह्लादयन्ति॥

अस्य चादर्शरूपा. काश्चित्सूक्तयोऽत्र विन्यस्यन्ते—

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैर्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति॥*

आस्त्रीशिशुप्रथितयैष पिपासितेभ्यः संरक्ष्यतेऽम्बुधिरपेयतयैव दूरात्।
दंष्ट्राकरालमकरालिकरालिताभिः किं भाययत्यपरमूर्मिपरम्पराभिः॥

---

*अस्यैवानुकरणरूपं कस्यचित्पद्यम्—

"अस्मान्विचित्रवपुषश्चिरपृष्ठलग्नान् कस्माद्विमुञ्चसि सखे यदि वा विमुञ्च।
जाता तवैव तनुमण्डनहानिरेषा गोपालमौलिमुकुटे भविता स्थितिर्नः॥"

आबद्धकृत्रिमसटाजटिलांसभित्तिरारोपितो मृगपतेः पदवीं यदि श्वा ।
मत्तेभकुम्भतटपाटनलम्पटस्य नादं करिष्यति कथं हरिणाधिपस्य ॥
रज्ज्वा दिशः प्रविततः सलिलं विषेण पाशैर्मही हुतभुजा ज्वलिता वनान्ताः ।
व्याधाः पदान्यनुसरन्ति गृहीतचापाः कं देशमाश्रयतु यूथपतिर्मृगाणाम् ॥
प्रेङ्खन्मयूखनखशातशिखानिखातविख्यातवारणगणस्य हरेर्गुहायाम् ।
क्रोष्टा निकृष्टसरमासुतदृष्टिनष्टधाष्टर्यः प्रविष्ट इति कष्टमिहाद्य दृष्टम् ॥

विशालं शाल्मल्या नयनसुभगं वीक्ष्य कुसुमं
शुकस्यासीद् बुद्धिः फलमपि भवेदस्य सदृशम् ।
इति ध्यात्वोपास्तं फलमपि च दैवात्परिणतं
विपाके तूलोऽन्तः सपदि मरुता सोऽप्यपहृतः ॥

पथि निपतितां शून्ये दृष्ट्वा निरावरणाननां
नवदधिघटीं गर्वोन्नद्धः समुद्धतकन्धरः ।
निजसमुचितास्तास्ताश्चेष्टा विकारशताकुलो
यदि न कुरुते काणः काकः कदा नु करिष्यति ॥

किं जातोऽसि चतुष्पथे घनतरुच्छायोऽसि किं छायया
युक्तश्चेत्फलितोऽसि किं फलभरैराढ्योऽपि किं सन्नतः ।
हे सद्वृक्ष सहस्व संप्रति सखे शाखाशिखाकर्षण-
क्षोभामोटनभञ्जनानि भवत स्वैरेव दुश्चेष्टितैः ॥

ग्रावाणो मणयो हरिर्जलचरो लक्ष्मीः पयोमानुषी
मुक्तौघाः सिकताः प्रवाललतिकाः शैवालमम्भः सदा ।
तीरे कल्पमहीरुहाः किमपरं नामापि रत्नाकरो
दूरे कर्णरसायनं निकटतस्तृष्णापि नो शाम्यति ॥

भेकेन क्वणता सरोषपरुषं यत्कृष्णसर्पानने
दातुं गण्डचपेटमुज्झितभिया हस्तः समुल्लासितः ।
यच्चाधोमुखमक्षिणी विदधता नागेन तत्र स्थितं
तत्सर्वं विषमन्त्रिणो भगवतः कस्यापि लीलायितम् ॥

मृत्योरास्यमिवाननं धनुरिदं चाशीविषाभाः शराः
शिक्षा सापि जितार्जुनप्रभृतिका सर्वत्र निम्ना गतिः ।
अन्तः क्रौर्यमहो शठस्य मधुरं हा हारि गेयं मुखे
व्याधस्यास्य यथा भविष्यति तथा मन्ये वनं निर्मृगम् ॥

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका', काशी, १८२६ शकाब्दाः, आश्विनः, प्रथमे वर्षे षष्ठसंख्या]

रत्नाकरः

अयं काश्मीरको रत्नाकरमहाकविः राजानकोपाधिकः नवमशतके कश्मीरान् शासतः अवन्तिवर्मनृपतेः सभां भूपयति स्म । तथा च राजतरङ्गिण्यां कल्हणस्य पद्यम्–

'मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः ।
प्रथां रत्नाकरश्चागात्साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥' १॥*

यद्यप्ययमवन्तिवर्मणः सभायामासोदिति पद्यादस्मान्निश्चीयते, तथापि प्रथममेव चिप्पटजयापीडस्य सदो भूषयति स्मेति 'बालबृहस्पत्यनुजीविनो कृतावित्यादि' हरविजयसमाप्तिलेखादवगम्यते पश्चादयमवन्तिवर्मणा अस्य चैकमेव हरविजयाख्यं काव्यमुपलभ्यते । तच्च माघस्य शिशुपाल-किरातार्जुनीयवच्चैकक्रमपि कवेर्यशः कल्पान्तस्थिरं रक्षितुं कल्पते । ग्रन्थे अतिविस्तर एक एव दोषः । स एव चास्य प्रचारे कांचिद्बाधां व्यधत्त । प्राचीनेषु प्रचुरोऽस्य प्रचार आसीत्साम्प्रतं च मुद्रितोऽयं काव्यमालायामिति सर्वेषां सुलभः । माघादेकादशशतकस्थधारेश्वरभोजराजसभ्यात्प्राचीनोऽयं कविः । षष्ठशतकीये द्वितीयपुलकेशिलेखे—

"येनायोजि नवेऽश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।
स विजयतां रविकीर्त्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्त्तिः ॥"

इत्यत्र वर्णितः । अत एव निर्णीतषष्ठशतकप्राचीनतरत्वाद्भारवेश्चार्वाचीनः ।

---

*अस्मिन्पद्ये नाम्ना गृहीतानां कवीनां मध्ये मुक्ताकणस्य विषये नान्यत् किञ्चिज्ज्ञायते । केवलं काश्चित्सूक्तयोऽस्य क्वचिदुद्धृता दृश्यन्ते । भट्टश्रीशिवस्वामी प्रसिद्धः कविः क्षेमेन्द्रेण स्वग्रन्थेषु बहुश उद्धृतः । अस्य सूक्तयः कदाचिदत्यन्तकठिना औचित्यविचारे निन्दिताः कदाचित्तु भृशं मधुरास्तद्यथा—

"या बिम्बोष्ठरुचिः क्व विद्रुममणिः स्वप्नेपि तां दृष्टवान्
हासश्रीः सुदृशस्तपोभिरपि किं मुक्ताफलैः प्राप्यते ।
तत्कान्तिः शतशोऽपि वह्निपतनैर्हेम्नः कुतः सेत्स्यति
त्यक्त्वा रत्नमयीं प्रयासि दयितां कस्मै धनायाध्वग ॥"

आनन्दवर्धनाचार्यः सुप्रसिद्धएव ध्वन्यालोकदेवीशतकादीनां प्रणेता ।

हरविजये उपक्रमः

कण्ठश्रियं[1] कुवलयस्तबकाभिरामदामानुकारि विकरच्छवि कालकूटम् ।
बिभ्रत्सुखानि दिशतादुपहारपीतधूपोत्थधूममलिनामिव धूर्जटिर्वः ॥१॥

जृम्भाविकासितमुखं नखदर्पणान्तराविष्कृतप्रतिमुखं गुरुरोषगर्भम् ।
रूपं पुनातु जनितारिचमूवि[2]मर्दमुदत्तदैत्यवधनिर्वहणं हरेर्वः ॥ २ ॥

पर्यन्तवर्त्तिपरिपाण्डुरपत्रपंक्ति पद्मासनासनकुशेशयकोशचक्रम् ।
युष्मान्पुनातु दधदुद्धतदुग्धसिन्धुवीचिच्छटावलयितामरशैललीलाम् ॥३॥

अस्त्युन्नते सुरसरिज्जलधाव्यमानभागे नवार्करुचिमन्दरशैलशृङ्गे ।
ज्योत्स्नावतीति नगरी भुवनत्रयकभूषा वृषाङ्कशिरसीव शशाङ्कलेखा ॥४॥

यस्यां निशासु गगनं नवपद्मरागसद्मप्रभारुणितमध्यगतेन्दुलेखम् ।
वक्षो नृसिंहनखरैरसुराधिपस्य सासृक्छटं विषमभिन्नमिवाचकास्ति ॥५॥

यत्रेन्द्रनीलभवनं पृथुपद्मरागवातायनैरुभयपार्श्वगतैर्विभाति ।
बाणासुरस्य हरिचक्रविलूनबाहुमूलव्रणैरिव वपुः क्षतजच्छटार्द्रैः ॥६॥

यस्या भरेण गलतस्तरुणीमुखेन्दुलावण्यकान्तिविसरामृतनिर्भरस्य ।
अट्टालसालवलयं विकटालवाललीलां विडम्बयति चुम्बितभानुबिम्बम् ॥७॥

तामध्युवास भुवनानुजिघृक्षयात्तनिर्माणदेहघटनः क्षपितारिचक्रः ।
चक्रीव सौधधवलां भुजगाधिराजमूर्त्ति विभुः शिशिररश्मिकलाकिरीटः ॥८॥

---

१. अयं श्लोकः क्षेमेन्द्रेणोद्धृतः । २. विमर्शमिति क्वचित्पाठः ।

हरविजये सन्ध्यावर्णनम्

स्पष्टोल्लसत्किरणकेसरसूर्यबिम्बविस्तीर्णकर्णिकमथो दिवसारविन्दम् ।
श्लिष्टाष्टदिग्दलकलापमुखावतारबद्धान्धकारमधुपावलि संचुकोच ॥१॥
अस्तावलम्बिरविबिम्बतयोदयाद्रिचूडोन्मिषत्सकलसन्ध्यतया च सायम् ।
सन्ध्याप्रनृत्तहरहस्तगृहीतकांस्यतालद्वयेव समलक्ष्यत नाकलक्ष्मीः ॥२॥
विस्रंसमानकपिलांशुशिखासहस्रविष्यन्दिसान्द्ररुधिरश्रुति सूर्यबिम्बम् ।
छिन्नं जवाज्जलनिधौ निपपात कालखड्गेन विस्फुरितमह्न इवोत्तमाङ्गम् ॥३॥
अन्तर्विविक्षुरिव भानुमतो रथाश्वपङ्क्तिः स्फुरत्सलिलसैरिभरोषदष्टा ।
श्वासानिलः सपदि जर्जरयांचकार सिन्धोर्जलं विधुतफेनिलवीचिचक्रम् ॥४॥
तावत्क्रमेण दयितार्कवियोगजन्मदाहज्वरव्यथितदिग्वनिताकरास्तैः ।
क्ष्मामण्डलं विगलिताञ्जनबाष्पतोयलेशोत्करैरिव तमःशकलैः पुपूरे ॥५॥
दंष्ट्राकरालपृथुपोत्रतलावलग्नकासारपङ्ककलुषाः सलिलादुदस्थुः ।
प्रस्तार्धचन्द्रशकला बहलान्धकारकूटा इवाथ वनशूकरयूथनाथाः ॥६॥
आबद्धपद्ममुकुलाञ्जलियाचितो मामुत्सृज्य संप्रति गत. कथमंशुमाली ।
अन्तर्निबद्धमधुपक्वणितैरितीव स्वप्नायते स्म नलिनी निशि लब्धनिद्रा ॥७॥

('मित्रगोष्ठी पत्रिका', काशी, १८२६ शकाब्दाः, कार्तिकः, प्रथमे वर्षे अष्टमसंख्याः)

---

२. ओजस्वितया रत्नाकरस्य वसन्ततिलका प्रकृष्यते समासश्चात्र तथा दीर्घो येन प्रायः पादान्तेऽपि न वृत्तिविरतिः। सौकुमार्ये तु भिक्षाटनस्यामृतमधुरा वसन्ततिलकाः सर्वोत्कृष्टा इति प्रतिभाति । तत्र,रत्नाकरस्यात्रोपन्यासः कृत एव । सम्प्रति भिक्षाटनस्य पद्यचतुष्टयं तारतम्यायोपन्यस्यते—

सद्यस्तुषारगिरिजौषधिसेवयेव यः स्वोपयुक्तगरलं शमयाञ्चकार ।
अन्यैरशक्यशमनाऽजन्मामयाद्वः पायादपायनिलयादयमादिवैद्यः ॥१॥
भूता चिरेण गमिता कति नाम सन्तः पृथ्वीश्वराश्च कति नाम तथेतरेऽपि ।
अद्यापि कीर्त्तिवपुषा कवयः पृथिव्यां जीवन्ति तेष्वभिहितस्तुतयोऽथवा तैः ॥२॥
संतर्जिता गिरिशमालपसीति मात्रा काचित्त्रपानतमुखी भुवमालिलेख ।
रेखा तदाकृतिरभूत् किमियं विधत्तां भावानुसारि वचनं स विचेष्टितं च ॥३॥
तुष्टाव निन्दति जने त्रिपुरारिमेका पार्श्वस्थिते स्तुवति गाढतरं निनिन्द ।
मौनावलम्बिनि चुकोप चकोरदृष्टिः स्नेह प्रिये दुरवबोधगतिर्वधूनाम् ॥४॥

क्षेमेन्द्रः

ख्रीस्तैकादशशतकस्य मध्यभागे काश्मीरकानन्तनृपतेः राज्ये क्षेमेन्द्रेण बहवो ग्रन्थाः प्राणायिषत । अस्य व्यासदास इत्यपरं नाम । व्यासस्य भगवतो महाभक्तोऽयं पौराणिकीं शैलीमवलम्ब्य सौकर्येण लक्षाधिकश्लोकयुतान् प्रबन्धान् प्राणैष्ट । अस्य रसपरिप्लुतैरनेकैः स्रोतोभिः प्रवहन् कवितागङ्गाप्रवाहः साम्प्रतमपि जगत्पावयति, आ कल्पान्ताच्च पावयिष्यति । क्वचिदनुप्रासप्रियत्वेऽपि प्रायो नायमलङ्कारप्रवणः, किन्तु रसापेक्ष एवेति स्पष्टं प्रतीयते । अस्य च औचित्यविचारचर्चा, कलाविलासः, कविकण्ठाभरणम्, चतुर्वर्गसंग्रहः, चारुचर्या, दशावतारचरितम्, बृहत्कथामञ्जरी, बोधिसत्त्वावदानकल्पलता, रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी, समयमातृका, सुवृत्ततिलकम्, सेव्यसेवकोपदेशश्च इत्येते प्रबन्धा. समुपलभ्यन्ते । अमृततरङ्गम्, अवसरसारः, कनकजानकी, चित्रभारतम्, पद्यकादम्बरी, मुक्तावली, राजावली, लावण्यवती, वात्स्यायनसूत्रसारः, शशिवंशमहाकाव्यम्, इत्येते प्रबन्धाः केवलं नाम्ना विदिताः प्रबन्धान्तरेषु धृताभिधत्वात् ।

अन्येऽपि पवनपञ्चाशिकादयोऽस्य प्रबन्धा नाम्ना विदिताः । अस्य कवेः प्रायः कथारसरुचिराः प्रबन्धाः नतु माघादिवदलङ्कारमात्रसाराः । भारतस्य भारतकथापुरुषाणां च महाभक्तोऽयम् । अर्जुन एवास्य मते सर्वोत्तमो वीरः । तथा चास्य श्लोकः—

"लक्ष्मणो लघुसंधानी दूरपाती च राघवः ।
कर्णो दृढप्रहारी च पार्थस्यैते त्रयो गुणाः ॥"

क्वचित्तु अलंकारेष्वपि कौशलमस्योपलभ्यत एव । यथा—

"निजां कायच्छायां श्रयति महिषः कर्दमधिया
च्युतं गुञ्जापुञ्जं रुधिरमिति काकः कलयति ।
समुत्सर्पन् सर्पः सुषिरविवरं तापविवश
सचीत्काराधूतं प्रविशति करं कुञ्जरपतेः॥"

अस्य चोपलब्धेषु ग्रन्थेषु सुतरां हृद्यमभिनववस्तुप्रथितं च दशावतारचरितं रघुवंशवदनेककथामयं, तस्मात्संगृह्य प्रबन्धैकदेशोऽयं साहित्यवित्सूपायनीक्रियते—

दशावतारचरिते रावणयात्रा

तुष्टात्पुनः प्राप्य वरं त्रिनेत्रात्त्रैलोक्यलक्ष्मीपरिभोगभव्यम् ।
व्रजन् विमानेन दशाननः खे सकौतुकः पुष्पकमित्युवाच ॥१॥
य एष दूरात्कनकाचलस्य संलक्ष्यते दक्षिणपार्श्वदेशे ।
शृङ्गाग्रलग्नोज्ज्वलरत्नशैलस्तदङ्कविश्रान्तिसुखे ममेच्छा ॥२॥
इति ब्रुवाणः क्षणदाचरेन्द्रः क्षणाद्विमानेन जवेन नीतः ।
तस्याद्भुताद्रेर्विचचार पद्भ्यां रत्नस्थले कल्पलतावृतान्ते ॥३॥
समुल्लसन्नीलमणिस्थलोरुस्थूलांशुपुञ्जान्नतदण्डपादम् ।
पुनः प्रवृत्तं बलिवञ्चनाय व्याप्ताम्बरं विष्णुमिवाप्रमेयम् ॥४॥
बलान्वितो यद्वद् घनकालनेमि प्रह्लादसंरब्धजलोद्भवोग्रम् ।
सतारकाग्रं कटकं वहन्तं यातं हिरण्याक्षमिवाचलत्वम् ॥५॥
सविस्मयानन्ददृशा समन्तान्निर्वर्णयन्नेव मुहुर्महाद्रिम् ।
तदुच्चशृङ्गाश्रमधाम्नि दिव्या कन्यामपश्यत्स तपःप्रसक्ताम् ॥६॥
तन्वीं स्तनाभोगभराद्वाप्तसंसक्तकृष्णाजिनगाढबन्धाम् ।
लतामिवोद्यत्स्तवकाभिलाषनिष्यन्दलीनालिकुलाभिरामाम् ॥७॥
पौलस्त्यविध्वस्तसमस्तलोकघनावमानानलतीव्रचिन्ताम् ।
शक्रश्रियं स्वर्गवियोगखिन्नां रक्षःक्षयायेव तपःप्रवृत्ताम् ॥८॥
तां वीक्ष्य रक्षःपतिरक्षयेन्दुमुखीं सखीनेत्रसुधां निपीय ।
मेने तदुच्छिष्टरुचापि शिष्टां स्पृष्टां न सक्लिष्टनिकृष्टसृष्टिम् ॥९॥
पुनः सदाचारपरम्परार्हपाद्यासनादिप्रणयप्रवृत्ताम् ।
तामब्रवीदद्भुतरूपसंपत्सपन्नपूजः क्षणदाचरेन्द्रः ॥१०॥
का त्वं मनोजन्मविवर्जितेव रतिर्विरागव्रतदुर्ग्रहेण ।
मदेन विद्या कपटेन मैत्री लोभेन लक्ष्मीरिव लुप्तशोभा ॥११॥
ध्यानावधानं परमोऽवमानस्त्रपाकरं पात्रमथाक्षसूत्रम् ।
वने निवासस्तव यौवनेऽस्मिन्नपथ्य शापः कुसुमायुधस्य ॥१२॥
त्यक्त्वाग्रहं ब्रूहि विचिन्त्य तन्वि त्वमेव सत्यं यदि युक्तमेतत् ।
बिम्बाधरे चुम्बनकेलियोग्ये जपेन पापार्जनमेव मुग्धे ! ॥१३॥

निरञ्जनत्वं कुसुमप्रसक्तिश्चित्रं जटाबन्धनकारणं ते ।
अनङ्गरागं कुरु मा शरीरमनङ्गरागं वह चेतसि त्वम् ॥१४॥
भोगोत्सवं मानय मा नय त्वं क्लेशैरदोषं कृशतां शरीरम् ।
अहं हि ते तन्वि समीहिते च हिते च संपादनबद्धकक्षः ॥१५॥

शृङ्गारस्य गतैव भाग्यगुरुतानङ्गस्य नाङ्गस्पृहा
लावण्यं घनमन्युदैन्यमलिनं का यौवनस्योन्नतिः ।
नोद्यानं दयितं मधुर्विधिहतः कस्येन्दुरानन्ददः
कान्ते ते तपसि स्थिता यदि मतिस्तत्सर्वमस्तं गतम् ॥१६॥

श्रुत्वैतदुक्तं दशकन्धरेण सा किंचिदाकुञ्चितचेतनेव ।
जगाद खेदेन विनिःश्वसन्ती ह्रियावमानेन च मन्युना च ॥१७॥
व्रते विवादं विमतिं विवेके सत्येऽतिशङ्कां विनये विकारम् ।
गुणेऽवमानं कुशले निषेधं धर्मे विरोधं न करोति साधुः ॥१८॥
कचस्य वाचस्पतिसंभवस्य स्वाध्यायजा वेदवती सुताऽहम् ।
देया मयेयं स्वयमच्युताय मनोरथोऽभूत्पितुरित्ययं मे ॥१९॥
कालेन दैत्यैः स हतः पिता मे मातानलं शोकमिव प्रविष्टा ।
वरार्थिनी देवमनन्यचित्ता तपःप्रवृत्ता हरिमर्थयेऽहम् ॥२०॥
इति ब्रुवाणां दशकन्धरस्तां गाढानुबन्धेन घनाभिलाषः ।
पुनः पुनः क्षीब इव प्रलापी कोपाग्निसंतापवतीं चकार ॥२१॥
स्मृत्वा स शापं नलकूबरस्य संत्यक्तकान्ताहठसङ्गवाञ्छः ।
नखक्षतोच्छिष्टकुचस्थलीं तां कृत्वा जगाम स्वपुरीं सकामः ॥२२॥
सा मानिनी दुर्विषहावमानं रक्षःकरस्पर्शममृष्यमाणा ।
कुलाभिमानेन्धनमात्मशुद्ध्यै पूर्वं प्रकोपाग्निमिवाविवेश ॥२३॥
चिरं विचिन्त्याच्युतमच्युताशा जन्मास्तु मे राक्षससंक्षयाय ।
उक्त्वेति दृष्ट्वा रविमद्रिशृङ्गात्तापेन तन्वी तनुमुत्ससर्ज ॥२४॥
प्रविश्य लङ्कामलकां विजित्य हृत्वा पुनर्वैश्रवणस्य कोशम् ।
काले विशालेऽनिलवत्प्रयाते लङ्कापतिः पुष्पकमित्युवाच ॥२५॥
दृष्टः पुराश्चर्यगिरिर्मया यः पुनस्तदालोकनकौतुकं मे ।
रम्यं निपीतं बत नेत्रपात्रेर्न विस्मरत्येव मनः कदाचित् ॥२६॥
इत्यादराभ्यर्थनियन्त्रितेन नीतः क्षणेनैव स पुष्करेण (पुष्पकेण) ! ।
तं देशमेत्यायतकालजिह्वालीढं न तं प्रौढगिरिं ददर्श ॥२७॥

तत्राभ्यपश्यन्नगराण्यगण्यरत्नप्रयत्नक्रयविक्रयाणि ।
परस्परारब्धविरोधयुद्धसंधानसंनद्धधराधिपानि ॥२८॥
अहो नु नानाद्भुतविभ्रमाणां कर्त्ता च हर्त्ता च सदैव कालः ।
येनानिशं दर्शयता विचित्रं निपीतमन्यद्धत वान्तमन्यत् ॥२९॥
क्षणं विचिन्त्येति ययौ पुरीं स्वामनित्यतानष्टधृतिर्दशास्यः ।
गिरेर्वियोगादचलं द्वितीयमिवोद्वहन् विस्मयभारमन्तः ॥३०॥
गते निगीर्णाद्भुतचक्रवाले काले विशाले बहुमोहजाले ।
स्मृत्वा समारुह्य विमानराजं तमेव देशं स पुनर्जगाम ।३१॥
न तत्र चित्राणि पुराणि तानि न हेमहर्म्याणि न मन्दिराणि ।
स्वप्नान्तराणीव कृतभ्रमाणि जन्मान्तराणीव गतान्यपश्यत् ॥३२॥
तत्रालुलोके,स तमालतालतालीसहिन्तालनिरन्तरालम् ।
वनं विशालं विवलत्प्रियालमालावलीसंततनक्तमालम् ॥३३॥
घोरैर्घुरद्व्याघ्रघनप्रघोषैरिवोच्चरोमाञ्चचयाञ्चितानाम् ।
विशङ्कटैरुत्कटकण्टकानां व्याप्तं समूहैः खदिरद्रुमाणाम् ॥३४॥
अन्तःश्वसन्निश्चलदुष्टसत्त्वैः कम्पप्रदं पिप्पलपल्लवानाम् ।
तमःपिशाचार्चितमर्कभासा भीत्येव दूरात्परिवर्ज्यमानम् ॥३५॥
गतेष्वभावं नगरेषु तेषु दृष्ट्वा तदुग्रं गहनं गभीरम् ।
रक्षःपतिर्ग्रस्तसमस्तलोककुलाय कालाय नमश्चकार ॥३६॥
सोऽचिन्तयत्कालविहंगमोऽयमलक्ष्यदाक्ष्यक्रमपक्षवेगः ।
दिवानिशं याति विचित्रशक्तिरहो कदाचिन्न चलत्यखिन्नः ॥३७॥
इत्यद्भुतामाकलयन्नचिन्त्यां कालस्य शक्तिं स विसंस्थुलोऽभूत् ।
अनित्यताचिन्तनभङ्गभाजां नाङ्गानि केषां शिथिलीभवन्ति ॥३८॥
प्राप्तः स लङ्कां विभवोपभोगहर्षोत्सवैर्विस्मृतकाललीलः ।
मेने सुखक्षीबतयाऽक्षयाणि संभोगलीलाधनजीवितानि ॥३९॥
शनैः प्रयाते क्षणसंख्ययापि प्रवर्धमाने युगदीर्घकाले ।
पुनर्विमानेन तमेव देशं कुतूहलात्तः प्रययौ दशास्यः ॥४०॥
स तत्र निर्घातघनोग्रपातदीर्णोर्वरीनिष्क्रमणक्रमेण ।
ददर्श पातालमिवान्तहीनं खातं प्रजातं भुवनव्रणाभम् ॥४१॥
क्षणं तदालोकनभुग्नकण्ठः स्थित्वा प्रयातः स पदं स्वमेव ।
काले प्रयाते पुनरागतोऽथ सरः समुद्रोपममभ्यपश्यत् ॥४२॥

अनन्तपद्मान्वितमप्रमेयमुदग्रनागेन्द्रसहस्रसेव्यम् ।
परागपुञ्जेन भुजंगलोकमिवान्तराले कपिलेन जुष्टम् ॥४३॥
हंसांसकण्डूयनलोलनालफुल्लारविन्दोत्थितषट्पदानाम् ।
मुहुः समूहैर्विहितान्धकार क्रोशन्निशाशङ्कितचक्रवाकम् ॥४४॥
स्वादूदकं कोमलवीचिवातं पद्मोज्ज्वल भृङ्गगणोपगीतम् ।
ससौरभं पुण्यवतामिवैकं सर्वेन्द्रियाणामुपभोगपात्रम् ॥४५॥
सविभ्रमं श्रीरमणं परागपीताम्बरं नाभिभवाद्भुताब्जम् ।
नीलोत्पलश्यामलभाकलय्य सरः स निःस्पन्दतनुः प्रदध्यौ ॥४६॥
अहो नु नेत्रार्पितकौतुकानि वैचित्र्यमैत्रीकृतविस्मयानि ।
पिबत्ययत्नेन कियन्ति कालः सृजत्यजस्रं च महाद्भुतानि ॥४७॥
क्षणं विचिन्त्येति लसद्विवेकः स शङ्करार्चारससादरोऽभूत् ।
अनित्यताचिन्तनखेदजन्मा न सद्विचारः कुशलाय कस्य ॥४८॥
सरस्तटे टङ्कितरत्नपीठे लिङ्गं विधाय स्फटिकाद्रिशृङ्गम् ॥
स पुष्पकोपाहृतदिव्यपद्मैरर्चां चकारामृतरश्मिमौलेः ॥४९॥
स त्र्यम्बकस्याम्बरचुम्ब्यमानां विधाय पूजां कमलोपचारैः ।
ह्रदस्य विष्णोरिव मध्यजातं समाददे मूर्ध्नि विधातुमब्जम् ॥५०॥
तस्यान्तरे काञ्चनकर्णिकस्य विचित्ररत्नोज्ज्वलपल्लवस्य ।
स दिव्यपद्मस्य ददर्श कन्यां तद्गीतिलग्नामिव जातु लक्ष्मीम् ॥५१॥
आदाय कन्यां कमलं विधाय तच्चन्द्रचूडस्य किरीटकोटौ ।
प्रीतिं वहन् विस्मयगर्भगुर्वी लङ्केश्वरः स्वां नगरीं जगाम ॥५२॥
मन्दोदरी तद्दयिताथ तत्र तेनार्पितां कल्पितपुत्रिकां ताम् ।
अनन्यलावण्यवतीं विलोक्य कन्यामभूद्विस्मयनिश्चलेव ॥५३॥
कदाचिदुत्सङ्गगृहीतकन्यां तां नारदोऽभ्येत्य मुनिर्जगाद ।
पत्युस्तवेयं चपलेन्द्रियस्य कन्या भविष्यत्यभिलाषभूमिः ॥५४॥
श्रुत्वैतदाच्छाद्य महार्हपट्टैः सुवर्णमञ्जूषधृतां कुमारीम् ।
मन्दोदरी भूमितलावखाते तत्याज रत्नाकरपारतीरे ॥५५॥
काले प्रयाते जनकेन राज्ञा यज्ञाङ्गने हैमहलेन कृष्टे ।
लब्धा समृद्धेन्दुमुखी सुता सा सीतेति नाम्ना भुवने प्रसिद्धा ॥५६॥

[मित्रगोष्ठी-पत्रिका, काशी, शकाब्दाः १८२६, पौषः प्रथमवर्षस्य नवमी संख्या ।]

कविराजः

ख्रीस्तीयद्वादशशतकारम्भे वङ्गेषु लक्ष्मणसेनाख्यो वैद्यवंशीयो नृपतिर्बभूव यस्य प्रशस्तिर्गयायामुपलब्धा, यत्र च वैक्रमसंवत् ११७३ तत्समयो दत्तः। अस्य सभायां कतिचित् कवय आसन्, येषां नामानि प्रशस्त्यन्तरपद्ये—

"गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च॥"

तत्र गोवर्धन आर्यासप्तशतीप्रणेता। शरणस्य उमापतेश्च ग्रन्था नोपलब्धाः। जयदेवः पीयूषवर्षापरनामकात् पक्षधरात् प्रसन्नराघव*—चन्द्रालोकादिप्रणेतुर्भिन्नो गीतगोविन्दप्रणेता। कविराजश्च द्विसन्धानापराख्यस्य रामायणभारतोभयकथाश्लेषरूपस्य राघवपाण्डवीयस्य प्रणेता। क्वचिद् भवभूतिमनुकुर्वन्नपि प्रायोऽयं प्रसन्नशैलीकः कालिदासस्यानुसर्त्ता। श्लेषोऽप्यस्य नितरां प्रसन्न सार्थकश्च। धनंजयकृतमीदृशमेवापरं द्विसन्धानमुपलभ्यते। तत्तु न तथा मनोरमम्, प्रायो निर्भङ्गश्लेषत्वादरुचिकरं च। कविराजस्तु सभङ्गश्लेषप्रियः प्रायोऽक्षुण्णां नवां पद्धतिमनुसरति। एते पञ्च कवयो जयदेवेनापि वर्णिताः। तद्यथा—

"वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः, संदर्भशुद्धि गिरां
जानीते जयदेव एव, शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः।
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतधरो धोयी कविक्ष्मापतिः॥"

अत्र धोयीनामा कविराजो विख्यातः श्रुतधर—इति स्वारसिकोऽर्थः। ततश्च कविराजः प्राकृतं धोयीति नाम परिहरन् सर्वदात्मानं कविराजशब्देनैव व्यपदिशतीति प्रतिभाति। केषांचिन्मते श्रुतधरनामा कोऽप्यन्यः कविः। अन्यत्समानम्। तस्यास्य कविराजस्य कीदृशमद्वितीयमभिनवं च कौशलमिति विन्यस्यमानः प्रबन्धो वक्ष्यति—

---

* केचित्तु प्रसन्नराघवप्रणेता तृतीय एवेति मन्यन्ते, तज्जयदेवप्रकरणे स्फुटीभविष्यति।

राघवपाण्डवीये उपक्रमः

सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ॥
श्रीलतालिङ्गिताङ्गस्य विष्णुकल्पद्रुमस्य वः ।
अवतारमहाशाखा पुष्णन्तु फलमीप्सितम् ॥
स वः करोतु विघ्नानां वरणं वारणाननः ।
मदचारिभिरारब्धभोगावलिरिवालिभिः ॥
जगत्प्रदीपयोर्वंशौ सूर्याचन्द्रमसोरपि ।
ययोरुद्दीपितौ वाग्भिस्तौ वन्दे कविपुंगवौ ॥
निःश्रेण्यौ ब्रह्मलोकस्य वाग्देव्याः कर्णकुण्डले ।
धर्मद्रुममहामूले वाल्मीकिव्यासयोः कृती ॥
पुराणरामायणभारतादिक्षीराणि संयोजितभक्तिवत्सैः ।
पुरातनैर्या दुदुहे कवीन्द्रैः सा भारती कामदुघा ममास्तु ॥
श्रीरामायणमाणिक्यं भारतस्वर्णमुद्रितम् ।
न कस्य कुरुते लोके विस्मयोल्लासि मानसम् ॥
एकत्र चन्द्रातपसुन्दरस्य पार्श्वेऽपरस्मिन्स्फुरदुष्णभासः ।
अयं सुमेरोरनुयाति लीलां कथाद्वयाश्चर्यमयः प्रबन्धः ॥
मनोज्ञरामायणभारताख्यभागीरथीसागरसंनिपाते ।
सन्तः प्रकुर्वन्त्ववगाहलीलामस्मिन्नघच्छेदिनि काव्यतीर्थे ॥
रत्नावतंस इव भारतमण्डलस्य क्रामन्दिशो दशरथस्फुटवीरलक्ष्मीः ।
राजा सुमन्त्रविहिताभिरतिर्बभूव पाण्डुर्यशोभिरमिरञ्जितसर्वलोकः ॥
मातुः श्रियं संदधदिन्दुमत्याः श्लाघ्यः शरत्काल इवोडुपक्ष्केः ।
असौ प्रजारक्षणदक्षभावादजस्य चक्रे मनसः प्रमोदम् ॥
विचित्रवीर्यस्य दिवंगतस्य पितुः स राज्यं प्रतिपद्य बाल्ये ।
पुरीमयोध्यां धृतराष्ट्रभद्रां सहस्तिशोभां सुखमध्युवास ॥
करग्रहात्कोसलकेकयेन्द्रभुवोर्गुरुश्रीर्विनमत्सुमित्रः ।
पृथावरोधः समरे जितारिर्गोप्ता हिमाद्रीश्वरतां स लेभे ॥

ततः प्रजानां परिपालनेन कृतात्मकृत्यः क्षितिपः कदाचित् ।
प्रियानुयातो मृगयानुरोधात् सयौवनश्रीः प्रययौ वनान्ते ॥
शावानुबद्धहरिणीरसितोलपानां कोलावलीदलितबालकसेरुकाणाम् ।
दन्तावलोन्मथितपल्लवसल्लकीनां राजाभवद्वनभुवामुपकण्ठवर्त्ती ॥
शङ्कुव्याकीर्णरङ्कुद्रुतिनिशितशरक्षुण्णदीव्यत्तरक्षु
ज्याघोषक्षुब्धकण्ठीरवरवचकितव्यस्तमातङ्गयूथम् ।
खङ्गव्यालूनखङ्गं तुमुलकलकलप्रान्तकूजच्छकुन्तं
भल्लध्वस्ताच्छभल्लं वनभुवि मृगयाकर्म तेन प्रतेने ॥
स गाढबुद्धिस्तमसोपकण्ठे विवर्त्तमानं गतभीरभीकम् ।
मत्वा मृगं मार्गणलक्ष्यभूतमनग्रजन्मानमृषिं चकार ॥
तपस्विनश्छन्नतनोः शरेण विभिन्नमूर्त्तेर्जनकान्महाधेः ।
शापं सुतापायनिबद्धमृत्युं प्रियानुवृत्तौ कुशलोऽप्यवाप ॥
विषद्रुमस्य व्यसनाह्वयस्य फलं स लब्ध्वा सहसा निवृत्तः ।
कान्तोपभोगेषु पराङ्मुखात्मा निनाय कालं निरपत्यदुःखी ॥
स्फुरदृष्यशृङ्गवितताानि चान्वहं स वनान्तराण्यधिगतो महीपतिः ।
चतुरोऽपि पङ्कमुखभासुरश्रियस्तनयानवाप हरिदश्वतेजसः ॥

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका'; काशी, १८२६ शकाब्दाः, माघः, प्रथमवर्षे दशमसंख्या]

बिल्हणः

ख्रीस्तैकादशशतकस्यान्तिमे भागे बिल्हणेन विक्रमाङ्कचरितं प्रणीतमिति पाश्चात्त्याः। एतं ग्रन्थं चौरपञ्चाशिकां बिल्हणकाव्यं च विहाय नान्यत् किञ्चिदेतत्प्रणीतमुपलभ्यते। बिल्हणचरिते कस्यचिद्राज्ञो दुहितरि सक्तोऽयं राज्ञा वधायादिष्टो वध्यस्थानं गच्छन्मार्गे पञ्चाशिकां प्रणिनाय। तद्वृत्तविद्राजापि सदयः स्वां तनयां तस्मै प्रदाय तं ररक्षेति कथास्ति। कथा समूला नवेति न निर्णेतुं शक्यते। अस्य राजकन्यया सह संवादावसरश्लोकाः केचित् प्रसिद्धाः। तेषामेको यथा—

"अङ्गणं तदिदमुन्मदद्विपश्रेणिशोणितविहारिणो हरेः।
उल्लसत्तरुणकेलिपल्लवां शल्लकीं त्यजति किं मतङ्गजः॥"

पूर्वार्द्धं नृपकन्याया उत्तरार्द्धं च बिल्हणस्य।

प्रथममयं कश्मीरेष्वासीत् काश्मीराभिजनश्च। पश्चाद्दक्षिणस्यामागत्य डाहलनरेन्द्रसभायां कविताकौशलेन गङ्गाधराख्यं सदस्यकविं विजित्य चालुक्यनृपं विक्रमाङ्कं प्रापत्। तत्रैव च स्वमहाकाव्यं विक्रमाङ्कचरितं प्राणैष्ट। दक्षिणस्यां वसतोऽपि महानस्य कश्मीरेषु बहुमानः। तथा च विक्रमचरिते—

"सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥

वैदर्भीं वृत्तिं शृङ्गारं च रसमवलम्ब्य प्रायोऽस्य लेखः प्रावर्त्ततेति तस्मिन्नेव ग्रन्थे स्फुटम्। शब्दविन्यासप्रौढिर्नेदृशी कस्यचिदन्यस्य कवेः। तदाहैष स्वयमेव—

"प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीतिव्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः कवीनाम्।"

अस्य ग्रन्थः कथादौ प्रायो हर्षचरितमनुकरोति। अन्ते कवेरितिवृत्तं प्रदत्तम्। "तत्र प्रवरपुरस्य (Srinagar) वर्णनमप्यस्ति। केवलं शब्दसौकुमार्ये न्यूनोऽयं परिमलात्। आदर्शोऽस्य प्रौढिमाधुर्यादीनामत्रोपन्यस्यते।

विक्रमाङ्कचरिते नायकस्यौत्सुक्यम्—

विजृम्भमाणेष्वथ पञ्चबाणकोदण्डसिञ्जाघनगर्जितेषु।
विलासिनीमानसमाविवेश सा राजहंसीव नरेश्वरस्य॥

क्षिप्ते पदे चारु रुषा विशन्त्या बालप्रवालप्रतिमल्लभासि ।
चेतः क्षितीन्दोः स्फटिकावदातमुपाधियोगादिव रक्तमासीत् ॥
वित्रासितश्चैत्रसमीरणेन मयूखदण्डैः स्खलितः सुधांशोः ।
नासौ बभूव स्मरपार्थिवस्य कस्याः पदं रोषबिभीषिकायाः ॥
गृह्णन् गुणानह्नि विभावरीणां दिनप्रशंसां विदधन्निशासु ।
क्रमादसौ तां क्षितिमाचकाङ्क्ष यत्र द्वयं नास्ति दिनं निशा च ॥
त्रैलोक्यसंमोहनविद्ययैव तया जयास्था महतो दधानः ।
तं धन्विनां धुर्यमपि प्रहर्तुं विलासधन्वा धनुराचकर्ष ॥
निजप्रभानिह्नुतचन्द्रभासा प्रभातलक्ष्म्येव परिस्फुरन्त्या ।
तया समानीयत पाण्डिमानं चालुक्यभूपालकुलप्रदीपः ॥
शृङ्गाररत्नाकरवेलयेव तया प्रवेशे विहिते तरुण्या ।
नवानुरागेण मनस्तदीयं रत्नोत्करेणेव सनाथमासीत् ॥
असौ भवित्री सुभगा नतभ्रूः करिष्यते पञ्चशरः प्रसादम् ।
आन्दोलितोऽभूदिति चिन्तयासौ त्रैलोक्यचिन्ताहरणक्षमोऽपि ॥
यथा यथा निःश्वसिति स्म राजा निरङ्कुशं कार्श्यमदर्शयच्च ।
तथा तथा जागरयन्धनुर्ज्यां भेजे जयास्थां भगवाननङ्गः ॥
उर्वीपतेः पार्वणचन्द्रवक्त्रा समुद्वहन्ती हृदये निवासम् ।
विकासदीक्षामपराङ्गनानां सरोजिनीनामिव संजहार ॥
नितान्तमेकान्तनिषेवणेन द्वेषेण चान्तःपुरसुन्दरीषु ।
प्रच्छादनार्थं विहितक्षणोऽपि क्षोणीपतिस्ताडितडिण्डिमोऽभूत् ॥
ताडीदले कर्णपरिच्युतेऽपि कन्दर्पलेखभ्रममाससाद ।
उत्तंसमागच्छति षट्पदेऽपि प्रत्याशया कर्णमदत्त देवः ॥
श्रान्ते च निद्रालसलोचने च शून्ये च पञ्चेषुरिषून्विमुञ्चन् ।
न तत्र चित्रं गणयाम्बभूव क्षत्त्रव्रतस्य क्षतिमेकवीरः ॥

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका', काशी, १८२६ शकाब्दाः, फाल्गुनः, प्रथमवर्षे एकादशसंख्या]

'त्यक्तो विन्ध्यगिरिरिति' 'घासग्रासमिति च पद्याभ्यां वक्ष्यमाणाभ्यामस्य हस्तिस्वभावपरिचयः समीचीन आसीदित्यवगम्यते च ।† राजशेखरेण बालरामायण-कर्पूरमञ्जरीविद्धशालभञ्जिकादिप्रणेत्रा महाकविना सबहुमानं बालरामायणे प्रचण्ड-पाण्डवे च प्रस्तावनायामयमित्थं वर्णितः—

"बभूव वल्मीकभवः पुरा कवि-
स्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्त्तते सम्प्रति राजशेखरः ॥"१॥

विरलविरला अपि नितान्तं मधुराः प्रसादप्रचुराः अपूर्वशैलीपरिशीलन-शालिन्यः काश्चिद् भासभर्तृमेण्ठयोः सूक्तयोऽत्र रसिकेभ्य उपहारी क्रियन्ते—

सूक्तयो भासस्य यथा—

प्रत्यासन्नविवाहमंगलविधौ देवार्चनव्यग्रया
दृष्ट्वाग्रे परिणेतुरेव लिखितां गङ्गाधरस्याकृतिम् ।
उन्मादस्मितरोषलज्जितरसैर्गौर्या कथंचिच्चिराद्
वृद्धस्त्रीवचनात्प्रिये विनिहित' पुष्पाञ्जलिः पातु वः ॥

दग्धे मनोभवतरौ बालाकुचकुम्भसंभवैरमृतैः ।
त्रिवलीकृतालवाला जाता रोमावली वल्ली ॥

बाला च सा विदितपञ्चशरप्रपञ्चा तन्वी च सा स्तनभरोपचिताङ्गयष्टिः ।
लज्जां समुद्वहति सा वहते च धाष्ट्र्यं हा कापि सा किमिव वा कथयामि तस्याः ॥

तीक्ष्णं रविस्तपति नीच इवाचिराढ्यः शृङ्गं रुरुस्त्यजति मित्रमिवाकृतज्ञः ।
तोयं प्रसीदति मुनेरिव चित्तमन्तः कामी दरिद्र इव शोषमुपैति पङ्कः ॥

पेया सुरा प्रियतमामुखमीक्षणीयं ग्राह्यः स्वभावललितो विकटश्च वेषः ।
येनेदमीदृशमदृश्यत मोक्षवर्त्म दीर्घायुरस्तु भगवान्स पिनाकपाणिः ॥

कपाले मार्जारः पय इति कराँल्लेढि शशिन-
स्तरुच्छिद्रप्रोतान्बिसमिति करी संकलयति ।
निशान्ते तल्पस्थान्हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विक्लवयति ॥

---

† अयं सूक्तिमुक्तावल्यादावुद्धृताद्राजशेखरसूरेर्भिन्नस्ततः प्राचीनश्च ।

कठिनहृदये मुञ्च क्रोधं शिवप्रतिघातकं
लिखति दिवसं यातं यातं यमः किल मानिनि ।
वयसि तरुणे नैतद्युक्तं चले च समागमे
भवति कलहो यावत्तावद्वरं सुभगे सुखम् ॥

विरहवनितावक्त्रौपम्यं बिभर्त्ति निशापति-
र्गलितविभवस्याज्ञेवाद्य द्युतिर्मसृणा रवेः ।
अभिनववधूरोषस्वादुः करीषतनूनपा-
दसरलजनाश्लेषक्रूरस्तुषारसमीरणः ॥

यदपि विबुधैः सिन्धोरन्तः कथंचिदुपार्जितं
तदपि सकलं चारुस्त्रीणां मुखेषु विलोक्यते ।
सुरसुमनसः श्वासामोदे शशी च कपोलयो-
रमृतमधरे तिर्यग्भूते विषं च विलोचने ॥

कृतककृतकैर्मायासख्यैस्त्वयास्म्यतिवञ्चिता
निभृतनिभृतैः कार्यालापैर्मयाप्युपलक्षितम् ।
भवतु विदितं नेष्टाहं ते वृथा परिखिद्यसे
ह्यहमसहना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम् ॥

दुःखार्त्ते मयि दुःखिता भवति या हृष्टा प्रहृष्टे तथा
दीने दैन्यमुपैति रोषपरुषे पथ्यं वचो भाषते ।
कालं वेत्ति कथाः करोति निपुणा मत्संस्तवे रज्यति
भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः सैका बहुत्वं गता ॥

भर्तृमेण्ठस्य यथा—

आसीद्दैत्यो हयग्रीवः सुहृद्वेश्मसु यस्य ताः ।
प्रथयन्ति बलं बाह्वोः सितच्छत्रस्मिताः श्रियः ॥

यं प्रेक्ष्य चिररूढापि निवासप्रीतिरुज्झिता ।
मदेनैरावणमुखे मानेन हृदये हरेः ॥

वाचो माधुर्यवर्षिण्यो नाभयः शिथिलांशुकाः ।
दृष्टयश्च चलद्भ्रूका मण्डनान्यन्ध्रयोषिताम् ॥

न तथा नागरस्त्रीणां विलासा रमयन्ति नः ।
यथा स्वभावमुग्धानि वृत्तानि ग्राम्ययोषिताम् ॥

तथाप्यकृतकोत्तालहासपल्लविताधरम् ।
मुखं ग्रामविलासिन्याः सकलं राज्यमर्हति ॥

जनमजितमपीच्छता विजेतुं निशितदशार्धशरं धनुर्विमुच्य ।
अतिरभसतयोद्यता स्मरेण ध्रुवमसियष्टिरिहाङ्गनाभिधाना ॥

मधु च विकसितोत्पलावतंसं शशिकरपल्लवितं च हर्म्यपृष्ठम् ।
मदनजनितविभ्रमा च रामा फलमिदमर्थवतां विभूतयोऽन्याः ॥

इदं हि माहात्म्यमशेषसूचकं वदन्ति चिह्नं महतां मनीषिणः ।
मनो यदेषां सुख-दुःखसंभवे प्रयाति नो हर्षविषादवश्यताम् ॥

महद्भिरोवैस्तमसामभिद्रुतो भयेऽप्यसंमूढमतिः क्रमन्वितौ ।
प्रदीपवेषेण गृहे गृहे स्थितो विखण्ड्य देहं बहुधेव भास्करः ॥

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

त्यक्तो विन्ध्यगिरिः पिता भगवतो मातेव रेवा नदी
ते ते स्नेहनिबन्धबन्धुरधियस्तुल्योदया दन्तिनः ।

त्वल्लोभान्ननु हस्तिनि स्वयमिदं बन्धाय दत्तं वपु-
स्त्वं दूरे ध्रियसे लुठन्ति च शिरःपीठे कठोराङ्कुशाः ॥

घासग्रासं गृहाण त्यज गजकलभ प्रेमबन्धं करिण्याः
पाशग्रन्थिव्रणानामभिमतमधुना देहि पङ्कानुलेपम् ।
दूरीभूतास्तवैते शबरवरवधूविभ्रमोद्भ्रान्तरम्या
रेवाकूलोपकण्ठद्रुमकुसुमरजोधूसरा विन्ध्यपादाः ॥

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका', काशी, १८२६ शकाब्दाः, चैत्रः, प्रथमवर्षे द्वादशसंख्या]

कलाकौमुदी

उपक्रमोल्लासः

जयत्यहो वाङ्मयदेवतासौ
यामाश्रितो नार्थयते नरेन्द्रान् ।
जयन्ति तत्तत्त्वविदश्च येषां
गिरः सुधामप्यवधीरयन्ति ॥

भारते प्राचां बहवः कला विदिता बभूवुः । द्विजातयोऽपि कलाशिक्षणमुपादेयं मेनिरे । शिक्षितसकलकलैश्च येषां या कला बहुमता, स्वधर्मानुरूपा वा तैस्तस्यामेव कौशलं प्रादर्श्यत । क्षत्रियवरो भगवान् श्रीकृष्णोऽपि विप्रवरात् सान्दीपनेः चतुःषष्टि कलाः शिक्षितवानिति भागवते दर्शनात् ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यामपि कला समादृतपूर्वेत्यवसीयते । एताश्च कलाः श्रीमद्भागवतटीकासु कमलाकरग्रन्थेषु च वर्णिता इति विस्तरभयान्नात्र प्रदर्श्यन्ते । आसु च काश्चित् पाकशिक्षादयो द्विजातिभिरात्मार्थमेव अभ्यस्यमानाः शास्त्रसम्मताः । अन्यार्थे विशेषतो विप्रैः भृतिस्वीकारेण विधीयमानाः शूद्रत्वसंपादिकाः । लज्जाकरं चैतत्, यदाधुनिकैः कुलीनैरपि विप्रैः भृतिलोभेन शूद्रगृहेष्वपि पाचकधावकादिकृत्यं स्वीक्रियते । मन्यामहे, कृषिवाणिज्यादिरूपा वैश्यवृत्तिरपि शूद्रवृत्तेरस्याः परगृहे नीचदास्यरूपायाः श्रेयसी । किञ्च कलाकौशलेन जीविका क्रियतां मा वा, अध्ययनाध्यापने तु प्रायः सर्वासामपि कलानां द्विजातिभिरपि कर्त्तुं शक्येते । पुरा हि सर्वज्ञत्वप्रयुक्तमेवं विप्राणां पूज्यत्वमासीत् । इदमेव चाभिप्रेत्य मनुनोक्तम्—

"सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ।
आनृशंस्याद् ब्राह्मणानां भुञ्जते हीतरे जनाः ॥" इति

तथाहि तेषु युगेषु सर्वं लौकिकं पारलौकिकं च कार्यं विप्राधीनमासीत् । एतत्प्रणीतैरेव ग्रन्थैः सुशिक्षितैः अर्थधर्मकाममोक्षाख्यं पुरुषार्थचतुष्टयं सुलभमासीत् । इदानीन्तनेषु तु विप्रेषु केचिदेव विद्वांसः, विद्वद्भ्योऽपि साम्प्रतिकेभ्यः केवलं पारलौकिकविषयेष्वेव साहायकं प्राप्तुं सुशकम् ।

लौकिकेषु विज्ञानेषु तु न कापि शिक्षा तैर्दातुं शक्यते। लौकिकं विहाय च पारलौकिकं न किञ्चित् साधयितुं संभाव्यते। वित्तभार्याद्यभावात् प्रतिदिनं ज्ञानपूर्वकं चौर्य्यव्यभिचारादौ प्रवर्त्तमाना हि जनाः कथं पण्डितोपदिष्टैः प्रायश्चित्तशतैरपि पावयितुं शक्यन्ते। कथं वा जीविकाभावात् द्विविराणां गृहेषु पाचकत्वं कुर्वतां न्यायाधिकरणगमनसंभ्रान्तैर्भूयोभूयः स्वामिभिः पाकशीघ्रतायां प्रेर्य्यमाणानां स्नानसन्ध्यार्थमपि समयमलभमानानां द्विजापसदानां काचिदैहिकस्य आमुष्मिकस्य वा श्रेयसः प्रत्याशा प्रजायताम्। ऐहिकमेव आमुष्मिकस्य साधनं भवति। नहि जीवन्मुक्तोऽपि शरीरे वर्त्तमानः विनान्नमवस्थातुं शक्नोति। इत्थमवस्थिते च ये विप्राः संस्कृतभाषाध्ययनेनैव स्वयं भाषान्तरज्ञाने कृत्स्नस्य जगतोऽध्यापने शक्ता अभवन्। स्वदेशनिर्मितैः पवित्रैर्वस्तुभिश्च सव व्यवहारं निरवाहयन्, नच कस्मैचिच्छिल्पाय कस्यैचित् कलायै वा भारतीयान् द्वीपान्तरैः शिक्ष्यमाणान् द्रष्टुमसहन्त। कथं त एव साम्प्रतं स्वपुत्रान् संस्कृतविद्यया सहैव वा तां विनैव वा शूद्रेभ्यो द्वीपान्तरीयेभ्यो वा भाषान्तरमभ्यस्यतो द्रष्टुमुत्सहन्ते ? कथं वा निखिलविद्यान्तरप्रसविनी सा मर्त्त्येतरभारती तथाऽनुपयोगिनी संवृत्ता, येन वेदाभ्यासं नित्यकर्मादिशिक्षां च अनादृत्य क्षीरकण्ठैः धृतोपपीतैः उद्भिद्यमानश्मश्रुभिश्च सर्वैरपि विप्रबालकैः मद्यवसास्नायुप्रायबन्धनानि अपावनानि आङ्ग्लपुस्तकानि आङ्ग्लविधया मुद्रितानि संस्कृतपुस्तकानि मद्यरसोद्धासुरा (Varnished with alcohol) लेखनीः सीसकशलाकिकाश्च (Pencil) दर्भसंपर्कार्हैः करैरामृशद्भिः स्वाध्यापकानुकरणेन च सोमकषायार्हे मुखेऽपि सज्जयद्भिः स्वर्गस्थानपूर्वपुरुषान् लज्जयद्भिः, यज्ञवेदिकाविचरणक्षमैश्चरणैः प्रातरेव अपावनीषु पुरीषवाहकमार्ज्जनीभिरुन्मृष्टरेणुषु साम्प्रतिकाङ्ग्लविद्यालयभूमिषु निःशङ्कमटाट्यत इति विचार्यमाणे किमुत्तरं भवत्वस्माकम्।

किं करोतु वराकोऽयं बालजनः ? क्षेत्राणि विक्रीय गुरुजनेन कलाकुमार (B. A.) पदं प्राप्तुं प्रवर्त्तितोऽयम्। नास्य गुरुभिः सकृदपि मनसि कृतम् उत्तीर्णेभ्य एतेभ्य प्रतिमासं विंशतिमुद्राव्ययेन अमूल्यस्वास्थ्यविप्लावनेन च पठितवद्भ्यो न्यायाधिकरणेषु विद्यामन्दिरेषु च रिक्तं पदं प्रदास्यते न वा ? न तैः स्मृताः शतशो न्यायवादिनो (Vakil) गात्रान्मक्षिकापसारणमात्रं कुर्वाणा न्यायालयेषु।

कः शरणं ददातु एभ्यो बालकेभ्यः ? अस्ति कोऽपि भारतीयो विद्यालयो यत्र वेधयन्त्रादिसहकारेण आर्य्यज्यौतिषं पाठ्यते; शस्त्रोद्यानाद्युदाहरणैर्वा आयुर्वेदचिकित्सा शिक्ष्यते, यत्र बृहत्संहितायां वर्णितानि वस्तुजातानि प्रत्यक्षं परीक्ष्यन्ते,

यत्र च स्वयमधिगतानेकभाषाः समधीतानेकविद्या विद्वांसः संस्कृतादिभारतीयभाषाभिरेव पौरस्त्यं पाश्चात्त्यं चोभयमपि विज्ञानं व्याचक्षते।

को न्विमान् बालान् बोधयतु। केवलस्य भाषान्तरस्य ज्ञानं तत्र लिखितानां ज्ञानविज्ञानादिप्रबन्धानामध्ययनं विना न कस्मैचित् फलायेति। क एतानुपदिशतु। मुद्रणप्रचारात्पूर्वं लिखनादिकाठिन्यभयात् अतिसंक्षिप्तरीत्या प्रणीतानां संस्कृतग्रन्थानां बोधाय यादृक् गुरुसाहाय्यं यावान् वा परिश्रमोऽपेक्ष्यते, न तथा मुद्रणादिसौकर्य्यात् अतिविस्तृतानां सुपरिस्फुटार्थानां च पाश्चात्यप्रबन्धानां अर्थाधिगमाय। विनैव प्रचुरं व्ययं, विनैव विश्वविद्यालयसंबंधं, स्वगृह एव सर्वाः पाश्चात्यविद्या अधिगन्तुं शक्यन्ते, द्वीपान्तरेषु महती संख्या विनैव अध्यापकान् समधीतविद्यानामिति।

यदि भारतीयभाषा एव पाश्चत्यभाषावदुपयोगिन्यः सकलविज्ञाननिधयश्च पुनरपि अत्रत्यैस्तद्धितैषिभिर्विधीयेरन्, महदनर्थमूलमुन्मूलितं स्यात्, महती भाषान्तरशिक्षादिनिमित्ता व्ययपरंपरा परिहृता स्यात्, महान् क्लेशराशिरुद्धृतः स्यात्, महानुन्नतिप्रकारः प्रचारितः स्यात् महच्च गौरवं भारतीयानां सकले जगति प्रतिष्ठापितं स्यात्।

कदाचित् प्रतिसहस्रमेकोऽपि भारतीयो न जानाति किमधुना साधितं पाश्चात्यवैज्ञानिकैः, किं वा साधितमासीत् पूर्वतनैर्भारतीयैः। पाश्चात्यभाषाभिज्ञानां वार्त्तापत्रादिपाठकानां वा पाश्चात्यविज्ञानविषये केचिदेव किञ्चिज्जानन्ति। जानतां वा केचिदेव सन्ति, ये पाश्चात्ययन्त्राणां पाश्चात्यशास्त्राणां वा समुचितमुपयोगमवगच्छन्ति। अवगततदुपयोगाश्च विरलतमा एव भारतीयहितेषु निजविज्ञानं प्रवर्त्तयन्ति। पाश्चात्त्येषु बहवः शास्त्रविभागाः सन्ति, प्रतिविभागोपयुक्ताश्च यन्त्रविशेषाः सन्ति। वस्तुस्वभावनिरूपणं तत्परिवर्त्तादिपरीक्षां च प्रत्यक्षमविधाय न किञ्चित्पाश्चात्यैर्निश्चीयते। पाश्चात्यग्रन्थाश्च अतीव सुबोधाः। तेषां यन्त्रजातंच पराघ्र्यमपि श्रमानिर्मितमपि च स्वल्पव्ययलभ्यं सरलप्रयोगं च। एतादृशे सौकर्य्ये सत्यपि तादृशमस्माकं दौर्भाग्यं येन नास्माकं ज्यौतिषिका दूरवीक्षणेन[1] ज्योतिस्तत्त्वं पश्यन्ति। न सूक्ष्मवीक्षणेन[2] वायवीयान् जलीयांश्च सूक्ष्मजन्तून् परीक्ष्य जलवायुशोधनाय केऽपि प्रवर्त्तन्ते। न लक्षोपार्ज्जका अपि चिकित्सकाः वैद्युतैः किरणविशेषैः[3] शरीरान्तर्भागान् प्रत्यक्षं वीक्ष्य चिकित्सासु प्रवर्त्तन्ते। न प्रायश्चित्रकरा श्चित्रसमर्पकस्य[4] प्रयोगं जानन्ति। न स्थपतयः पुरुषसहस्रदुर्वहान् भारान् बकयन्त्रेण[5] सुखमुत्थापयन्ति। न नौकिका भारतनिर्मिताभि-

1. Telescope. 2. Microscope. 3. X. Rays. 4. Photograph. 5 Crane.

र्बाष्पनौकाभि[6]र्व्यवहरन्ति। न पाश्चात्यवित्तपतिभिरिव भारतीयैः कोटिपतिभिरपि वष्पशकटमार्गान् निर्माय प्रत्यहं लक्षव्ययेन लक्षत्रयं उपार्ज्यते। न भारतीयैः सामन्तैः कराकर्षणेन प्रजाः पीडयद्भिः तासामुपयोगाय प्रत्येकं पुरुषशतश्रमक्षमाणि कर्षणोत्पवनपेषणादियन्त्राणि स्थाप्यन्ते। नात्र प्रतिनगरं पत्रचक्राणि[7] पेषणचक्राणि[8] वयनचक्राणि[9] च स्थापयद्भिर्वा भारतीयैर्वणिग्वरैर्द्वीपान्तरीयवस्तूनां अत्रानुपयुक्तप्रायता प्रविधीयते। न बहुभिः संक्षिप्तलेखशैली[10] समभ्यस्यते। न गृहे गृहे दूरानुस्वानकेन[11] वार्त्तादिः प्रवर्त्तते, न सर्वैर्वैद्युतलेखशैली[12] शिक्ष्यते। नानुस्वानलेखकस्यो[13]पयोगः प्रचुरं प्रचरति। न मुद्रालेखकेन[14] पत्रादिकं सर्वत्र विलिख्यते। न वाष्पयन्त्रैः[15] पुरुषलक्षदुष्कराण्यपि कार्याणि सत्वरं सम्पाद्यन्ते। न भूपरीक्षया[16] क्व रत्नानि काङ्कराः क्व धातव इत्यादि परिशील्यते। न धातुशिल्पिभिः लौहस्तम्भजालकादयः शतशो भारतीयधनिनां साम्प्रतं निर्मीयमाणेषु गृहेषु अपेक्ष्यमाणाः प्रतिनगरं निर्मीयन्ते। न निर्मालानि विचित्राणि च काचकवस्तूनि भारतीयशिल्पिभिरुत्पाद्यन्ते। न जन्तुविद्यया[17] प्राणिनां स्वभावादि परीक्ष्यते। न रसशास्त्रेण[18] द्रव्ययोजनाभिः विविधानि कार्याणि साध्यन्ते। न वैद्युतविज्ञानेन[19] वैद्युतशकटादीनि प्रचार्य्यन्ते। नात्रापि द्वीपान्तरेष्विव व्यर्थप्रायां शिक्षां विहाय समुपयोगिशिल्पशिक्षादौ सर्वैरुद्युज्यते। न विज्ञानशिक्षालयाः सर्वतः स्थाप्यन्ते। न भारतीयभाषाप्रधाना वैज्ञानिकविद्यालयाः सर्वतोऽवलोक्यन्ते। न चेन्द्रजालतोऽप्यद्‌भुततराणि मायाकल्पनाभ्योऽपि रम्यतराणि अणिमादिसिद्धिसंपत्तेरपि स्पृहणीयतराणि, महापद्मादिनिधिप्राप्तेरपि श्रेयस्करतराणि विज्ञानकौशलानि पाश्चात्यैः प्रदर्श्यमानानि पश्यन्तोऽपि तच्छिक्ष्यतां तद्रास्यं चाप्यवलम्ब्यापि स्वयं केऽपि तादृशानि कौशलानि प्रदर्शयितुं चेष्टन्ते। न च सौभाग्योपनतं पाश्चात्यसम्बन्धं वहन्तोऽपि निरुद्योगाः निष्प्राणा भारतीया विनापि तत्सम्बन्धं सकलकलाकुशलान् कर्पूरद्वीपवासिनो दृष्ट्वा मनागपि अपत्रपन्ते।

प्राचीनसमयेषु भारतीयैः प्रायः सर्वा अपि कला अभ्यासपथं प्रापिता आसन्। किन्तु, तद्विज्ञानस्य पूर्णतया वर्णनं नास्माभिः कर्त्तुं शक्यते, नहि तेषां सर्वेऽपि प्रबन्धाः साम्प्रतिकपुस्कालयेषूपलभ्यन्ते, न च तेषां कौशलादर्शाः सर्वेऽपीदानीमवतिष्ठन्ते। कतिचित् कालेन भक्षिताः परे म्लेच्छैर्भस्मीकृताः इतरे च पातालकुक्षिकुहरे दुर्जनसंपर्कं परिहरन्त इव प्रलीनाः। भवतु यादृक् तादृग्वा गौरवं कौशलं वा अस्मत्पूर्वजानां किं

6. Steam vessel. 7. Paper Mill. 8. Grinding mill. 9. Weaving mill. 10. Short-hand. 11. Telephone. 12. Telegraph. 13. Phonograph 14. Type writer. 15. Steam Engine. 16. Geology. 17. Zoology. 18. Chemisry. 19. Electrophysics.

तेन, न चेद्वयमपि तद्गौरवानुरूपं किमपि कुर्म्मः, किमस्माभिः, कृतं केवलं तद्गौरवानुमानाध्मातहृदयैरवतिष्ठमानैः, किं प्रपितामहोपभुक्तैः मोदकैः प्रपौत्रः स्वोदरं पूरयितुं शक्नोति ?

भो भारतीयाः, श्रूयतामुत्कर्णैरस्मद्वचः, दृश्यतां च विस्फारिताक्षैः, कथं वर्षशतद्वयेनैव स्वप्नेऽपि साम्प्रतिकभारतीयैरदृष्टानि स्थानानि पाश्चात्यैर्विलोकितानि। मनसोऽप्यगम्याः सिद्धयः संपादिताः। कृपणैरप्यनुत्प्रेक्षिताः सम्पदो राशीकृताः। विशृङ्खलवाग्भिः कविभिरपवर्णिता उत्कर्षाश्च समासादिताः।

मत्कुणान् सूक्ष्मवीक्षणेन[1] महिषपरिमाणान् दर्शयद्भिरेतैर्महिमसिद्धिः प्रदर्शिता। पाषाणमपि वैद्युताग्निना विलापयद्भिः अणिमासिद्धिरुद्भाविता, बालाग्रसूक्ष्मां जलधारां प्रस्थलक्षोद्वहनक्षमां विदधानैः[2] गरिमसिद्धिरुल्लासिता, बकयन्त्रेण[3] पिनाकदुर्भरान् लौहस्तम्भान् कदलीप्रकाण्डानिव हेलयैव उत्थापयद्भिर्लघिमसिद्धिः प्रकाशिता, द्विचक्रकै[4] र्वाष्पशकटैः[5] वैद्युतशकटैश्च[6] क्षणेनैवातिदूरं प्राप्नुवद्भिः प्राप्तिसिद्धिरुद्भाविता, द्वीपान्तरीयं वस्तुजातं सुखेन द्वारि द्वारि त्वरितप्रापनप्रणाल्या[7] प्रकाममधिगच्छद्भिः प्राकाम्यसिद्धिः प्रकटीकृता, उष्णप्रदेशोचितान् तरुगुल्मादीन् शीतप्रदेशेषु शीतप्रदेशोचितांश्चोष्णप्रदेशेषु प्ररोहयद्भिः अन्यांश्च प्रकृतिविपर्य्यान् परिहृत्य अद्भुतसृष्टिं दर्शयद्भिः ईशित्वसिद्धिः प्रतिष्ठापिता, भुवं वशीकृत्य महार्हरत्नधातुप्रभृतिवस्तुजातमधिगच्छद्भिः जलराशिमादिगन्तं वाष्पनौकया समुत्तरद्भिः, तेजोनिधिमग्निं शकटादिवाहने विनियुञ्जानैः वायुशक्त्या[8] पेषणादिकारयद्भिः, आकाशगुणं शब्दमपि वशे विधाय अनुस्वानलेखके[9] वन्दीकुर्वद्भिः, पञ्चभूतवशीकारकुशलैः वशित्वसिद्धिरपि प्रख्यापितेति।

इमामीदृशीमुन्नतिं पश्यद्भिः भवद्भिरपि किञ्चित्तादृशं क्रियमाणमाशास्महे, नास्ति भवतां तादृशं वित्तमिति वादस्तु अकिञ्चित्करः। वर्षशतद्वयात्पूर्वं पाश्चात्याः कर्पूरद्वीपवासिनश्च साम्प्रतिकभारतीयेभ्योऽपि निर्धनतरा आसन्। किञ्च किमुच्यते नास्ति वित्तमिति अस्ति भारतीयधनिनां वैदेशिकवस्त्रादिषु, न्यायकलहेषु, मूर्खचाटुकारेषु, तीर्थध्वाङ्क्षेषु, अन्येषु च कामक्रोधजेषु व्यसनेषु प्रक्षेप्तुं, परतश्च ऋणगर्त्ते पतित्वा स्वात्मानं लोकद्वयसुखाद् भ्रंशयितुं पर्य्याप्तं वित्तं, नास्ति च किञ्चिद्देशोन्नतये

---

1. Microscope. 2. Hydraulic Machine. 3. Crane. 4. Bicycle. 5. Steam Locomotive. 6. Motor car. 7. Post system. 8. Wind mill. 9. Phonograph.

प्रदातुम् ? उदाराया भारतभूमेस्तनयाः, न मातृभूमिमोहशैहत्वामासैः प्रतारयत, रक्षत निजपूर्वजानां गौरवम्, पश्यत निजप्रतिष्ठाम्, सम्पादयत च देशोन्नतिमिति भूयोभूयः प्रार्थ्यत इति शम् ।

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका' वाराणसी, (प्रथमे वर्षे, प्रथमसंख्या,।१८२६ शकाब्दाः वैशाख]

कला-कौमुदी।

निरूपण-परीक्षोल्लासः

स्वयमनिरूप्यावहितैरपरीक्ष्य तथैव परिवर्त्तान्।
लौकिकमपि यैर्वस्तु प्रमितं तेभ्यो नमोऽस्तु धन्येभ्यः ॥१॥

प्रायो निरूपणपरीक्षाभ्यामेव सकलं लौकिकं विज्ञानं समुद्भवति। केवलं योगिनामेव स्वयं विनापि निरूपण-परीक्षे सर्वं पदार्थजातं समुदभासत पूर्वसमयेषु।

तत्रवस्तूनां स्थितेस्तत्परिवर्त्तादेश्च सावधानतया प्रत्यक्षीकरणं निरूपणम् (Observation) निरूपणकर्त्ता स्वयं निरूपणीये कञ्चित्परिवर्त्तं नोत्पादयति, केवलं प्रकृतिकृतान्परिवर्त्तान् प्रत्यक्षीकरोति। तथा च श्लोकः—

प्राकृतं परिवर्त्तादि मनुष्यैर्विनिरूप्यते।
निरूप्ये न परीवर्त्तो निरूपककृतो भवेत् ॥१॥

अत्रादिशब्दाद् यास्कोक्ताः षडपि भावविकाराः[१] परिगृहीताः पर्वतं प्रासादं वारुह्य निर्म्मराद्युत्पत्तिस्थानं तारकादिकं वा निरूपयन्ति जनाः।

परीक्षायां (Experiment) तु स्वयं निजप्रयत्नैरुत्पादिताः परीक्ष्ये वस्तुनि परिवर्त्ताः प्रत्यक्षीक्रियन्ते। भवति चात्र श्लोकः—

कृत्रिमं परिवर्त्तादि विपश्चिद्भिः परीक्ष्यते।
परीक्ष्येषु परीवर्त्ता विधीयन्ते परीक्षकैः ॥२॥

अग्निना हीरकं भस्मीकर्त्तुं शक्यते न वा, भस्मीकृते हीरके कानि स्थूलतत्त्वान्युपलभ्यन्ते,* केषां द्रव्याणां योगेन प्रतिघृष्टेन सुखमग्निरुत्पाद्यते, जलमेकं स्थूलतत्त्वं वा

१ "जायतेऽस्ति विपरिणमते वर्द्धतेऽपक्षीयते विनश्यतीति।" जन्म, स्थितिः, विपरिणामः, वृद्धिः अपक्षयः, विनाशश्चेति तदर्थः। निरुक्त पू० व० १ अ. १ पा. १ ख।

* Elements are of two kinds, Atomic and Moleculer. True Atomic elements are the five Indian elements, i e. Earth or Smell elements (गन्धतन्मात्रम्), Water or tasteelements (रसतन्मात्रम्), Fire or colour elements (रूपतन्मात्रम्), Vayu or touch elements (स्पर्शतन्मात्रम्), Akasha or Sound elements (शब्दतन्मात्रम्) Man never can analyse them further. Therefore they must be distinguished as Moleculer or स्थूल elements, from our Atomic or अणु elements, अम्लजनक जलजनकक्षारजनकादीन्यग्रिम उल्लासे प्रपञ्चयिष्यन्ते।

स्थूलतत्त्वानां बहूनां योगो वा, कृत्रिमः श्वेतोपलो निर्मातुं शक्यते न वा, तन्त्रीरहितं दूरलेखकयन्त्रं सम्भाव्यते न वा, किञ्चिद्द्रव्यं सर्वथा मनुष्येण नाशयितुं शक्यते न वा। कैश्चिद्दार्शनिकैकदेशिभिरुत्प्रेक्षितो द्रव्यत्वसामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः पुरुषैरुत्पादयितुं प्रत्यक्षीकर्त्तुं वा शक्यते न वेत्यादि च परीक्ष्यते।

तत्र च निरूपणे प्रायो यन्त्रत्रयमत्यावश्यकम्। दूरस्थानां तारकादीनां निरूपणे दूरवीक्षणमपेक्ष्यते। सूक्ष्माणां जलीयवायवीयादिकीटानामन्येषां चेदृशानां वस्तूनां निरूपणे सूक्ष्मवीक्षणमपेक्ष्यते। भित्त्यादिव्यवहितानां वस्तूनां शरीरान्तर्धात्वादीनां वा निरूपणे तु वैद्युताः किरणविशेषा[1] अपेक्ष्यन्ते। एतच्च निरूपणौपयिकं प्रधानं यन्त्रम्। कदाचित्तु चित्रजीवक[2] घनचित्रक[3] प्रभापरिमोषकादीनि[4] दृष्टिसहायकानि कर्णपणव[5] हृद्गतिबोधकादीनि[6], कर्णसहायकानि, अन्यादृशानि च नाडीगतिलेखकादीनि यन्त्रजातान्यपेक्ष्यन्ते।

परीक्षायां तु प्रायो बहूनि यन्त्राण्यावश्यकानि, बहूनि च द्रव्याण्यपेक्ष्यन्ते। अग्नेर्विद्युतः अम्लानां विविधनलिकानां च साहायकेन प्रायो बहवः परीक्षाः प्रवर्त्तन्ते।

प्राचीनैर्भारतीयैर्निरूपणं परीक्षां चाविधाय न किञ्चिन्निरणीयत। कार्यकारणभावश्च निरूपणपरीक्षाभ्यामेव निरचीयत।

प्रायः क्वचिदन्वयेन, क्वचिद्व्यतिरेकेण, क्वचिदुभयेन, क्वचित्पारिशेष्यात्, क्वचिच्च सहभाविना परिवर्त्तेन कार्यकारणभावो निर्णीयते। तद्यथा—

१. सर्वत्रैव भूगोलस्योपरिक्षिप्तानां वस्तूनां शक्त्यन्तरेणानवष्टब्धानां पुनस्तत्रैव पातो दृश्यत इति केवलान्वयदर्शनाद्भूव्यतिरिक्तस्य स्थानस्यास्माभिरलभ्यत्वेन व्यतिरेकमसंस्थाप्यापि भूगतामाकर्षणशक्तिं स्वीकुर्मः।

२. सर्वान् जन्मिनः अमरत्वव्यतिरेकभाजो दृष्ट्वा अमरत्वान्वितं वस्त्वदृष्ट्वापि शुद्धव्यतिरेकेणैव जन्मिभिन्नमेवामरत्वविशिष्टमिति व्यवस्था। गीतश्च स एवार्थो भगवता—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥ इति॥

---

(१) Ex-rays. (२) Bioscope. (३) Stereoscope. (४) Blindscope. (५) Ear-drum. (६) Stethoscope.

३. शुद्धान्वयेन शुद्धाव्यतिरेकेण वा विरला एव कार्यकारणभावा व्यवस्थाप्यन्ते। प्रायस्तु द्वयमप्यन्वयं व्यतिरेकं चोपलभ्य कार्यकारणभावो निश्चीयते। उभयथा निर्णीत एव स दृढो भवति। यथा मनुष्येषु विवेकशक्तिर्दृश्यते, तद्व्यतिरिक्तेषु तु नेति मानुष्यं विवेकप्रयोजकमिति सिद्धान्त्यते।

यथा वा वायौ अम्लजनकाख्यस्य स्थूलतत्त्वस्य सन्निधान एव प्राणिनः प्राणितुं शक्नुवन्ति तदसन्निधाने तु सत्वरं प्राणैर्वियुज्यन्त इति अम्लजनकः प्राणनक्रियायाः साधनमिति निश्चीयते।

४. क्वचिच्च द्वयोस्त्रयाणां चतुर्णामधिकानां वा द्रव्याणां संयोगे एकस्यानेकेषाञ्च कार्ये प्रथमतो व्यवस्थापिते कार्यशेषश्चेदुपलभ्यते, स द्रव्यशेषस्य कार्यं इति निर्णीयते। यथा केनचिद् वने वसता अज्ञातगुणेन शाकेन सह शाल्योदनो भुक्तश्चेत्तन्मरणप्रयोजकः स्यात्, शाल्योदनस्य केवलस्य प्रथमत एव प्राणधारकत्वनिश्चयात् पारिशेष्यात्सोऽज्ञातः शाक एव निधनप्रयोजक इति निश्चीयते।

५. कदाचित्तु सर्वथा अन्वयस्यव्यतिरेकस्य वा असंभवे एकस्य वस्तुनो वृद्धावपरस्यापि वृद्धौ, प्रथमस्य ह्रासे च द्वितीयस्यापि ह्रासे दृष्टे तयोरुभयोः कार्यकारणभावो वा उभयोः केनचिदेकेन वस्तुना प्रयोज्यत्वं वा निश्चीयते। यथा सर्वथा वाय्वभावस्यासाध्यप्रायत्वात् पर्वतादावुपर्युपरि गच्छतां वायुसान्द्रताया ह्रासेन सहैव क्रमेण प्राणनेऽप्यसौकर्यं वर्द्धमानमुपलभ्य वायुसन्निधिं विना प्राणनमसंभाव्यमित्यनुमीयते।

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका', काशी, शकाब्दाः, १८२६ प्रथमे वर्षे द्वितीया संख्या]

स्थूलतत्त्वोल्लासः

वज्रं भस्मीकर्त्तुं लोष्ठादपि निधिमथोद्धर्त्तुम् ।
वायुमपि वशयितुं ये जानन्ति कथं न ते कृतिनः ॥१॥

अणुतत्त्वानि पञ्चैव भारतीयदार्शनिकैर्निर्णीतानि । स्थूलतत्त्वानि तु कानिचित् सुवर्णरजतादीनि प्राचीनानां विदितान्यासन् । अन्यानि च बहूनि पाश्चात्यैर्निश्चितानि उपलभ्यन्ते च समये-समये नवानि तत्त्वान्तराणीति तेषां संख्या न व्यवस्थितेति पाश्चात्यसिद्धान्तः । किच शुद्धद्रव्यान्तरसंयोगजानि निश्चेतुं शक्यन्ते । ❀ पाश्चात्यैरपि हि पूर्वं स्थूलजले तत्त्वाभिमानश्चिरमकारि, साम्प्रतं तु अक्सिजनहैड्रजननाम्नोः शुद्धतरयोः पदार्थयोः संयोगाज्जलं जायत इति सर्वेषां वैज्ञानिकानां विदितम् ।

तथापि रसविज्ञाने अत्यन्तमुपयुक्तत्वादद्यावधि विदितानां शुद्धतरेषु द्रव्यान्तरेष्वविभक्तानां स्थूलतत्त्वानां परिगणनं संक्षेपेण तेषां स्वभावादि चात्रोपन्यस्यते । अधिका विवेचना तेषां रसोल्लासे विधास्यते ।

अद्यावधि प्रायः सप्ततिः स्थूलतत्त्वानि उपलब्धानि । तानि च धात्वधातुभेदेन द्विधा । तत्र--

अधातवः।

मानम्,	Names	Symbols	नामानि,	चिह्नम्,	गुणाः ।
१.	Hydrogen	H·	हैड्रजन्	ह.	(जलजनकम्) वायुरूपं, लघिष्ठं द्रव्यं, सुखेन ज्वलनीयम् ।
२८.	Fluorine	F.	फ्लुवोरिन्,	फ.	(प्लावकम्) अम्लजनकेन क्षारजकेन वा वायुरूपस्य नास्य योगः । काचोल्लेखनेऽस्योपयोगः ।
३५.	Chlorine	cl.	क्लोरिन्,	क्ल.	(पिङ्गलम्) पूतिगन्धिवायुरूपम्, विषम्, न ज्वलनीयम्, वर्णनाशकम्, जलजनकेन योज्यम् ।

❀ See Roses and Schorlemmen, vol, 1. P. 156.

मानम्	Names.	Symbols.	नामानि	चिह्नम्	गुणाः
७६	Bromine.	Br.	ब्रोमिन्,	ब्र.	(विस्रम्), लवणोदके लभ्यम् जलाकारम्।
१२५.	Iodine.	I.	आइयोडिन्,	ई.	(मलिनवर्णम्) पारदं विहायैकमेवेदं सामान्योष्णे द्रवरूपम्।
१५	Oxygen	O.	अक्सिज्न,	अ.	(अम्लजनकम्) प्रायः सर्वत्र लभ्यम्, प्राणनायावश्यकम्, वायुरूपम्, जलजनकेन योगाज्जलोत्पादकम्।
३१.	Sulphur.	S.	सल्फर-गधकं,	स.	अतिगन्धयुक्तम्, औषधोपयोगि, दीपशलाकाद्युपयोगि च, गंधकाम्लं प्रसिद्धम्।
७८.	Selenium.	Se.	सेलेनियम्,	से.	(चन्द्रकम्) दग्धं सत् नीलज्वालाप्रदम्।
१२४.	Tellurium.	Te.	टेलुरियम्.	टे.	(पार्थिवम्) नीलज्वालम्।
१३.	Nitrogeon.	N.	नाइट्रजन्.	न.	(क्षारजनकम्) प्राणिनां वृक्षादीनाञ्च स्थितयेऽत्यन्तमुपयुक्तम्, वायुरूपम्। वायुमण्डले मुख्यं तत्त्वम्।
३०.	Phosphorus.	P.	फस्फोरस्.	प.	(प्रस्फुरकम्), अस्थिक्षारेभ्यः खनिभ्यश्च लभ्यम, अतिसुज्वलम, दीपशलाकोपयुक्तम्।
७४.	Arsenic.	As.	आर्सेनिक्, शंखिनी	आ.	विषम्, रसायनोपयोगि।
२०.	Boron.	B.	बोरन्,	ब	धातुविद्योपयुक्तम्।
२२.	Carbon.	C.	कार्बन्.	क.	क्षारः हीरकाङ्गारादिषु लभ्यः।
२८.	Silicon.	Sl.	सिलिकन.	सि.	पार्थिवद्रव्येऽम्लजनकात्परतो मुख्योंऽशः।

धातवः ❀

मानम्	Names	Symbols.	नामानि,	चिह्नम्,	गुणाः।
३८.	Potassium.	K.	पोटासियम्.	क.	ग्रावसु समुद्राम्भसि च लभ्यम्।
२२.	Sodium.	Na.	सोडियम्.	ना	त्तालनादावुपयुक्तम्।
६.	Lithium.	Li.	लिथियम्.	लि.	(आश्मकम्) घनद्रव्यं रजतशुभ्रम्।
८४.	Rubidium.	Rb.	रुबिडियम्.	र्ब.	(लोहिनम्) जले द्रुमेषु च लभ्यम्।
१३१.	Cesium.	Cs.	कैसियम्.	क्स.	(आकाशकम्) रजताभम्, सज्वलम्।
३६.	Calcium.	Ca.	काल्सियम्.	का.	(कठिनी) सौधनिर्माणोपयुक्तम्।
८७.	Strontium.	S.	स्ट्रण्टियम्.	स्र.	पीतंद्रव्यं, जलविभाजकम्।
१३६.	Barium,	Ba.	बारियम्.	बा.	श्वेतं लवणाम्भसि लभ्यम्।
८	Beryllium.	Be.	बेरिलियम्.	बे.	श्वेतं सुज्वलम्।
२४.	Magnesium,	Mg	माग्निसियम्.	म्ग.	समुद्राम्भसि लभ्यम्।
६४.	Zinc	Zn.	जिङ्क.	ज्न	श्वेतनीलो धातुः, अस्य ताम्रेण योगादारकूटोद्भवः।
१११.	Cadmium.	Cd	काड्मियम्.	क्ड.	पूतिधूमो धूम्रवर्णो धातुः।
६३.	Copper.	Cu.	कपर्.		(ताम्रम्) सुप्रद्धिम्, पात्राद्युपयुक्तम्।
२०७.	Silver.	Ag.	सिल्वर.		(रजतम्) सुप्रसिद्धम्, मुद्राभूषणादिनिर्माणोपयोगि।
१६८.	Mercury.	Hg.	मर्करी.	ह्ग.	(पारदः) सुप्रसिद्धो धातुः।

[मित्रगोष्ठी-पत्रिका, काशी; १८२६ शकाब्दाः, आषाढः; प्रथमे वर्षे तृतीया संख्या]

❀धातुषु विद्युत उष्णतायाश्चप्रचारो यथा सुखेन भवति न तथा द्रव्यरेयान्त। (अधिकमग्रे)

अणुमानम्,	Name	Symbols	नामानि,	चिह्नानि,	गुणः ।
९५.	Molybdenum.	Mo.	मोलिब्डिनम्,	मो.	(त्रपुकम्)नातिकठिनम् ।
१८२	Tungsten.	W.	टङ्गस्टेन	व.	(गुरुदृषत्) धूम्रभासुरम् ।
२३७.	Uranium.	U	यूरनियम्	उ	श्वेतं घृष्टभासुरम्,दुर्लभम् ।
	Tin	Sn.	टिन्	स्न	त्रपुणः कठिनतरं सुवर्णान्मृदुतरं भासुरं ताम्रादिप्रलेपनोपयुक्तम् ।
४७.	Titanium.	Ti.	टिटेनियम्	टि.	दुर्लभमल्पोपयोगम् ।
९०.	Zirconium.	Zr	जर्कोनियम्	ज्र.	कठिनं काचपद्मरागादिविलेखकम् ।
२३०	Thorium	Th.	थोरियम्	थ.	वायौ सुज्वलम् क्षारे द्राव्यम् ।
५०.	Vanadium.	V.	वानेडियम्	व.	पृथिव्यां सूर्यमण्डले च लभ्यम् ।
२१६.	Antimony	Sb.	आण्टिमनो	स्ब.	रजतशुभ्रम्, सुपेषम्, अतिभङ्गुरम् ।
७१.	Germanium.	Ge	जर्मेनियम्.	जी.	भङ्गुरम् धूम्रम् ।
२०७.	Bismuth	Bi.	बिस्मथ्	बि.	कठिनभङ्गुरम्, धूम्रम् ।
१८१.	Tantalum.	Ta.	टांटलम्	टा.	अल्पोपयोगौ धातू ।
९३	Noibium.	Nb.	नियोबियम्	न्ब.	
१९५.	Gold	An.	सुवर्णम्	औ	सुप्रसिद्धम् ।
१९३.	Platinum.	Pt.	प्लैटिनम्	प्ट.	(रजतकम्) अत्युष्णसहत्वाद्रसकार्येष्वत्यन्तमुपयुक्तम् ।
२०५.	Palladium.	Pd.	पालाडियम्.	प्ड.	रजतशुभ्रम्, अत्युष्णे क्षाराम्ले द्राव्यम् ।
२०२.	Rhodium.	Rh	रोडियम	ई.	(पाटलम्) अम्लसहम् ।
१९१.	Iridium.	Ir	इरिडियम्	इर्.	लेखन्यग्रसंस्कारोपयुक्तम् ।
२०१.	Ruthenium	Ru.	रुथेनियम्	रु.	(रुषकम) कठिनभङ्गुरम् ।
१८६.	Osmium,	Os.	अस्मियम्	अस्.	(दुर्गन्धम्) अम्लादिसहत्वाद्दिग्यन्त्रादिनिर्माणोपयोगि ।

अणुमानम	Name.	Symbols.	नामानि,	चिह्नानि,	गुणाः
३५,	Argon.		आर्गन् (अलसम्)		अचिरोपलब्धम्, वायो लभ्यम् ।
३.	Helium		हिलियम् (सौरम्)		उल्कापाषाणादौ लभ्यम् ।
२०४.	Lead.	Pb	(त्रपु)	प्ब.	सुप्रसिद्धम्, मृदु ।
२०२.	Thallium.	Tl	थालियम्	ह.	श्वेतनीलम् ।
८८.	Yttrium.	Y.	यिट्रियम्	य.	धूम्रवर्णम् ।
१३६.	Cerium.	Ce.	सिरियम्	सी.	अल्पोपयोगम् छुरिकादि घर्षणात्स्फुलिङ्गजनकम् ।
२३७.	Lanthanum.	La.	लान्थेनम्	ला.	लोहवर्णम् भङ्गुरम् ।
	Didymium	Di.	डिडिमियम्	डि.	पीतम् वायौ मलिनम् ।
१६२.	Terlium.	Tr.			
१६५.	Erbium.	En.			
१५५.	Gadolinium.	Gd.			अल्पोपयोगाः ।
१७२.	Ytterbium.	Yb			
१४६.	Somarium,	Sm.			
१६०.	Decipium.	Dp.			
२६.	Aluminium.	Al.	आलुमिनियम्.	आलू.	श्वेतम् सुनादम् ।
४३	Scandium	Sc.	स्काण्डियम्.	स्क.	अल्पोपयोगम् ।
११२.	Indium.	In.	इण्डियम्.	इन्.	त्रपुणोपि मृदुतरम्, श्वेतच्छेद्यम् ।
५४.	Manganese	Mn.	मंगनीज	म्न.	श्वेतरक्तं कठिन-भङ्गुरम् ।
५५	Iron	Te.	(लोहम्)		सुप्रसिद्धम् शस्त्राद्युपयुक्तम् ।
५८.	Cobalt.	Co.	कोबाल्ट.	को.	लोहात्कठिनतरम् अम्लजनके क्षीयते जलजनकं शोषयति ।
५८.	Nickel.	Ni.	निकेल.	न्ल.	उल्कालोहे मिश्रितं, सूर्यवायौ लभ्यम् कठिनं भासरं चुम्बकेन आकर्षणीयम् ।
५१.	Chromium.	Cr.	क्रोमियम्.	क, (वर्णकम्)	काचात्कठिनतरम् ।

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका'; काशी, १८२६ शकाब्दाः, श्रावणः, प्रथमवर्षे चतुर्थ संख्या]

रसोल्लासः

वायुचतुष्टयम्

तत्त्वैर्मिथो विभिन्नैः कतिपयसंख्यैर्जगद्विचित्रमिदम् ।
जनितं ययातिरुचिरं चिरमेका जयति सा शक्तिः ॥

सामान्यतो द्रव्यं द्विविधं शुद्धं मिश्रं च। यस्य विभागो नाद्यापि रसज्ञैः कर्त्तुं पारितः तच्छुद्धम्, यत्तु द्रव्यान्तरेषु विभक्तुं शक्यते तन्मिश्रम्। शुद्धानि द्रव्याणि तत्त्वाख्यानि परिसंख्यातानि तत्त्वोल्लासे। मिश्राणां तु संख्यानियमो नास्ति। शुद्ध द्रव्ययोगान्मिश्रद्रव्योद्भवः। तत्र योगो द्विविधः। बाह्य आन्तरश्च। बाह्ययोगे गुणेषु न परिवृत्तिः, मानस्य च नियमो नास्ति। यथा यावता जलेन यवती शर्करा मिश्रयितुमिष्यते, तावतो जलस्य तावत्या शर्करया सह मिश्रणं संभाव्यते। तयोर्मिश्रयोश्चान्तरगुणेषु न परिवृत्तिः। आन्तरयोगे तु महती गुणपरिवृत्तिः, नियतं च मानम्। वायुरूपस्याम्लजनकस्य तादृशेनैव जलजनकेन सह योगे द्रवरूपस्य जलस्योत्पत्तिः। मानं चात्र नियतम्, जले एकगुणं चेज्जलजनकम्, तस्मादष्टगुणप्रायस्याम्लजनकस्योपलम्भात्। एतच्च जलम् = 'ह२ओ' संकेतेन प्रकाश्यते। 'ह' शब्देन जलजनकं, तच्च द्व्यङ्कदानाद् द्विमितं गृह्यते, 'ओ' शब्देन अम्लजनकं, तच्च १६ मितं गृह्यते, तस्याणुमानं हि षोडशमितं प्रदर्शितं तत्त्वसूच्याम्। एवं संख्यां विना दत्तैश्चिह्नैः केवलमणुमानं गृह्यते, संख्याप्रदाने तु तद्गुणितमणुमानमिति सर्वत्रानुसन्धेयम्। यथा क्षारजनकं 'न' शब्दवाच्यम्, तस्याणुमानं च १४, अतः 'न' शब्देन चतुर्दशमितं, 'न'२ शब्देन अष्टाविंशतिमितं, 'न३' शब्देन ४२ मितं क्षारं ग्राह्यम्।

तथा चाष्टादशमिते जले द्वौ भागौ जलजनकस्य, षोडश चाम्लजनकस्येत्युक्तम्। यदि तु कस्यचिद्द्रव्यस्याधिको भागः स्यात्तस्य योग एव न भवति, यथा षोडशस्थाने विंशतिर्भागाश्चेदम्लजनकस्य द्वाभ्यां जलजनकभागाभ्यां सहावस्थाप्येरन्, षोडशभागानां जलरूपेण परिणामो जायते, भागचतुष्टयं तु पृथगवशिष्यते। अयमेव द्रव्यस्वभावनियतो माननियतश्च योग आन्तरयोग उच्यते। रसशास्त्रं चेदृशमेव योगमधिकृत्य प्रवर्त्तते न तु बाह्ययोगम्।

शुद्धतत्त्वानि च प्रायशः सर्वाण्येव त्रिरूपाणि तरलद्रवघनरूपत्वात्। वायुरू-

पाणि तरलानि, जलसदृशानि द्रवाणि, कठिनानि च घनानि। यथा एकमेव जलमुष्णतादियोगवियोगाभ्यां कदाचिद्बाष्पीभूय वायुरूपं कदाचित्साधारणजलरूपं, कदाचिच्च घनहिमरूपमुपलभ्यते।

एवं च यद्यपि सर्वाणि द्रव्याणि त्रिविधानि संभवन्ति तथापि, येषां यादृशं रूपं प्राय उपलब्धं तन्नाम्नैव तस्य व्यवहारस्तथा च अम्लजनक-क्षार-जनक-जलजनक पिङ्गलकानां प्रायो वायुरूपत्वमेवेति तेषां वायुचतुष्टयशब्देन व्यवहारः।

अम्लजनकम्

तत्राम्लजनकं प्राणनायावश्यकमग्निधारकं च। तद्रहिते हि वायौ न कश्चित्प्राणितुं शक्नोति। अग्निज्वाला च सद्यो निर्वाति। शुद्धाम्लजनकपूरिते पात्रे निर्ज्वालोऽपि स्फुलिङ्गः स्वयं सद्यः प्रज्वलति। धातवोऽपि शुष्केन्धनवज्ज्वलन्ति। आर्द्रमपि प्रस्फुरकमम्लजनकसबंधमात्रेण सद्यो ज्वलति। अत एवास्य प्राणवायुराग्नेयवायुश्चेति पर्यायान्तरद्वयम्। अय च वायुर्निर्वर्णो निःस्वादो निर्गन्धश्च।

क्षारजनकम्।

क्षारजनकमपि वर्णस्वादगन्धैर्हीनम्। किन्तु ज्वलन्नपि वह्निः शुद्धेऽस्मिन्निमज्जितः सद्यो निर्वाति। भूवायौ चत्वारो भागाः क्षारजनकस्य, एकश्चाम्लजनकस्य, अत एवात्र वयं सुखेन प्राणिमः। सुखं चाग्निरत्र ज्वलति। यदि हि वायुः क्षारजनकैकमयोऽभविष्यन्नात्रजन्तोः प्राणनमग्नेर्वा स्थितिरभविष्यत्। यदि तु केवलमम्लजनकमयोऽयं वायुरभविष्यत्तथापि प्राणनं प्रज्वलनं च तादृक्त्वरान्वितमभविष्यद्येन धगिति क्षणेन सकला प्राणिनां प्राणनशक्तिरग्नेश्च ज्वलनशक्तिः परिक्षीणाऽभविष्यत्। मिलितेन तु तद्द्वयन नातिशीघ्रं न वा सर्वथा असंभाव्यं प्राणनं प्रज्वलनं वेति न कश्चिदुपद्रवः।

जलजनकम्।

जलजनकमपि वर्णस्वादगन्धैर्हीनम्। अत्र च ज्वलन्ती सिक्थकवर्त्तिका मज्जिता निर्वाति, किन्तु स्वय जलजनकमेव ईषन्नीलया ज्वालया प्रज्वलति। जलजनकं लघुतमं द्रव्यं जगति। अत एव तत्पूर्णो विमानः पक्षिमार्गमप्यतीत्य विहायसि सुखेन संचरति। जले चास्यैको भागः, अष्टौ चाम्लजनकस्येति प्रागेवोक्तम्।

पिङ्गलकम्।

पीतहरितवर्णत्वादिदं पिङ्गलकमुच्यते। अस्य गन्धः अतीवोत्कटः। स्वादोऽपि सुदुःसहः। प्रस्फुरकादयः पदार्था स्वयमत्र ज्वलन्ति। अनेन च वस्त्रादेर्वर्णः सद्यो विलुप्यत इति क्षालनेऽस्य महानुपयोगः। गन्धान्तरनाशकत्वादौषधालयादिषु चेदं वायुशोधनायोपयुज्यते।

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका'; काशी; शकाब्दाः १८२६, माघः, प्रथमवर्षे पञ्चमसंख्या]

एवं वायुचतुष्टयस्वभावादिवर्णनेन रसप्रक्रियां किंचिद्दर्शयित्वा साम्प्रतमवशिष्ट-तत्त्वानां केषांचित्कलास्वत्यन्तमुपयुक्ततया क्रमानुरोधेनैव सुबोधं वर्णनमत्रोपन्यस्यते।

कार्बन् (क० = १२)। अनेकानि रूपाण्यस्य द्रव्यस्य, अङ्गारे कृष्णोऽस्य वर्णः हीरकेऽत्यन्तमुज्ज्वलः। यद्यपि हीरकं कठिनतमं द्रव्यं जगति, सामान्याग्निना च न दग्धुं शक्यते। तथापि प्रबलस्य गल्वनाह्वयवैद्युतयन्त्रस्य*तन्त्र्योरङ्गारयुक्तान्तयोर्मध्ये स्थापितं निर्वायुके पत्रे च दग्धमेतत्क्षणेन कृष्णाङ्गारवर्णं संपद्यते। उत्तमानि हीरकाणि भारते गोलकन्दप्रदेशे सिद्धपुरे ब्रेजिलप्रदेशे च लभ्यन्ते। सामान्यकार्बन्द्रव्यं चेद-त्यन्तं तप्ते द्रुते अयसि द्रावयेत तदयश्च शीघ्रं द्रुतत्रपुणि निधाय शीतलं विधीयेत कृत्रि-माणि हीरकाणि अयसोऽन्तरुत्पद्यन्ते तानि च अम्लेषु अयसि द्राविते सुलभानि किंतु न कृत्रिमाणि हीरकाणि सौन्दर्ये काठिन्ये वा स्वाभाविकहीरकतुलामर्हन्ति। इयं क्रिया द्वित्राणि यन्त्राण्यपेक्षते दुष्करा चेति रसज्ञानां साहाय्यं विना न कर्तुं शक्यते। कार्बन्द्रव्यस्य हीरकं विहाय कृष्णप्राणि ग्रेफाइट नाम्न्यपि शुद्धावस्थायामुपलम्भः।

फास्फोरस् (प = ३०)—प्रस्फुरकापराख्यमिदं द्रव्यं शुद्धं चेद्वायुस्पर्शेन सद्यो ज्वलतीति शुद्धस्यास्य न क्वचिदुपलम्भः। अम्लजनकेन खटिकया च मिश्रितमिदं प्राय स्थले, जले (समुद्रे, नदीषु च), जन्तूनां पेशीषु मज्जासु चोपलभ्यते। उल्कापाषाणे-ष्वपि प्रस्फुरकस्योपलम्भाद्भुवनान्तरेष्वपि तस्य स्थितिरनुमीयते। प्रस्फुरकं सिक्थकवर्णं प्रायश्छुरिकया छेद्यं च। द्रवावस्थायां घनावस्थायां वा नेदं विद्युत्प्रचारयोग्यम्। जले प्रायो नेदं मिश्रीभवति केषुचित्तैलेष्वम्लेषु वा सुखेन मिश्रीभवति। रसप्रक्रियासु प्रज्व-लनं परिहर्तुमिदं जले स्थाप्यते। अन्यथा वायुसंपर्कात्सद्यो द्रवीभूय प्रज्वलति। प्रस्फुरकं प्राणिभिर्भुक्तं मुहूर्तेनैव मृत्युप्रदं भवति।

अग्नेरुत्पादनाय प्राचीनानां बहव उपाया विदिता अभूवन्। साम्प्रतमपि विशेषविधिषु याज्ञिकैः कैश्चिद्वन्यैश्च तैरेवोपायैरग्निरुत्पाद्यते। तत्र केचित्कठिनकाष्ठ-खण्डं कस्मिंश्चिन्मृदुकाष्ठे त्वरितत्वरितं घर्षन्ति तेन च वह्निरुद्भवति। केचित्पाषाणमयीं लोहमयीं वा स्थूलशलाकां छिद्रिते पाषाणे मन्थनदण्डवद् भ्रमयन्ति तेन वह्निरुत्पद्यते। अपरे लौहेन पाषाणं ताडयन्ति तस्माद्वह्निस्फुलिङ्गे निःसृते च सद्यः शुष्ककाष्ठं वा सूत्रं वा प्रज्वलयन्ति। गतशतकस्य प्रथमचतुर्थांशपर्यन्तं (१८२६) लोहताडितात्पाषाणान्निः-सृतेन स्फुलिङ्गेन सह गन्धकावृतान्तस्य शण-कडङ्गरस्य सबन्धेन वह्नेरुत्पादनं प्रचरि-

---

* अस्य वर्णनं यन्त्रोल्लासे करिष्यते।

तमासीत्। अन्ततो नानाविधानां घर्षणशलाकिकानामाविष्कारोऽभूत् तासां मध्ये सर्वोत्तमाः शलाकिकाः निम्नलिखितेन द्रव्ययोजनेन निर्मीयन्ते।

द्रव्याणि	अंशाः
१ पोटास्सियम् क्लोरेट्	३२
२ पोटास्सियम् बाइक्रोमेट्	१२
३ रक्तसीसकम्	३२
४ एण्टिमनी सल्फाइड्	२४

अस्मिन्योजने प्रस्फुरकाभावात् प्रस्फुरके एण्टिमनीसल्फाइड्युक्ते घर्षणं विना प्रज्वलनं न संभवतीति निर्भयशलाकिकानां निर्माणमनेन योजनेन जायते।

[मित्रगोष्ठी-पत्रिका, काशी, १८२६, शकाब्दाः, आश्विनः, प्रथमे वर्षे षष्ठसंख्या]

लौहम् (फो-८८) अस्य धातोः सर्वातिशायिनी उपयोगिता सर्वत्र प्रसिद्धा। अस्य प्रायः अम्लजनकेन गन्धकेन वा मिश्रितस्य सर्वोपलम्भः। अस्य न केवलं पृथ्वीस्तरेषु किन्तु प्राणिनां रुधिरेऽपि स्थितिः। एवं वृक्षेष्वपि तस्य स्थितिर्दग्धेषु हि वनस्पतिषु क्षारे मिश्रितस्य तस्योपलम्भात्। प्राणिनां रुधिरे लौहस्य स्थितिरत्युपयोगिनी। यदा तु व्याध्यादिवशाद्रुधिरे शक्तिर्हीयते तदा मण्डूरादीनां लौहघटितभेषजानां प्रयोगेण पुनः शक्तिर्वर्धते इति बहूनां विदितमेव। लौहस्य उल्कापाषाणराशिष्वपि स्थितिरुपलभ्यत इति तारकादिगोलेष्वपि तस्य स्थितिरनुमीयते।

मिश्रलौहे पृथिव्या उपलब्धे द्रावणादिना संशोध्य मिश्रितमम्लजनकादिकं पृथक्कृत्य धातुरयं शस्त्रनिर्माणादिकार्येषु विनियुज्यते।

भङ्गुरमभङ्गुरं कठिनं चेति क्रमशः शुद्धतरं त्रिविधं लौहं भवति। तत्र गन्धकक्षाराद्यंशबहुलं भङ्गुरं लौहं जलनलिकादिनिर्माणे कटादिनिर्माणे च तस्योपयोगः। इदं द्राव्यते न तु घनेन ताड्यते भङ्गभयात्। अभङ्गुरलौहस्य घनताडनैराकारपरिवृत्तिः कर्त्तुं शक्यते द्रावणं तु न तथा सुकरम्। अभङ्गुरलौहस्योपयोगो भारतीयेषु विदित आसीत्। अद्भुतानि वस्तूनि भारते प्राचीनैरस्माद्धातोर्निर्मितान्यद्यापि तिष्ठन्ति। दिल्लीपत्तनाददूरे षष्टिहस्तोच्छ्रितो विशालोऽभङ्गुरलौहमयः स्तम्भोऽस्ति यच्छिखरे प्राचीनः कश्चित् संस्कृतलेखोऽपि वर्त्तते। अयं लेखः ख्रीष्टचतुर्थशतके लिखित इति यूरोपीयाणां सिद्धान्तः। न सुकरमीदृशस्य स्तम्भस्य निर्माणं विचित्रयन्त्रसहायैरपि यूरोपीयैरिति साधु चित्रीयते तेषां चेतः कथमिदं स्तम्भप्रकाण्डं विनिर्मितं प्राचीनभारतीयैरिति। रक्ततप्तं लौहं चेदकस्माच्छीतलीक्रियेत तदात्यन्तं कठिनं जायते नमितं च पुनरुत्पत्य पूर्वाकारं भजते। शस्त्रादिनिर्माणे ईदृशस्य लौहस्य महानुपयोगः।

"भल्लीनामिव पानकर्म कुरुते"

---

* "आदावञ्जनपुञ्जलिप्तवपुषां श्वासानिलोल्लासित—
प्रोत्सर्पद्विरहानलेन च पुनः सन्तापितानां दृशाम्।
संप्रत्येव निषेकमश्रुपयसा देवस्य चेतोभुवो
भल्लीनामिव पानकर्म कुरुते कामं कुरङ्गेक्षणा॥"

अञ्जनलिप्तेत्युक्तेः कश्चिल्लेपोऽपि लौहशोधनार्थमदीयतेति भाति।

इति काव्यप्रकाशोद्धृते प्राचीनश्लोके रक्ततप्तस्य लौहस्य जले शीतलीकरणेन कठिनीकरणमुक्तम्। अतो यथा भारतीयानां लौहस्याभङ्गुरीकरणं विदितमासीत्तथैव कठिनीकरणमपि विदितमासीदित्यनुमीयते। पृथिव्यामुपलब्धमकृत्रिमलौहं कदाचिद् द्रव्यान्तरमिश्रितं चुम्बकगुणान्वहति तत्संस्पृष्टं लौहान्तरमपि तादृशगुणं जायते।

रजतम् (अग् १०७) अयं बहुमूल्यो धातुर्मुद्राभूषणादिनिर्माणे अत्यन्तमुपयुक्तः प्रायः सर्वेषु देशेषूपलभ्यते। अमेरिकाप्रदेशेषु त्वधिकतरमस्योपलम्भः।

नान्यः कोऽपि धातुरीदृशीमुपसंक्रमणशक्ति विद्युत्संक्रमणशक्ति वा वहति। अयं धातुरत्यन्तभङ्गुरः तेन च अतिसूक्ष्मास्तन्त्र्यः अतिलघूनि च पत्राण्यस्मान्निर्मातुं शक्यन्ते। ताम्रादिनिर्मितानि वस्तूनि रजतद्रवसंबंधाद्रजतनिभानि बहिर्भान्तीति कलायामस्य धातोर्महानुपयोगः। पिङ्गलकमिश्रिते रजते सूर्यालोकेन कृष्णत्वमुत्पद्यत इति पाश्चात्यानां चिराद्विदितमासीत्। इममेव परिवर्त्तमाश्रित्य चित्रग्रहणसम्प्रदायः साम्प्रतिकपाश्चात्त्यैराविष्कृत इति शिल्पोल्लासे विस्तरेण वर्णयिष्यते। चित्रग्रहणयन्त्रस्य स्वरूपवर्णनमुपयोगप्रकारश्च यन्त्रोल्लासे वक्ष्यते।

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका', काशी, १८२६ शकाब्दाः, कार्तिकः, प्रथमवर्षे सप्तमसंख्या]

यन्त्रोल्लासः※

सिद्धिभिरपि दुस्साधं काव्योत्प्रेक्षाभिरपि दुरुत्प्रेक्षम् ।
यन्त्रैः कृतमनियन्त्रणमखिलप्राप्यं बुधैरधुना ॥

मनःशक्तेर्योगादिना संस्कारं विधाय प्राचीनैर्दूरस्थानां वस्तूनां परीक्षादिकं व्यधीयत । किन्तु योगशक्त्यादिभिरेकस्य पुरुषस्योपयोगेपि विश्वजनीनस्तदुपयोगो नाभूत् । किञ्च सुदुष्करास्ते योगा बहुविघ्नाः कैश्चिदेव चालौकिकशक्तिशालिभिः साध्या इति तेषां प्रायो लौकिककार्येष्वनुपयोग एवासीत् । केवलं पारलौकिक एव तेषामुपयोगः सम्भवति स्म । साम्प्रतिकैर्निर्मितानि सुलभानि लौकिकशक्तिमात्रापेक्षाणि यन्त्राणि तु न केवलं निर्मातुरेव, किन्तु सर्वस्यापि जगत उपयोगीनीति तेषां संग्रहः सर्वेषामावश्यकः सर्वैः सुकरश्चेति केषांचिदद्भुतानामत्यावश्यकानां च यन्त्राणां विवरणमत्रोपन्यस्यते ।

तत्र प्रथमं नातिचिराविष्कृतानां वैद्युतकिरणानुस्वानलेखककिरणपरीक्षकाणां (X Rays, phonograph and spectroscope) वर्णनमत्र विधीयते ।

१ वैद्युतकिरणाः—शर्मण्यदेशे उर्जवगप्रान्ते वसता रान्टजन (Rontgen) महाशयेन प्रथममेतेषामद्भुतशक्तिकानां किरणानां स्थितिर्निश्चिता ।

यदि विद्युद्यन्त्रात्तन्त्रीद्वयमुखेन वायुशून्ये कृष्णपत्राच्छन्ने स्तम्भनिबद्धे नलके वैद्युतकिरणाः प्रवेश्येरंस्तदा अदृश्यमाना अपि तादृशाः किरणाः उद्भवन्ति यैः किरणसंमुखं न्यस्तं वस्तु भासुरं सत्स्वाभ्यन्तरदशां भूयिष्ठं प्रकाशयति । एषां किरणानां गुणाश्च साधारणकिरणानां गुणेभ्यः सर्वथा भिन्नाः । काष्ठचर्मपत्रादिकानि कतिचिद्वस्तूनि किरणैरेतैः सुवेधानि । अस्थिसीसकादीनि तु सर्वथातमोमयानि । अत एव जन्तूनामङ्गेषु किरणैरेतैर्दृष्टेषु चर्म प्रविध्य दृष्टिरस्थि प्रपतति । एषां किरणानां तादृशी शक्तिर्येन पत्रसहस्राच्छन्नमपि वस्तु सुखेन चित्रलेखकद्वारा चित्रितं भवति । किञ्च सूर्यकिरणाः काचादिभासुरपदार्थेष्वपि स्तररूपेष्वेव प्रविशन्ति न तु चूर्णरूपेषु । एते वैद्युतकिरणास्तु चूर्णकणेषु तथैव सुखेन विशन्ति यथा स्तरचयेष्विति महानेषां सामान्यकिरणेभ्यो व्यतिरेकः ।

※ विद्युदुत्पादकयन्त्राणां वर्णनमग्रे विधास्यते ।

दूरलेखकयन्त्रे (Telegraph) एकस्मिन्नन्ते स्थितेन वैद्युतयन्त्रेण स्वसम्बद्धतन्त्रीद्वारा वैद्युतधारायां प्रेषितायां परस्मिन्नन्ते स्थिता तन्त्रीमण्डलवृता अयस्कान्तसूची सद्य इतस्ततः परिवर्त्तते। तत्परिवृत्तिसंकेतेन च वर्णमालां निर्माय सर्वः संवादव्यवहारः पृथ्वीमण्डलस्य पूर्वापरयोरन्तयोर्मध्ये प्रवर्त्तते। प्रायो वङ्गप्रदेशात् प्रहितो वैद्युतसंवादः सद्य एव अमेरिकाप्रदेशं गच्छति, देशान्तरकृतसमयभेदाच्च सायं कलिकातानगरात्प्रहितः संवादस्तस्यैव दिनस्य मध्याह्न एव लन्दननगरं गच्छति। महान्तः सागरा अपि साम्प्रतं तन्त्रीभिरायोजितजलाः सन्ति, येन पूर्वापरतटयोर्योजनसहस्रान्तरितयोरपि सुखेन सद्यो वैद्युतसंवादः प्रवर्त्तते। समुद्रे च केवलास्तन्त्र्यस्तरङ्गादिभिर्भज्येरन्निति प्रायस्ताः पञ्चसप्तमिताः वैद्युतप्रवाहनिरोधकैर्द्रव्यैर्वेष्टिताः, परतश्च शणलौहादिसंवृताः स्थाप्यन्ते।

एवं वैद्युतकिरणैः कथं बहून्यभासुराणि वस्तूनि भासुरीक्रियन्ते इति स्फुटीकृतमेव पूर्वमस्माभिः। अन्योऽपि प्रकाशने विद्युत उपयोगः। प्राचीनसमयेषु तैलादिस्नेहान् विना दीपादिप्रज्वलनमसम्भावितमासीत्। अधुना तु वायुप्रकाशो विद्युत्प्रकाशश्चेति द्वावपरावद्भुतौ प्रकाशप्रकारौ प्रचरितौ। तत्र वायुप्रकाशः प्रकरणान्तरे वक्ष्यते। अत्र तु विद्युतः प्रकृततया तदीयप्रकाशस्यैव किंचिद्वर्णनं प्रस्तूयते।

वैद्युतः प्रकाशो द्विविधो, भासुरः श्वेतश्च। तत्र भासुरप्रकाशलाभाय श्वेताङ्गार(Carbon rods) शलाकिकयोः किञ्चित्पृथक्स्थयोर्वैद्युतधारया वह्निरुत्पाद्यते। अङ्गारबाष्पे नितरां तप्ते च प्राय. सूर्यप्रकाशप्रतिभः प्रकाशः समुद्भवति। श्वेताङ्गारस्य सूक्ष्मसूत्रेषु निर्वायुक*काचपात्रस्थितेषु तन्त्रीभिः काचपात्रमुद्रिताभिर्योजितेषु वैद्युतधाराप्रेषणेन श्वेतः प्रकाश उत्पद्यते। अस्य प्रकाशसौन्दर्य न वर्णयितुं शक्यते, केवलं चक्षुर्विषयीकरणादेवानुभूयते।

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका,' काशी; १८२६ शकाब्दाः, पौषः, प्रथमे वर्षे नवमसंख्या]

विद्युतः कार्यजातं किञ्चिद्वर्णितं, संप्रति तद्विषयेऽन्यत्किञ्चित्प्रस्तूयते। विद्युन्नाम द्रव्याणां शक्तिविशेषः। उत्पादनविनाशादिशीला चेयं शक्तिः लाक्षायष्टौ वस्त्रे घृष्टायां पत्रतूलादिखण्डानामाकर्षणक्षमा शक्तिः समुद्भवति। सेयं शक्तिर्विद्युन्नाम्ना व्यपदिश्यते। इयं च शक्तिर्द्विविधा—एका आकर्षणात्मिका, अपरा प्रणोदनात्मिका। एकमेव

* वायुरिक्तीकरणप्रक्रिया वक्ष्यते।

द्रव्यं घर्षणद्रव्यभेदेन कदाचित्प्रथमां कदाचिच्च द्वितीयां शक्तिं प्रदर्शयति। एकविधशक्तियुतं द्रव्यद्वयमितरेतरप्रणोदनक्षमं भिन्नशक्तियुत तु परस्पराकर्षणाय प्रजायत इति बोध्यम्। काचं कौशेयघृष्टं प्रथमशक्तियुतं जायते। लाक्षा च ऊर्णाघृष्टा द्वितीयशक्तिमतीति संकेतः। ततश्च कौशेयघृष्टकाचप्रणोद्यानि द्रव्यानि प्रथमशक्तिमन्ति। ऊर्णाघृष्टलाक्षाप्रणोद्यानि तु द्वितीयशक्तिमन्तीति निष्कर्षः। प्रायः सर्वेषु द्रव्येषु वैद्युतशक्तेराविर्भावः संभाव्यते। किन्तु कानिचिद् द्रव्याणि संग्राहकाणि कानिचित्तु संक्रामकाणि। सन्निकर्षे द्रव्येषूत्पन्नापि विद्युत्सद्यः संक्रामकैरपहृता न परीक्षचैर्लक्ष्यते। द्रव्यान्तरे संग्राहकेण संक्रामकाद्रक्षिते तु सैव तत्र स्फुटं लक्ष्यत इति भेद। तद्यथा लाक्षायष्टिर्विद्युतः संग्राहिका मनुष्याणां हस्तश्च संक्रामकः। ततश्च आरकूटखण्डे हस्तसंबद्धे ऊर्णायां घृष्टेऽपि न विद्युल्लक्ष्यते। हस्ते हि समुत्पन्नापि विद्युत्संक्रान्ता भवति न चेद्देशेनारकूटखण्डेन द्रव्यान्तरमाकृष्यते। तदेवारकूटखण्डं हस्तेन साक्षादस्पृष्टं स्वसम्बद्धलाक्षायष्टिद्वारा गृहीतं तु ऊर्णायां घृष्टं विद्युद्गुणान्दर्शयति। अन्यस्यां सविद्युति लाक्षायष्टौ च सन्निकर्षे प्रापितायां सा तेनारकूटखण्डेन प्रणोद्यते। द्वितीया हि शक्तिरारकूटखण्डे समुद्भूता तत्संबद्धलाक्षायष्टिनिरुद्धा स्वकार्यक्षमा चिराय तिष्ठति। द्रव्याणि च कानिचित् संक्रामकाणि, धातवः, शरीरम्, जलम्, काष्ठाङ्गारः इत्यादि।

कानिचिदीषत्संक्रामकाणि, पत्रम्, तूलम्, काष्ठम्, दृषदित्यादि। इतराणि च संग्राहकाणि, काचम्, लाक्षा, कौशेयम्, गन्धकम्, ऊर्णा, तैलमित्यादि। जलस्योपरि संक्रामत्वं दर्शितमिति सर्वाणि द्रव्याणि वैद्युतयन्त्रोपयुक्तानि शुष्काण्येव प्रशस्यतराणि।

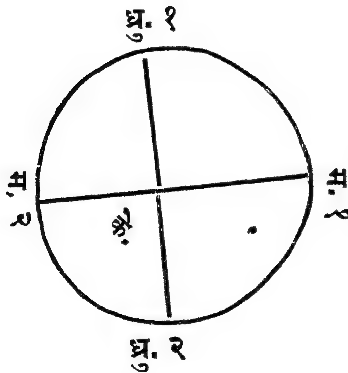
विद्युदुद्भवे च घृष्टे वस्तुद्वये सममेव समानपरिमाणा द्वितयो शक्तिरुद्भवति। काचमूर्णायां घृष्यते तदनन्तरे च पत्रखण्डसविधे स्थाप्यते चेत्केवला घृष्टोर्णा पत्रमाकर्षति। केवलं च काच विद्युत्सहितवस्तुनो विद्युद्रहितवस्त्वाकर्षणक्षमत्वात् काचोर्णे समं स्थापिते तु न किञ्चिदाकर्षतः। परस्परभिन्नशक्तिद्वयविशिष्टत्वात् परस्परशक्तिप्रतिरोधात्। अत्र काचे द्वितीया, ऊर्णायाञ्च प्रथमा शक्तिरुद्भवति ततश्च प्रथमशक्तिमत्कौशेयघृष्टं काचमनया प्रणोद्यते।

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका', काशी; १८२६ शकाब्दाः, फाल्गुनः, प्रथमे वर्षे एकादशसंख्या]

गुणोल्लासः

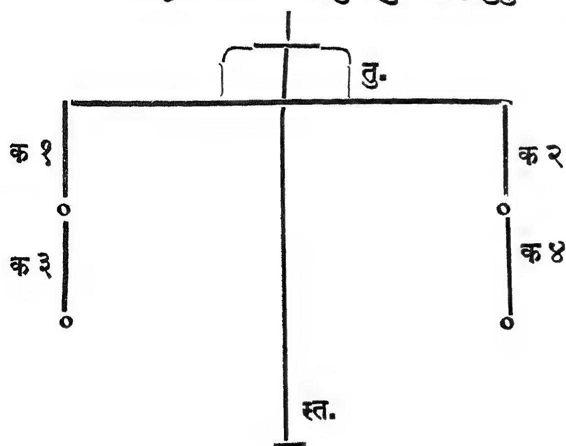
गुरुत्वाकर्षणस्थितिस्थापकताकैशिकाकर्षणसंकोचप्रसारप्रस्रवणाद्या अनेके द्रव्यधर्मास्तत्तद्द्रव्येषु चाल्पत्वबाहुल्यादिभेदभिन्नास्तत्तदवस्थासूपलभ्यन्ते। ते च द्रव्यसामान्यगुणा इति व्यवह्रियन्ते। रूपरसगन्धाद्यास्तु द्रव्यविशेषगुणत्वेन व्यपदिश्यन्ते।

तत्र प्रतिबन्धकाभावे पृथिवी सर्वमेव वस्तुजातं स्वकेन्द्रं प्रत्याकर्षति। इदं चाकर्षणं केन्द्रसान्निध्यापेक्षमाकर्षणीयवस्तुराश्यपेक्षं चेति तदेव वस्तु भूमध्यरेखासमीपे यावद्गुरुत्वं दर्शयति ततोऽधिकतरं ध्रुवसंनिहितप्रदेशेषु। पृथिव्या आकारो हि वर्त्तुलप्रायः, भूमध्यरेखाया मध्यान्मध्यं यावद्यो व्यासस्तस्य दैर्घ्यं ध्रुवद्वयावधिकव्यासापेक्षयाऽधिकतरं सूर्यमभितो गतिवेगवशाद्ध्रुवप्रदेशयोः पृथिव्या निम्नत्वात्।



'म१-म२' इत्यस्य 'ध्रु१-ध्रु२' इत्येतद्व्यासापेक्षया दीर्घतरत्वात्तदर्द्धस्य 'केम१' इत्यस्यापि 'केध्रु१' इत्येतदपेक्षया दीर्घतरत्वात् 'म'-स्थाने स्थिताद्वस्तुनः 'ध्रु१' स्थाने स्थितस्य 'के' नामकात्केन्द्रात्संनिकृष्टतरत्वम्। अतएव मध्यरेखासंनिहितप्रदेशापेक्षया ध्रुवसंनिहितप्रदेशेषु तुलितानां वस्तूनां गुरुत्वमधिकमुपलभ्यते। पृथिवीकेन्द्रापेक्षया संनिकर्षाधिक्ये वस्तुनो गुरुत्वमधिकं भवतीत्यत्र स्पष्टं प्रमाणं तु वक्ष्यमाणोदाहरणेन स्फुटं भविष्यति। 'तु' नामके तुलादण्डे अत्युच्छ्रिते 'स्त' नामके स्तम्भे स्थापित 'क१-क२-क३-क४' नामकाश्चत्वारः कंसा रज्जुषु समालम्बिताः।

तत्र प्रथममुच्चतरयोः कंसयोस्तुल्यगुरुत्ववद्वस्तुयुगं न्यस्य तुलादण्डः स्थिरीक्रियते।



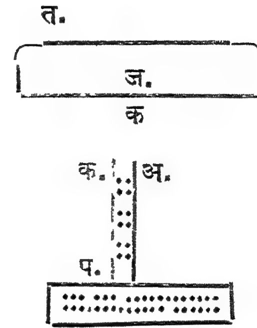
ततश्च वस्तुद्वयादित्थं तुलितादेकं पृथक्कृत्य निम्नतरे कंसे स्थाप्यते। अस्य च निम्नतरस्य कंसस्य उपरिष्टकंसापेक्षया पृथिवीकेन्द्रं प्रति संनिहिततरत्वान्निम्नतर कंसे-स्थापितस्य वस्तुनो गुरुत्वं सद्यः संवर्द्धते तुलादण्ड-तत्पार्श्वसंनिहितोऽन्तश्च सद्यो निम्नीभवति।

अत्र तस्मिन्नेव परमाणुराशौ पृथिवीकेन्द्रसंनिधानविप्रकर्षविशेषवशाद् गुरुत्वे विशेषीभवतीति द्रष्टव्यम्। आकर्षणमानं च आकर्षकाकृष्यवस्तुद्वयमानघातस्य तद्विप्रकर्षवर्गविभक्तस्य सापेक्षम्। ततश्च यदि 'म१-म२' नामकं वस्तुद्वयं परस्पराकर्षकं भवेत् उभयमध्ये विप्रकर्षश्च 'द' शब्देन विन्यस्येत तदा तयोराकर्षणं $\frac{म^{१} \times म^{२}}{(द)२}$ एतन्मितं भविष्यति।

गुरुत्वञ्च द्रव्यस्वभावपरिवर्त्तनेन नोपचयमपचयं वा भजते। काचनलिकायां सुपिहितायां स्थापितं द्रव्यद्वयं शीतोष्णत्वादिविशेषेण परस्परमिश्रणादिवशेन वा न परिवर्त्तितगुरुत्वं कदाप्युपलभ्यते।

प्रायः सर्वेषु द्रव्येषु स्थितिस्थापकत्वमुपलभ्यते। इयं शक्तिः केषुचिद्द्रव्येष्वधिका केषुचिच्चाल्पा। सर्वं वस्तु बाह्यशक्त्याक्रान्तं ततो मुक्तं चाक्रान्तिबलभेदात् आक्रमणसमयादिभेदवशाच्च आक्रमणाल्पत्वे पुनः स्वामवस्थां प्रतिपद्यते तदाधिक्ये तु न तथा। यथा ताम्रादितन्त्री गुरुणा लौहादिपिण्डेनाकृष्यमाणा समधिकाधिकं लम्बमाना किञ्चिद्दूरपर्यन्तमाकृष्टा ततो मुक्ता च पुनः स्वामवस्थां प्रतिपद्यते। ततोऽधिकमाकृष्टा तु निम्नान्निम्नतरं लम्बमानैव गच्छति। ततोऽप्यधिकमाकृष्टा च भज्यते। आक्रमणानन्तरं पूर्वस्थितिस्थापनाय च कानिचिद्वस्तूनि न समयमपेक्षन्ते। अन्यानि तु बहुसमयानन्तरं स्वां स्थितिं स्थापयन्ति। प्रायो धातुमयानां न समयापेक्षा। काचमयी तन्त्री तु भाराकृष्टा कतिपयहोरानन्तरं पुनः स्वां स्थितिमापद्यते।

यया शक्त्या दीपवर्त्तिस्तैलमाकर्षति सा शक्तिः कैशिकाकर्षणनाम्ना व्यवह्रियते। प्रायो जलतैलादिद्रव्याणि चमत्काराच्छन्नानीव व्यवहरन्ति स्वसंबद्ध द्रव्यान्तरं च यथाशक्ति स्वाभिमुखमाकृष्य वर्त्तयन्ति। यदि धनुराकारा कौशेयगुणवती तन्त्री तैलक्षारमिश्रे जले (Soap Water) निमज्ज्यते तदा तज्जलबुद्बुदेनाकृष्यमाणं कौशेयमतितरां दृढं सत्तन्त्री प्रत्याकृष्यते। अस्मिश्चित्रे त=तन्त्री। ज=जलबुद्बुदम् क=कौशेयसूत्रम्। इदमेव कैशिकाकर्षणस्य मूलम्।



अनया शक्त्या सूक्ष्मरन्ध्रकाचनलिकासु जलादिद्रवपदार्थाः स्वयं सुदूरमारोहन्ति। अस्मिश्चित्रे 'क' काचनलके अपावृताधामुखे 'प' नामकरक्तजलपूर्णपात्रस्योपरि स्थापितमात्रे एव रक्तजल शनैः 'अ' स्थानपर्यन्तमारोहति। एवमन्येषां प्रसिद्धतराणा गुणानां स्वयं परीक्षा विधेयेत्यलम्।

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका', काशी, १८२६ शकाब्दाः, चैत्रः, प्रथमवर्षे द्वादशसंख्या]

भाषातत्त्वम्

इह खलु भाषाविषये त्रयः प्रश्नाः समुत्तिष्ठन्ति। कथं मनुष्येषु भाषायाः प्रादुर्भाव आसीदिति प्रथमः प्रश्नः। कः क्रमो भाषाणां पौर्वापर्यस्य, कथं च वर्गीकरणं भाषाणामिति द्वितीयः। के हेतवो भाषासु परिणामस्येति तृतीयः।

[प्रश्नाः]

१. तत्र प्रथमं भाषाया मनुष्येषु कथमाविर्भाव आसीदिति विचारे केचिदीश्वरः साक्षादाविर्भूय मनुं वा कश्यपं वा 'आदमं' वा यथातथानुपूर्वीकनामधेयं नराणां प्रथमपूर्वजं स्वरचितैर्व्याकरणकोषादिभिरपरथा वा यथा कथञ्चिद्भाषां कामप्यशिक्षयद्यस्याः क्रमेण रूपान्तराणि भजन्त्यो विविधाः सांप्रतिक्यो भाषा दुहितर इवेत्याहुः।

[ईश्वरमूलकतत्त्ववादः]

अन्ये तु नराः सभ्यताप्रचारात्पूर्वं भाषां विनैवेङ्गिताकारादिभिः परस्परालापं कुर्वाणास्ततो निजकार्यमनिरुह्यमाणं विलोक्य शकटादिक्रेङ्कारं, सारमेयादिभाषणं, स्वाभाविकं दुःखभयादौ मुखादकस्मादुच्चरितं 'ही', 'हा', 'हुम्' आदिशब्दजातं चावलम्ब्य तत्तद्वस्तूनां तत्तत्क्रियाणां च नैसर्गिकध्वनिमूलकानि काककोकिलकुक्कुटादीनि फूत्कारचीत्कारादीनि च नामानि निर्मिमाणाः परस्परं तैरेव च व्यवहरन्तः कांचिद्भाषां प्रचारयाम्बभूवुरिति साटोपमुट्टङ्कयन्ति।

[ध्वनिमूलकत्ववादः]

इतरे तु सभ्यताभावविक्लवाः पुरुषपूर्वजाश्चेष्टादिभिर्निजव्यवहारनिर्वाहं कालक्रमेणावश्यकताभिवृद्धौ सम्यग्जायमानमपश्यन्तो महतीं काञ्चित्सभां महामण्डलं वा विधाय गवाश्वादीन् शृङ्गपुच्छादिभिर्ग्राहं ग्राहमिदं वस्त्वेतत्पदवाच्यमिति मिथः संविदं विधाय महामण्डलनिर्णीतानां शब्दानां प्रचाराय वाग्मिन उपदेशकान्महोपदेशकान्महामहोपदेशकांश्च दिगन्तेषु संप्रेष्य भाषामात्मीयां व्यवहारगोचरीचक्रुरिति तर्कन्ति।

[अन्योन्यसंविद्वादः]

परे तु पूर्वोक्तामीशमूलकत्व-ध्वनिमूलकत्व-मिथःसंविन्मूलकत्वरूपां वादत्रयीं पूर्वपक्षत्वेनाभिलक्ष्य वादेष्वेषु शतशो दूषणान्युद्भावयन्तः पृथिव्यां जनेषु नैसर्गिकी मानसी शक्तिरीश्वरोद्भाविता तादृशी काचिदस्ति यया स्वयमेवैते निजोपयोगानुरूपं ध्वन्याद्यवलम्बसहकृतोद्भवमन्या-

[नैसर्गिकशक्तिवादः]

दृशं च शब्दजातं विरच्य परस्परं चिरं व्याजह्रुर्व्यवहरन्ति व्यवहरिष्यन्ति चेति स्वपक्षं सिद्धान्तयन्ति तर्कयन्ति च कर्कशतर्ककर्तरीजुषः पूर्वपक्षान्वक्ष्यमाणरीत्या ।

ईश्वरेण प्रथमजो मन्वादिर्भाषामशिक्ष्यतेति तावत्कथं संभाव्यते, व्याकरण-कोषादिकं हि भाषाशिक्षणसाधनं यां काञ्चिद्भाषामवलम्ब्यैव विवरितुं शक्यते न तु मूकेन मूकं प्रति । यदि प्रथमज ईश्वरस्य भाषां बोद्धुं प्रथमत एव शक्तो

[सर्वयसनिरासः]

नास्य भाषाशिक्षणमावश्यकं, यदि तु स्वयं स मूको भाषानभिज्ञश्च क उपायस्तमवगमयितुमीश्वरस्येति साक्षात् पुरुषरूपेणावतीर्येश्वरः प्रथमजं भाषामशिक्षयदित्यसङ्गतम् । अथेश्वरेण न लौकिकेन गुरुणाक्षरसमाम्नाय-शब्दपारायणादिभि' शिक्षितः प्रथमजः किं तर्हि भाषाज्ञानौपयिकशक्त्युद्बोधनेनास्य चेतसीतीश्वरमूलकत्ववादिनामभिप्रायस्तर्ह्यागतोऽस्माकमीश्वरवितीर्णनैसर्गिकशक्तिवाद-पक्षः । ये तु ह्रीं ह्रां, हुम् , फट् , क्रैं, क्रौम् , आदिध्वनिमूलकत्वं सर्वेषां भाषाशब्दानां वदन्ति तेऽपि किल यथाकथंचित्प्रत्यक्षवस्तुवाचकानां केषांचिदेव शब्दानां काक-क्रौश्वादीनां ध्व निमूलकत्वं समर्थयितुं प्रभवन्ति न पुनर्ज्ञानविज्ञानसम्बद्धानां संवित्प्रत्यय-समयाचारादिशब्दानां शास्त्रीयाणामवच्छेदकताप्रकारतानुयोगिताप्रतियोगिताविषय-तादिशब्दानां चेति तेषां वाद. प्रायिकः कतिपयशब्दविषय एवेति ध्येयम् । ये पुनर्मूक-महामण्डलसंविन्मूलिकां भाषोद्भूतिमाहुस्तेषामपि समितौ तावत्पर्यन्तं भाषाज्ञाना-भावान्महतो हुंकार-फूत्कार-चीत्कार-बहुलस्य कोलाहलस्य प्रवर्तमानस्यापि कया भाषया सभायाः पतय उपपतयश्च निश्चिताः कथं व महोपदेशकादयो भाषाज्ञानं विनो-पदेशविचक्षणा बभूवुरिति नावधार्यते बहुविचारानन्तरमपि । तदित्थं पूर्वपक्षत्रयस्य प्रत्यादिष्टत्वात्पक्षान्तराणां वा सुलभत्वेन चतुर्थो नैसर्गिकशक्तिमूलकत्वपक्ष एव विच-क्षणैर्भाषाव्यवहारविषयेऽङ्गीकार्य इति कृतमत्र वाक्यप्रपञ्चेन ।

२ यथातथा वा भाषाणामुद्भवो भवतु । सांप्रतं याः खलु भाषाः प्रचारविषये वर्तन्ते तासां परस्परं सम्बन्धोऽस्ति न वा, तथा सामान्यतः कीदृशानी रूपाणि भाषाणा-मभवन् सांप्रतं च वर्तन्त इत्यपरः प्रश्नः । तत्र विविधानां भाषाणां परीक्षणेन भाषा-तत्त्वज्ञैरेते विषया एवं निर्णीताः । काश्चिद् भाषा विशेषतः सभ्यजातीनां वर्गीकृताः अपरास्तु सभ्यताशून्यानां वन्यानां भाषाः परस्परं वस्तुतोऽसम्बद्धा दार्शनिकैरनभ्यस्त-तयाऽज्ञातसम्बन्धा वा पृथगेव वर्त्तन्ते । तत्र चार्यभाषाणामेको महावर्गो यस्मिन् संस्कृत-पारसीक-लेटिन-ग्रीक-गोथिकादि भाषा अन्तर्भूताः । अपर आरव्यवर्गो यस्मिन् हिब्रूअरव्यभाषाणामन्तर्भावः । अन्यस्तुरुष्कवर्गो यस्मिन् तुरुष्क (टर्की)-

देशीयानां भाषाणां संग्रहः। इतरश्चीनवर्गो यस्मिन् चीनजापानप्रभृतिदेशीयानां भाषाणामन्तर्भावः। परश्च द्रविडवर्गो यत्र तामालतैलङ्गादिदक्षिणभारतीयभाषाणां संग्रहः।

वर्गीकरणम्

एवं केचिदन्येऽपि अफ्रिकाऽमेरिकादिदेशेषु प्रचरन्तीनां भाषाणां वर्गाः सन्ति, ते च वर्गा न भाषातत्त्वज्ञैः सम्यगभ्यस्ताः इत्यनपेक्षिताः। तत्र च अस्माकं परिचयाभावात्यन्तमपेक्षितः। प्रथम आर्यवर्गस्तत्रापि भारतस्योत्तरस्यां दिशि बहुलप्रचारस्तस्यावान्तरवर्गः संस्कृताख्यो यत्र हिन्दी–मराठी–बंगाली–गुजरातिभाषाणां संग्रहः। अस्मिन् प्रबन्धे च संस्कृतवर्गादेवोदाहरणादिकं प्रयोक्ष्यते। इदञ्च वर्गीकरणं शब्दानां रचनायाश्च साम्यमुपलभ्य स्थिरीकृतम्। तत्रापि शब्दानां साम्यं न तथा वर्गैक्यप्रयोजकं यथा यथा वाक्यरचनायाः साम्यम्। तथाहि बंगभाषायां हिन्दीभाषायां च यथा बहवः संस्कृतशब्दाः उपलभ्यन्ते तथैव भारतीयानां सम्बन्धात् कदाचित्तामिलादिषु अपि, तथापि बंग–हिन्दी भाषयोर्वर्गात्पृथगेव द्रविडवर्गस्य स्थितिरिति न शब्दाधीनः किन्तु वाक्यरचनाधीनो निर्णयः।

भाषा–भेद प्रयोजकम्

एवं भाषाभेदप्रयोजकत्वमपि न तथा शब्दभेदस्य यथा वाक्यरचनाभेदस्येति ध्येयम्। तद्यथा 'अहं वाष्पशकटस्य विश्रामस्थानाय प्रस्थानं करोमि' इत्यस्मिन्वाक्ये शब्दास्त एव "मैं बाष्पशकट के विश्राम-स्थान पर प्रस्थान करता हूँ" इत्यस्मिन् वाक्येऽपि प्रायः सन्ति तथापि वाक्यरचनाभेदात् प्रथमवाक्यं संस्कृतभाषास्यमन्यच्च हिन्दीभाषासम्बद्धमित्युच्यते। एवं कैश्चिच्छात्रैभिर्भट्टाचार्यैश्च न्यायादिकं पाठयद्भिः शास्त्रार्थं विवादं वा कुर्वाणैः स्वयं संस्कृतागिरा वक्तुमशक्ततया वा श्रोतॄणां बोधसौकर्याय वा समुच्चार्यमाणानि प्रकारतावच्छेदकताप्रचुराणि अपि 'है' 'छथ' 'आछे' इत्यादि विरलक्रियादिवशादेव हिन्दी–मैथिल–बंगादिभाषामयानि ननु संस्कृतभाषामयानि व्यपदिश्यन्ते। अयं तावद्देशभेदेनैको वर्गीकरणप्रकारो भाषाणामपरस्तु तासामवस्थाभेदात्।

अवस्थाः

विविधानां भाषाणां तत्तत्कालेषु तासामवस्थानां च परीक्षणेन ज्ञायते यथा भाषाणां सामान्यतश्चतस्रोऽवस्थाः भवन्ति। प्रथमा धात्ववस्था, द्वितीया समासावस्था तृतीया प्रत्ययावस्था चतुर्थी चाव्ययावस्थेति। प्रथमं मनुष्येषु धातुमय्यः प्रकृतिप्रत्यय-

विभागहीना भाषा प्राचरन्। शब्दानां परस्परं संसर्गश्च शाब्दबोधे चैकपदार्थेऽपरपदार्थस्य संसर्गः संसर्गमर्यादया भासत इति गदाधरीयव्युत्पत्तिवादोक्तविधया प्रत्ययादिकं विनैव प्रतीयते। साम्प्रतमपि चीनादिदेशेषु धातुमयी भाषा प्रयुज्यते। चीनवासिभिर्हि घटमानयेति वक्तव्ये एको निर्विभक्तिकः शब्दो घटवाच्योऽपरश्चानयेत्यर्थको विभक्तिरहित एव शब्दः प्रयुज्यते नैव च सुखं शाब्दबोधो भवति। न केवलमेतावदेव। यथा जीवेषु उद्भिज्जाण्डजजरायुजानामुत्तरोत्तरं विशेषे सत्यपि रसपरिणामादिकमुद्भिज्जकार्यमण्डजेष्वपि तद्विशिष्टं च गत्यादिकं किञ्चिदुपलभ्यते तथा जरायुजेषु विशेषतो मनुष्येषु नीचतमप्राणिसाधारणं रसपरिणामगत्यादिकं ततोऽप्यधिकं च किञ्चिद्विवेकादिकमुपलभ्यत इति जीवशास्त्रस्य निश्चयस्तथैव भाषास्वपि पूर्वपूर्वावस्थाधर्मा अपि उत्तरोत्तरावस्थासूपलभ्यन्ते केचिच्च विशेषा अपीति बोध्यम्। अत एव धात्ववस्था अपि उत्तरावस्थासूपलभ्यन्त इति पश्चात्प्रदर्शयिष्यते। काश्चित्तु द्राविडादिभाषा अमेरिकादिप्रदेशभाषाश्च द्वितीयायां समासावस्थाया वर्तन्ते द्राविडादिभिर्हि गृहात्सत्वरं घटमानीय पानीयं दीयतामिति वक्तव्ये एका महादंशस्तम्बाकृष्टलट्वासमः समस्तः शब्दः सम्पूर्णवाक्यार्थबोधकः प्रयुज्यते, तेनैव च किड्विड्डायितबहुलेन शब्देन वाक्यार्थबोधो भवति। प्रथमावस्थायां ये किल शब्दा वाक्येषु पृथगेवावर्तन्त त एव शनैः शनैरेकीभवन्तः समासावस्थाप्रयोजका भवन्ति। ततश्च समस्तेषु शब्देषु कश्चित् प्रबलः स्वार्थं निजस्वरादिकमुदात्तादि च रक्षन् वैकल्यरहितस्तिष्ठति तत्रैव च समासे कश्चिदपरः शब्दः घृष्टघृष्टो दुर्बलीभवन् प्रत्ययावस्थामापद्यते, एषु प्रत्ययेषु कल्प-देश्य-देशीय-चर-रूप्यादिकाः साम्प्रतमपि पृथक् प्रयोगार्हं रूपं बिभ्रति। केचित्तु सुप्तिङादयः कृत्तद्धितादयोऽपि सांप्रतं सन्निप्तं पृथक् प्रयोगार्हरूपपरिचयायोग्यं स्वरूपं बिभ्रति। तथाहि कतिपयवर्षायुतेभ्यः पूर्वं प्रायः भवति भवामि इत्यादीनां स्थाने भूधातोस्तच्छब्दस्यास्मच्छब्दस्य च पृथक् प्रयोग आसीत्। कालक्रमेण तु तच्छब्दस्य रूपं घृष्टप्रायं ति इति अस्मच्छब्दस्य च मि इति संवृत्तम्। सांप्रतं च तिशब्दस्य मिशब्दस्य वा प्रत्ययावस्थापन्नस्योत्पत्तिः कथमभूदिति परिचयोऽपि दुःखेन जायते। एवं चतुर्थी चाव्ययावस्था पुनर्धात्ववस्थासदृशी आङ्ग्लादिपाश्चात्यभाषासु उत्तर-भारतीय हिन्दी बङ्गला आदिभाषासु चोपलभ्यते। अस्यामवस्थायां प्रत्ययावस्थातः परमत्यन्तघृष्टानां विभक्त्यादीनामर्थबोधस्य दुष्करतया तेषां सर्वथा लोपे जाते सम्बन्धबोधनमव्ययैः

[धात्ववस्था]

[समासावस्था]

[प्रत्ययावस्था]

[अव्ययावस्था]

क्रियते। यथा अङ्ग्लभाषायां पूर्वं कारकादिबोधकविभक्त्यादिप्रत्ययेषु सत्स्वपि सांप्रतं तेषां लोपो जातः सम्बन्धबोधनं चाव्ययैरधिकरणादिबोधकैर्विधीयते। यथा ग्रामे वृक्षोऽस्तीति वाच्ये आङ्गलैश्चत्वारः शब्दा प्रयुज्यन्ते। तत्र एको ग्रामवाची, अन्यः अधिकरणसम्बन्धवाची अपरो वृक्षवाची इतराश्चासधातुवाची। तत्राधिकरणबोधार्थं पृथक्शब्दप्रयोगः। कर्तृसम्बन्धस्तु संसर्गमर्यादयैव भवति। एवं हिन्दीभाषायां तस्यैव वाक्यस्यार्थबोधनाय 'गाँव में वृक्ष है' इति चत्वारि पदानि प्रयुज्यन्ते तत्राप्यधिकरण-बोधाय कर्तृबोधाय च विभक्तयो न सन्ति किंतु अधिकरणबोधः 'में' इत्यव्ययेन कर्तृबोधश्च संसर्गमर्यादया न भवतीति सुव्यक्तम्। इत्थं प्रत्ययहीनाः प्रत्ययविरला वा प्रत्ययकार्यं चाव्ययैः पृथक् प्रयुक्तैः कुर्वाणा भाषाः अव्ययावस्थागता उच्यन्ते।

तत्र च प्रायोऽवस्थानां सांकर्यमपि दृश्यते। पुरुषो हि यथा वयःसन्धौ वर्त-मानोऽनेकावस्थाधर्मानाविर्भावयति तथा भाषास्वपि दृश्यते। तद्यथा संस्कृतभाषायां सर्वावस्थाधर्माः परिदृश्यन्ते। वारि पिबेति वाक्यं हि प्रथमावस्थां गतं नह्यत्र वैया-करणप्रकाण्डानामकाण्डताण्डवितेन लोपादिविधानेनापि प्रत्ययाद्यवस्थानं सुलभमिति प्रत्ययरहितमेवेदं वाक्यम्। एवं 'किमिदम्—राजपुरुषगतागतविकलजनसंमर्दः' इति प्रश्नोत्तरालापे उत्तरवाक्यमेकसमासमयमिति द्वितीयावस्था सुव्यक्ता। तथा प्रत्यया-वस्था संस्कृतभाषायां सांप्रतं मुख्यैवेति रामो गच्छतीत्यादि सहस्रशो वाक्यानि तृतीया-वस्थोदाहरणानीति न तदर्थं कश्चित्प्रयासः। चतुर्थ्या अप्यवस्थायाः संस्कृतभाषायां प्रचाराङ्कुरो दृश्यते कालवशाच्च तत्प्रयोजकानामव्ययानां विशेषतः कर्मप्रवचनीयाख्यानां विभक्तिस्थानीयानां प्रयोगप्राचुर्यं सम्भाव्यते। विभक्त्यादिप्रयोगे हि सन्ध्यादिविषये महान् क्लेशो जायते कस्यां विभक्तौ कस्य शब्दस्य किं रूपमिति च सर्वदा ज्ञातुं न सुकरमिति बहवः वध्वै वच्मीत्यस्य स्थाने वधूं प्रति वच्मीति कर्मप्रवचनीयघटितं प्रयोगं बहु मन्येरन्। इत्थं चतस्रोऽप्यवस्थाः संस्कृते यथा कथंचित्सुलभाः प्रत्ययावस्था तु मुख्येति स्थितम्।

एवं भाषोद्भवं भाषाणां वर्गीकरणमवस्थाभेदं च प्रपञ्च्य सांप्रतं के हेतवो भाषासु परिणामस्येति किंचित्प्रस्तूयते—तत्र (क) देशस्वभावः, (ख) अशक्तिमिश्र-मालस्यम्, (ग) धर्मादिकम्, (घ) संस्कारप्रवृत्तिः, (ङ) भाषान्तरसंघट्टश्चेति मुख्यानि कारणानि भाषाणां परिणामस्य।

[देशस्वभावः] देशस्वभावभेदेन भाषाणां भेदो भवतीति तावत्सुप्रसिद्धमेव। एकैव भाषा तत्तद्देशेषु प्रचरन्ती तत्तद्देशीयानां स्वभावादिवशात्पृथग्रूपा भवन्ती नानानामान्यासादयति। इत्थमेव संस्कृतात्प्राकृतभेद-

क्रमेण सांप्रतिक्यः हिन्दी-मराठी-बङ्गालीआदिभाषाः समुत्पन्नाः। एक एव हि संस्कृत-शब्दः लक्ष्मीः इति हिन्दीभाषायां लच्छमी इति बङ्गभाषायां च लक्खी इत्युच्यते। संस्कृतभाषापि स्वयं देशभेदात् किञ्चिद्भिन्नेव भवति। तथाहि दक्षिणात्या भाल-मणित्यादिशब्दान् फालफणित्यादिरूपेणोच्चारयन्ति। अत्रत्यानामवदानशब्दो दाक्षिणात्यसंस्कृतेऽपदानमित्युच्यते। एवं तडागताडङ्कादिस्थाने दाक्षिणात्यैस्ताटङ्कतटाकाद्युच्यते। इत्थं देशस्वभाववशाच्छब्दस्यैकस्य रूपभेदो जायते। प्राकृतेष्वपि एकस्यैव कृष्णशब्दस्य 'कसणो' 'कण्हो' इत्यादिरूपाणि जायन्ते। कन्याशब्दः कस्मिंश्चित्प्राकृते कण्णा इति अन्यत्र तु कञ्ञा (पैशाची) इत्युच्यते। एवमन्येपि भेदा अशोकशासन-प्राकृतेषु णकारस्यानुपलम्भः, प्राकृतान्तरेषु णकारस्य बहुश उपलम्भ इत्यादयो अत्रोदाहर्तव्याः।

[अशक्तिमिश्रमालस्यम्] एक एव वर्ण एकस्मिन्देशे सुखेनोच्चारयितुं शक्यते ऽपरत्र तु दुरुच्चारः स एव यथा चीनदेशीयैः क्राइष्ट इत्यस्य स्थाने किलिसेत्तू इत्युच्चारयन्ति। एवं लकारो भारतीयैरन्यैश्च सुखमुच्चार्यते। परं जापानीयैर्लकारो ऽत्यन्तं दुरुच्चार इत्युच्यते। इत्थं देशावयःसमयादिवशादक्षराणां सुखोच्चारता वा संजायते। एकस्मिन्नपि हि देशो कुटुम्बेऽपि वा स्त्रीबालकादीनामुच्चारणं पुरुषाणामुच्चारणाद्भिद्यते। तत्र च यद्यपि सामान्यतो भिन्नदेशीया अपि भिन्नदेशीया भाषाः शिक्षादिवशाच्छुद्धमुच्चारयितुं ऽभवन्ति। यथा भारतीयैरङ्ग्लभाषाऽतिशुद्धतयोच्चारयितुं शक्यते तथापि शिक्षाभावाद्वा जिह्वाप्रयत्नपरिहारपरादालस्याद्वा प्रायो भाषासु परिणामा भवन्ति तेन च 'प्रमिसरी नोट' इत्यस्य स्थाने 'परमेसरी लोट' 'लाइब्रेरी' इत्यस्य स्थाने 'रायबरेली' इति 'स्मृति' इत्यस्य स्थाने 'श्मृतिः' इत्यादयः परिणामाः प्रादुर्भवन्ति। अयमेव मुख्यः परिणामहेतुर्भाषाणाम्। यत्प्रयोज्यः संस्कृतसम्भवो मागधीशौरसेन्यादिप्राकृतप्रवाहक्रमेण सांप्रतं हिन्दीबङ्गभाषादिरूपोऽनेकस्रोतोमयो भारतीयभाषाणां प्रवाहः प्रवर्तते।

[धर्माचारिदकम्] धर्माचारादिकृतो मनुष्याणां स्वभावभेदो निमित्तान्तरं भाषाविपरिणामस्य। तथाहि केषुचिद्देशेषु स्त्रीभिः पत्युर्नाम न ग्रहणीयमित्याचारः अन्यत्र च पुरुषैर्भार्याया नाम न गृह्यते। एवं गुर्वादिनामपरिहारोपि बोध्यः। श्लोकश्चात्रोदाह्रियते--

आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोरिति॥

तथा च येषां भक्तानां गुरवो लोटादासभंटादासादिनामानो भवेयुर्यथा बाराणस्या-

मयोध्यादौ च बहव उपलभ्यन्ते तैर्भक्तवरैर्गुरुनाम परिहरद्भिर्भेटादिप्रसिद्धहिन्दी-शब्दानां स्थाने शब्दान्तराणि यथासम्भवं प्रयुज्यन्ते। ततश्च प्रथमं तेषां कुटुम्बेषु तदनन्तरं च समस्तजनपदेऽपि कदाचिदीदृशानामभिनवशब्दानां व्यवहारो जायते। एवं केषांचिदाचारे क्षौरशब्दो मृताशौचानन्तरभाविकेशकर्तनपर इति कृत्वा मुण्डन-शब्द एव सामान्यक्षौरार्थे प्रयुज्यते क्षौरशब्दश्चामाङ्गलिकत्वेन निश्चायत इत्यादि-कान्यन्यानि प्रयोगपरिवर्तनोदाहरणान्यूह्यानि।

[संस्कारप्रवृत्तिः]

पण्डितैर्भाषान्तरव्यवहारकाले यथासंभवं भाषान्तरशब्दाः संस्कृताकारसदृश-माकारं प्राप्यन्ते। एवमाङ्ग्लभाषाभिज्ञैर्भाषान्तरशब्दा आङ्गल-भाषासदृशमाकारमाप्यन्त इति दृश्यते। संस्कृतज्ञैः पण्डितैः 'खिचड़ी' इति हिन्दीशब्दः खिच्चटिकारूपेण परिणम्यते रोटी-शब्दश्च रोटिकेति परिवर्त्यते। क्रमाच्चेदृशाः शब्दाः संस्कृतेऽपि पण्डितम्मन्यैः प्रयुज्यन्ते। इत्थमेव विल्हणादिसमयेषु प्राकृतो लडहशब्द सुन्दरवाची लटभरूपतां प्राप्तः संस्कृत-भाषायां प्रचारं प्राप।

[भाषान्तर संघट्टः]

भाषान्तरसंघर्षेण नूतना शब्दा भाषायां समागच्छन्ति, केषांचिच्छब्दानां वास्तवार्थो नश्यतीत्याद्यपि सुप्रसिद्धमेव। कङ्केल्लिशब्दः प्राकृतेऽशोकवृक्षवाची प्राकृतात्संस्कृते शङ्कराचार्येण भारतचम्पू-कारेणान्यैश्च गृहीतः संस्कृते चैको लकारोऽस्य विलोपितः। 'प्रमदवनकङ्केलितरवे' इति सौन्दर्यलहरी। कङ्केलिदेशमुपनीयेत्यवन्तश्च'। एवं हण्डे हञ्जे हला इत्यादीन्यव्ययान्यमरेण प्राकृताद् गृहीतानि शब्दान्तराणि चावुत्तादीनि प्राकृतात्संस्कृतमागतानि। एवं संप्रति वङ्गदेशीयैः स्वभाषानुसारेण संस्कृतेऽपि रौद्रशब्दो भीषणवाची धर्मार्थे संभ्रान्तशब्दो व्याकुलार्थवाची च पूज्यार्थे प्रयुज्यते।

एते पञ्च मुख्या भाषा परिणतिहेतवश्छन्दोरक्षादिकानि निमित्तान्तराणि तु विरलप्रसराणि विस्तरपरिजिहीर्षया नोपन्यस्तानि।

['मित्रगोष्ठी-पत्रिका', काशी; १८२८ शकाब्दाः, मार्गशीर्षः, तृतीये वर्षे अष्टमसंख्या]

प्रथमो भागः समाप्तः।

द्वितीयो विभागः ।

श्रीसरस्वत्यष्टकम् ।

मातः सरस्वति सरस्वति पारशून्ये
संसारनामनि निकाममुपप्लुतस्य ।
रागादिभिर्जलचरैस्तमसावृतस्य
नौकेव मेऽस्ति शरणं भवदङ्घ्रिपूजा ॥१॥

मातर्भवातपहतो भवतीमवाप्य
क्षुद्रे गुणान् कति दधे मनसि त्वदीयान् ।
स्वादूदकाम्बुधितटीं मरुवासिपान्थः
प्राप्याददीत कियदम्बु दृतौ स्वकीये ॥२॥

मोहाम्बुधावतितरां तमसा निगूढा
अन्विष्य तत्त्वकणिकाः किल जीवतो मे ।
सारस्वतन्त्रकवितामृतदानशौण्डे
सारस्वतं स्फुरतु धाम सदा प्रकामम् ॥३॥

नाम्नातिभीतिजनकैरतिपातकैर्मे
स्तेयानृतादिभिरलं समलीकृतस्य ।
यामम्ब सेवितवतो भुवनेषु कीर्त्तिः
सा त्वं निधेहि सततं हृदये मदीये ॥४॥

न त्वं प्रमादगलिता हृदयात्कदाचित्
नान्याम्ब तत्र निवसत्यधिदेवतेव ।
आगःशते शिशुतया विहितेऽपि तस्मा-
न्मां त्रायसे चरणयोः सविधे सदैव ॥५॥

सेवाश्ववृत्तिमुररीकृतवानजस्रं
देशे वसन् परमुखेक्षणमात्रधन्ये ।
यत्पत्न्यपत्यसुहृदस्तव सेवनैक-
शक्तान् करोमि सुखमेकमिदं ममाम्ब ॥६॥

त्वत्सेवनान्न परमो मम कोऽपि धर्मः
स्वाराज्यमप्यतुलमेकमिदं तदेव ।
भक्ते चिराय तदयाचितमेव दत्से
वत्से मयीति वृणवै परमम्ब किं वा ॥७॥

मुक्तो न भक्तिमुदितेन महत्प्रसादः
श्रद्धा प्रशास्तृषु हृदो न बहिर्व्यघोषि ।
वित्रासिता अधिकृता न वचःप्रपञ्चै-
र्दैन्यान्मयाम्ब सततं परितोषितासि ॥८॥

—*:*—

अभिनवभारतम्।

भारतीयमितिवृत्तम्।

वाङ्मयार्णवीयेतिहासकाण्डे भारतीयेतिहासतरङ्गः।

प्राचीनेभ्यो निबन्धेभ्यो नवीनेभ्यश्च यत्नतः।
संगृह्य भारतस्येतिवृत्तं संक्षिप्तमुच्यते ॥ १ ॥

पूर्वराजशिलालेखताम्रपत्रप्रशस्तिभिः।
मुद्राद्यैश्च कृतः प्रत्नैः प्रबन्धोऽयं परीक्षितैः ॥ २ ॥

कवित्वशक्तिदारिद्र्यान्निबन्धे यत्र कुत्रचित्।
सूक्तयोऽस्मिंश्चिररत्नानां गौरवेण निवेशिताः ॥ ३ ॥

एकाहोरात्रवर्षेषु ध्रुवभूपितमूर्धसु।
पुरा मेरुप्रदेशेषु न्यवसन्नार्यजातयः ॥ ४ ॥

तदा वसन्तसमयस्तत्राभूत्सार्वकालिकः।
शीतोष्णबाधा नैवासीज्जनाश्च सुखिनोऽभवन् ॥ ५ ॥

ऋषीणामुग्रतपसामतिमानुषवर्चसाम्।
वेदः प्रादुरभूत्तत्र विद्यास्थानोपबृंहितः ॥ ६ ॥

तन्वन्तो[1] वैदिकान्यज्ञान्स्तुवन्तश्चार्यदेवताः।
नन्दिताः प्राकृतैर्दृश्यैर्न्यवसंस्तत्र ते चिरम् ॥ ७ ॥

अथ कालवशादार्याः सर्वतो मेरुमण्डले।
प्रालेयप्रलयाक्रान्ते प्रस्थिता दक्षिणां दिशम् ॥ ८ ॥

आक्रामन्तः क्रमाद्वीराः सरितः सागरान्गिरीन्।
जयन्तोऽनार्यजातीश्च सर्वतस्ते प्रतस्थिरे ॥ ९ ॥

---

१. कृतयुगात् पूर्वम्।

क्रान्त्वा हिमालयं केचित्प्राप्ताः पश्चिमभारतम् ।
कृते[1] युगे महोद्योगाः सप्तसिन्धुपरिप्लुतम् ॥१०॥
विजित्य नरजातीश्च भारते प्रथमोषिताः ।
पश्चिमोत्तरभागेषु सभ्यतां ते वितस्तरुः ॥११॥
अजय्याश्छलिनो वन्याः पण्योऽरण्यमाश्रिताः ।
जितास्तु शूद्रा दासत्वमार्येषु प्रतिपेदिरे ॥१२॥
रक्षन्तः पूर्वजैर्दृष्टं वेदं निधिमिवाक्षयम् ।
व्यभजन्नृग्यजुःसामरूपेणार्या महौजसः ॥१३॥
ऋचो देवस्तुतिप्राया यज्ञात्मानि यजूंषि तु ।
सामानि गीतिसाराणि संगृहीतानि ऋक्छ्रुतेः ॥१४॥
सुदाःप्रभृतयो भूपाः संग्रामाद्यं च तत्कृतम् ।
वर्णिता इतिहासांशा अपि वेदे क्वचित्क्वचित् ॥१५॥
यदैतिह्याद्यभूदत्र पणिप्रभृतिषु स्थितम् ।
अथर्वांगिरसाख्योऽस्य ऋषिभिः संग्रहः कृतः ॥१६॥
अथर्वणां पुराणानामंगानां चाथ विस्तरैः ।
विटपैरिव रेजेऽसौ वेदः कल्पद्रुमोपमः ॥१७॥
बहुप्रकृतिविज्ञानमथर्वांगिरसे स्थितम् ।
मूलात्मकं यत्तस्याभूदायुर्वेदादिविस्तृतिः ॥१८॥
इतिहासपुराणेषु राजवंशादिकीर्त्तनम् ।
लोकयात्रादिकाश्चान्ये विविधा विषयाः स्थिताः ॥१९॥
शिक्षा व्याकरणं कल्पो ज्योतिश्छन्दो निरुक्तकम्
वेदज्ञानोपयुक्तानि षडंगान्यृषयो जगुः ॥२०॥
शिक्षा विचारो वर्णानां पदानां व्याकृतिर्मता ।
कल्पस्य विषया यज्ञा ज्योतिः कालविनिर्णयः ॥२१॥
गायत्र्यादिगतिश्छन्दो निरुक्तेऽर्थस्य निश्चयः ।
इत्थं विभक्ता विषया वेदांगानां पुरातनैः ॥२२॥

---

१. कृतयुगारम्भः १३९७९ (श० पू०) शकाब्दारम्भात् पूर्वम् ।

कलिः[1] शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ॥२३॥
इति श्रुतेर्महोद्योगनिस्तन्द्रप्रायपूरुषम्।
कृताभिधानं प्रथितं युगं तत्कृतिशालिनाम् ॥२४॥
त्रयोदश सहस्राणि युक्तानि नवभिः शतैः।
सोनाशीतीनि वर्षाणामन्तरे शककृत्ययोः ॥२५॥
चत्वार्यब्दसहस्राणि संयुतान्यष्टभिः शतैः।
कृतमंघ्रित्रये चान्यूद्युगानां त्रितयं क्रमात् ॥२६॥
सुदाहरिश्चन्द्रनलाः पुण्यश्लोकास्तथापरे।
भगीरथाद्या अभवन्कृतात्मानः कृते युगे ॥२७॥
पितॄन्प्लावयितुं दग्धान्गंगास्रोतोऽवतारितम्।
भगीरथेनाद्य यावज्झम्पातो दृश्यतेऽब्धिगम् ॥२८॥
अथ त्रेतायुगे रामो अमन्दशरथाज्ञया।
नीतवान्कीर्तिमार्याणां लंकाद्वीपं सुदुर्गमम् ॥२९॥
लंघयन्सागरं रामस्तं प्राप्य विनिवर्त्तिनः।
भगीरथात्पूर्वभवाद्विवव्रेऽतिशयं निजम् ॥३०॥
द्वापरेऽप्यभवन्नेवं भूपा भीष्मादिपूर्वजाः।
क्रमेण भारतीयानां ह्रासमापत्तु गौरवम् ॥३१॥
ऊनाशीत्यधिकामेकत्रिंशदब्दशतीमिह।
शकाब्दारम्भतः पूर्वं प्रादुरासीत्कलिः किल ॥३२॥
प्रवृत्तेऽथ कलावांसीद्वैरालस्यादिविप्लुतम्।
जगत्समस्तमेवेदं धर्मक्षयविसंकुलम् ॥३३॥
सप्तविंशे कलेरब्दे चैत्रशुक्लादिमे तिथौ।
सप्तर्षिवर्षस्यारम्भो लौकिकाख्यस्य भूतले ॥३४॥
शतेषु[2] षटसु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन्कुरुपाण्डवाः ॥३५॥

---

१. ऐतरेयब्राह्मणे।
२. त्रेतारम्भः ६१७६ (श० पू०) द्वापरारम्भः ५५७६ (श० प०) कलेरारम्भः ३१७६ (श०प०)

षड्द्विपञ्चद्विवर्षाणि पूर्वं शकसमोदयात् ।
सप्तर्षिषु मघास्थेषु शशास इमां युधिष्ठिरः ॥३६॥

इन्द्रप्रस्थमधिष्ठाय पाण्डवाश्चण्डविक्रमाः ।
सागरान्तां धरां धीरा अशिपन्नाशितद्विपः ॥३७॥

श्रीकृष्णसचिवा वीराः पार्था बलमदोद्धतान् ।
दुर्योधनादीन्संग्रामे[1] सुखेनैव विजिग्यिरे ॥३८॥

घोरांगिरसशिष्योऽसौ ज्ञानविज्ञानतत्परः ।
छान्दोग्ये वर्णितः श्रीमाञ्श्रीकृष्णो देवकीसुतः ॥३९॥

अथ कृष्णे गते घोरः कलिः प्रावर्त्तत क्षितौ ।
धर्माधर्मविमूढानां विनिपातस्य कारणम् ॥४०॥

व्यनश्यद्वैदिकं ज्ञानमितिवृत्तं व्यलुप्यत ।
भूतप्रेतपिशाचादिपूजनं सर्वतोऽभवत् ॥४१॥

संप्रदायसहस्राणि मतभेदाश्च भूरिशः ।
धर्मे विनष्टेऽजायन्त व्यामोहाय नृणां क्षितौ ॥४२॥

पाण्डवानां तृतीयस्य पौत्रः शत्रुनिबर्हणः ।
अभिमन्योरभूत्पुत्रः परीक्षिन्नृपसत्तमः ॥४३॥

जनमेजयनामाभूत्परीक्षित्तनयो नृपः ।
वृहदारण्यके नाम्नी विन्यस्ते नृपयोस्तयोः ॥४४॥
ब्राह्मणानां शतपथप्रभृतीनां क्रमेण च ।
छान्दोग्याद्योपनिषदां प्रादुर्भावोऽभवद्भुवि ॥४५॥

सब्राह्मणोपनिषदां संहितानां समुद्भवः ।
जनमेजयपर्यन्ते कालेऽवनितलेऽभवत् ॥४६॥

श्रौतगृह्यादिसूत्राणि प्रातिशाख्यं निघण्टवः ।
जनमेजयतोऽर्वाञ्चि बुद्धात्प्रत्नतराणि तु ॥४७॥

आदौ कालः संहितानां ब्राह्मणानां ततः परम् ।
सूत्राणां समयः पश्चात्काव्यानां समयस्ततः ॥४८॥

१, कुरुपाण्डवयुद्धम् २५२६ (श० पू०) कह्लणस्य राजतरंगिण्याम् ।

भाषानुसारतः प्रायः कालस्थितिरितीदृशी ।
जनोद्योगानुसारेण कृतादिस्थितिमूचिरे ॥४६॥
प्राचेतसेन मुनिना छन्दोभिर्लौकिकैर्नवैः ।
वाल्मीकिना विरचिता रम्या रामायणी कथा ॥५०॥
छन्दोभिर्वर्णनियतैर्नूतनैर्वैदिकेतरैः ।
यस्मान्निबद्धं प्रथममादिकाव्यमिदं ततः ॥५१॥
रामायणीयैश्छन्दोभिः प्रायश्चैतादृशैः परैः ।
भारतं स्मृतयश्चैव पुराणानि च चक्रिरे ॥५२॥
कुरूणां पांडवानां च संयुगं रोमहर्षणम् ।
कृष्णद्वैपायनो व्यासो भारते विनिबद्धवान् ॥५३॥
इदं[1] कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते ।
उदयं प्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः ॥५४॥
अवलम्ब्यातिविस्तीर्णे वाल्मीकिव्यासयोः कृती ॥
पाणिन्याद्याः कविवराः काव्यान्यन्यानि चक्रिरे ॥५५॥
प्रक्षीणराजके वृत्ते महाभारतसंयुगे ।
चक्रवर्त्तिविहीना भूः सामन्तैर्धारिता चिरम् ॥५६॥
महानुभावेष्विति कालवेधसा सुमेधसामप्यविभाव्यवर्त्मना ।
क्षयं दुरन्तं गमितेषु राजसु प्रजासु वैक्लव्यमवर्त्तताभितः ॥५७॥

इति प्रथमा वीचिः ।

अथ दक्षिणकूले यो भागीरथ्या मनोहरः ।
देशोऽस्ति मगधाभिख्यो वसुधामुखमण्डनम् ॥ १ ॥
यस्मिन्ग्रामोपमा गोष्ठा ग्रामाश्च पुरसंनिभाः ।
पुटभेदनतुल्यानि पुराण्यद्भुतया श्रिया ॥ २ ॥
अनेकवारमुप्तानि लूनान्यपि हि कर्षकैः ।
यत्र धान्यानि दूर्वावत्प्ररोहन्ति मुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥
सदाप्रस्नवशालिन्यः कुण्डोध्न्यो यत्र सुव्रताः ।
अहर्निशं कामदोह्या गावः कामगवीनिभाः ॥ ४ ॥

---

१. क्षेमेन्द्रस्य ।

तत्र भारतवर्षस्य सर्वस्वनिधिभूरिव ।
श्रियः क्रीडागृहमभूत्पुरं राजगृहाभिधम् ॥ ५ ॥
वसत्यत्र जरासन्धो वन्दीकृतमहारथः ।
पाण्डवानां द्वितीयेन द्वन्द्वयुद्धे न्यपात्यत ॥ ६ ॥

तत्राभूच्छिशुनागाख्यो[1] नागराजलसद्भुजः ।
शकाब्दारम्भतः पूर्वमष्टमे शतके नृपः ॥ ७ ॥
शाकवर्णः[2] क्षेमधर्मा क्षत्रौजा इति तत्कुले ।
भूमिपाला रमालानबाहवो जज्ञिरे क्रमात् ॥ ८ ॥

सप्तमे शतकेऽभूवंस्त्रयोऽप्येते नृपोत्तमाः ।
नेतिवृत्तं पुराणादौ तेषां किमपि दृश्यते ॥ ९ ॥
क्षत्रौजसोऽथ तनयो बिम्बिसार इति श्रुतः ।
गृहे लक्ष्मीसरस्वत्योरभूद्राजगृहे बली ॥१०॥

श्रेणीकृतयशा[3] योऽभूच्छ्रेणिकापरनामकः ।
नेतेव दक्षिणः क्षोणी लक्ष्मी चावर्जयन्गुणैः ॥११॥

षट्शताधिकवर्षाणि पूर्वं शकसमोदयात् ।
निर्ममे बिम्बिसारेण नवराजगृहं पुरम् ॥१२॥

नवराजगृहाख्ये स नगरे निजनिर्मिते ।
जित्वाङ्गान्विदधे राज्यं प्रायोऽष्टाविंशतिं समाः ॥१३॥

कोशलेषु नृपस्यास्य समये शाक्यवंशजः ।
जातो गौतमबुद्धोऽसौ पुरे कपिलवस्तुनि ॥१४॥

वर्धमानमहावीरजिनोऽपि मगधान्सुधीः ।
कालेऽस्मिन्नेव वैशालिसंभवः समुपादिशत् ॥१५॥
अजातशत्रुर्नृपतिर्बिम्बिसारतनूभवः ।
कूणिकापरनामाशाद्वसुधामथ वीर्यवान् ॥१६॥

---

१. शिशुनागः (श० पू० अष्टमे शते)

२. शाकवर्णाद्याः क्षत्रौजोन्ताः (श० पू० सप्तमे शते)

३. हेमचन्द्रस्य । ४. जिनस्य मृत्युः (भद्रबाहोः कल्पसूत्रे. बिम्बिसारः ६०७-५८ बुद्धस्य जन्म (६३५ श० पू०) अजातशत्रुः (५७९-५५४ श० पू०)

विजित्य कोसलान्राजा लिच्छवीन्मैथिलांस्तथा ।
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये मगधानां जयं व्यधात् ॥१७॥
दुर्गं च पाटलिग्रामे लिच्छवीनामुपप्लवात् ।
रक्षितुं मगधानेष स्थापयामास दुर्जयम् ॥१८॥
खिन्नः पितुर्वियोगेन नृपतिः पितृवत्सलः ।
निर्माय चम्पानगरीं तत्रैव न्यवसच्चिरम् ॥१९॥
सार्धपञ्चशताब्देभ्यः पूर्वमेव शकाब्दतः ।
गौतमो भगवान्बुद्धः प्राप निर्वाणमात्मवान् ॥२०॥
प्रसेनजित्सुतो राजा कोसलानां विदूरथः ।
अजातशत्रोः कालेऽभूच्छाक्योन्मूलनदुर्ग्रहः ॥२१॥
उपालिकाश्यपानन्दप्रमुखैः श्रमणैः कृता ।
कालेऽस्मिन्बौद्धसमितिः पुरे राजगृहाभिधे ॥२२॥
पञ्चविंशतिवर्षाणि राज्यं कृत्वा मृते ततः ।
अजातशत्रौ तत्पुत्रो दर्शको मगधानशात् ॥२३॥
तावन्त्येव तु वर्षाणि कृतराज्ये गतेऽत्ययम् ।
दर्शके तस्य पुत्रोऽभूदुदयो मगधेश्वरः ॥२४॥
अस्योदयननाम्नापि प्रसिद्धिं केचिदूचिरे ।
वत्सराज इति ख्यात आख्यानेष्वेष भूपतिः ॥२५॥
पाटलिग्रामदुर्गं स पितामहकृतं नृपः ।
चक्रे पाटलिपुत्राख्यं परितो नगरोत्तमम् ॥२६॥
आसन्नचत्वारिंशानि वर्षाणि कृतशासने ।
उदये पञ्चतां याते नृपोभून्नन्दिवर्धनः ॥२७॥
ततः परं महानन्दी नृपतिर्मगधानशात् ।
औपविंशाब्दिकं प्रायः प्रत्येकं राज्यमेतयोः ॥२८॥

बुद्धस्य निर्वाणम् ५५६ (श० पू०)

दर्शकः ५५३-५२८ (श पू०)

उदयनः ५२७-४९१ (श० पू०)

नन्दिवर्धनः ४९०-४७० (श० पू०)

स महापद्मनन्देन राज्यात्पुत्रेण पातितः ।
प्रतिपेदे कालगति महानन्दी दुरत्ययाम् ॥२६॥

नन्देन तस्य पुत्रैश्च पञ्चाशदधिकाः समाः ।
समृद्धिमत्सु विहितं मगधेषु प्रशासनम् ॥३०॥

नन्दानां यवनाध्यक्षोऽलिकचन्द्रः प्रशासने ।
विजित्य पौरवं कंचिद् गन्धारानजयद्बली ॥३१॥

प्राचीं प्रपालितां नन्त्रहृष्ट्वैव (?) जिघृक्षिताम् ।
अनुत्साहहतैः सैन्यैः प्रतस्थे स भुवं निजाम् ॥३२॥

विसृज्य सिन्धुमार्गेण नयार्क पोतनायकम् ।
पारसीकपथेनासौ प्रत्यगाद्विषयं स्वकम् ॥३३॥

प्रायोऽस्मिन्समये वर्षशिष्याद् व्याकरणोत्तमम् ।
दाक्षीपुत्रादभूच्छालातुरीयात्पाणिनेर्मुनेः ॥३४॥

शाकल्यगार्ग्यापिशलिशाकटायनगालवैः ।
भारद्वाजस्फोटपुत्रचाक्रवर्मणकाश्यपैः ॥३५॥

सेनकाद्यैश्च नैरुक्तैर्व्याकृतिज्ञैश्च यत्नतः ।
कृताननुगमान्वीक्ष्याष्टाध्यायीं पाणिनिर्व्यधात् ॥३६॥

संस्कृतं पाणिनेः काले देशभाषाभवज्जने ।
भाषालोकादिशब्दैर्हि संस्कृत स व्यपादिशत् ॥३७॥

व्याकृतिज्ञेन मुनिना पातालविजयाभिधम् ।
कृतं पाणिनिना काव्यमिति केचित्परीक्षकाः ॥३८॥

नैरुक्तानां शाकपूणिप्रभृतीनां मतानि च ।
संगृह्य समयेष्वेषु यास्कश्चक्रे निरुक्तकम् ॥३६॥

कियन्ति पाणिनेः पूर्वं परतोऽप्यपराणि तु ।
काणादादीनि सूत्राणि बभूवुर्दर्शनेष्विह ॥४०॥

महानन्दी ४६६–४४६ (श० पू०)

महापद्मनन्दः ४४८–४०१ (श० पू०)

शिलालिना कृशाश्वेन तथान्यमुनिभिः कृतम् ।
सूत्रजातं वीक्ष्य नाट्यशास्त्रं भरत ऊचिवान् ॥४१॥

नन्दानां समये धीमानभूद्वररुचिः कविः ।
आसीद् व्याकरणे यस्य कवित्वे च मतिः समा ॥४२॥

सुमाल्याद्यैर्महापद्मः पुत्रैरष्टभिरन्वितः ।
मौर्येण चन्द्रगुप्तेन बलेन विनिपातितः ॥४४॥

चतुर्भ्योऽब्दशतेभ्यश्च किंचित्पूर्वं शकाब्दतः ।
नन्दाः स्मृतिपथं नीता बलिना मौर्यभूभृता ॥४५॥

आसीदमात्यश्चन्द्रस्य चाणक्याख्यो महामतिः ।
प्राणैषीदर्थशास्त्रं यो नृपाणामर्थमक्षयम् ॥४६॥

येन[1] शस्त्रं च शास्त्रं च नन्दराजगता च भूः ।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु प्रांशुवीर्येण धीमता ॥४७॥

यस्या[2]भिचारवज्रेण वज्रज्वलनतेजसः ।
पपात मूलतः श्रीमान्सुपर्वा नन्दपर्वतः ॥४८॥
हत्वा नन्दान्विजित्यारींश्चन्द्रगुप्तस्तथापरान् ।
चाणक्यसचिवो राज्यं चिरं चक्रे महामतिः ॥४९॥

शल्यकाद्यवनाधीशाद्बलेन विजितादसौ ।
गान्धारादीन्समाच्छिद्य चक्रवर्त्तित्वमाप्तवान् ॥५०॥
शल्यकप्रहितो राजदूतो मेघस्तनाभिधः ।
चिरं चन्द्रसभामध्यमध्युवास विनीतधीः ॥५१॥

तल्लेखेभ्यस्तथैवार्थशास्त्राच्चाणक्यनिर्मितात् ।
तात्कालिकी स्थितिः प्रायः प्रत्यक्षेव विभाव्यते ॥५२॥
चतुर्विंशतिवर्षाणि राज्यं कृत्वा महाबलः ।
पुत्राय बिन्दुसाराय तद्दत्वा व्यापदं गतः ॥५३॥

चन्द्रगुप्तः ४००-३७७ (श० पू०)

१. चाणक्यस्यार्थशास्त्रे ।   २. कामन्दकस्य नीतिसारे ।

बिन्दुसारः ३७६-३५१ (श० पू०)

विन्दुसारो महासारः प्राप्य राज्यं स पैतृकम् ।
अमित्रघात इत्याख्यां भेजे संख्यावतां वरः ॥५४॥

प्रपाल्य पैतृकं राज्यं सम्यक् षड्विंशति समाः ।
शिशावेव सुते वीरो जगाम स्मृतिशेषताम् ॥५५॥

अशोकवर्धनो राजा बिन्दुसारसुतस्ततः ।
बौद्धं धर्मं समाश्रित्य पालयामास भारतम् ॥५६॥

प्रशस्तयः शिलास्वस्य स्तूपाश्च बहुसंख्यकाः ।
संप्रत्यपि यशोराशि पुष्णन्ति प्रियदर्शिनः ॥५७॥

दुर्बोधं संस्कृतं प्रायोऽशोकस्य समयेऽभवत् ।
प्राकृतैर्विविधैस्तस्मादस्य दृब्धाः प्रशस्तयः ॥५८॥

चत्वारिंशतमब्दानामशोकः शोककर्षणः ।
प्रायः प्रत्यन्तसहिते भारते शासनं व्यधात् ॥५९॥

ततः परं दशरथः संगतश्च तथा नृपः ।
शालिशूको देववर्मा शतधन्वा बृहद्रथः ॥६०॥

षडित्येतेऽभवन्मौर्या निर्वीर्याः प्रायशः क्रमात् ।
अधुश्च मागधं राज्यं षट्चत्वारिंशतं समाः ॥६१॥

चन्द्रगुप्तादिभिर्वीरैरर्जितोर्जितकीर्तिभिः ।
हारितेयं धरा मूढैर्भिक्षुराजसुतैरियम् ॥६२॥

चार्वाकबौद्धजैनाद्यैर्निर्वेदपरमैरथ ।
साम्यं पशुमनुष्याणामुपादिश्यत भारते ॥६३॥

भारतीयेष्वनुद्योगदग्धेषु प्रायशः कलाः ।
यवनान्रोमकांश्चैव पाश्चात्त्येषु समाश्रिताः ॥६४॥

दर्शिताशेषसैन्यश्च बलदर्शनकैतवात् ।
सेनानीः पुष्यमित्रोऽथ निष्पिपेष बृहद्रथम् ॥६५॥

बृहद्रथं विनिष्पिष्य वन्दीकृत्यास्य मन्त्रिणम् ।
इष्टवानश्वमेधेन पुष्यमित्रो महामनाः ॥६६॥

अशोकः २५०–२११ (श० पू०)

दशरथाद्या बृहद्रथान्ताः २१०–२६४ (श० पू०)

चिरादशोकस्याज्ञाभिर्निर्यज्ञां भारतावनिम् ।
पुष्योऽश्वमेधकल्पेन सयज्ञामतनोत्पुनः ॥६७॥
खारवेलं सकालिङ्गं मिलिन्दं यवनं तथा ।
निरस्यति स्म वीर्येण मगधाक्रमणोद्यतौ ॥६८॥
कात्यायनेन कृतिना पाणिनीये सवार्त्तिके ।
संग्रहाख्यां महाव्याख्यां व्याडिश्चक्रे महामतिः ॥६९॥
पातञ्जलं महाभाष्यं संग्रहाब्धिसुधासमम् ।
पुष्यमित्रस्य समये समुदेति स्म भारते ॥७०॥
साकेतमध्यमिकयोर्यवनेनोपरुद्धयोः ।
वर्णनं पुष्यमित्रीययागस्य च पतञ्जलौ ॥७१॥
पुष्यमित्रे गते पाञ्चत्रिंशदब्दिकशासने ।
अग्निमित्रोऽभवद्राजा तस्य पुत्रो महायशाः ॥७२॥
कालिदासोऽग्निमित्रस्य कथामालम्ब्य निर्ममे ।
महाकविर्मालविकाग्निमित्रं विक्रमे नृपे ॥७३॥
अग्निमित्रे यशःशेषे राज्यं कृत्वाष्टवत्सरान् ।
हीनवीर्याः क्रमादष्ट शुङ्गा व्यसनिनोऽभवन् ॥७४॥
सुज्येष्ठो वसुमित्रश्चान्तकश्चैव पुलिन्दकः ।
नृपो घोषवसुर्वज्रमित्रो भागवतस्तथा ॥७५॥
देवभूतिरिति प्रायोऽष्टषष्टि वत्सरान्नृपाः ।
अग्निमित्रात्परं क्षुद्रा अविनीता हतौजसः ॥७६॥
शुङ्गवंश्या धरा दध्रुर्देवभूतिस्तु कामवान् ।
अमात्यवासुदेवेन दासीपुत्र्या विनाशितः ॥७७॥
काण्वो विप्रो वासुदेवो राज्यमेवमवाप्तवान् ।
पञ्चचत्वारिंशतं च समाः काण्वा दधुर्धराम् ॥७८॥
भारतीयान्प्रतीयेष राजदूतान्समादृतः ।
काण्वानां समयेऽगस्त्यो रोमकाणां महीपतिः ॥७९॥

पुष्यमित्र. २६३व२२१ (श० पू०)
अग्निमित्र २२८-२२१ (श० पू०)

हत्वा काण्वं सुशर्माणमान्ध्रैर्दक्षिणदेशजैः ।
प्रायो धृता भूरब्दानां सत्रिषष्टि शतद्वयीम् ॥८०॥
आन्ध्रवंश्यः शातकर्णिर्नृपः शात इति श्रुतः ।
सुशर्माणमशर्माणं व्यधादित्यैतिहासिकाः ॥८१॥
शिप्रुकस्तु सुशर्माणमान्ध्रो निहतवानिति ।
सर्वत्रैव पुराणेषु सुस्पष्टं समुदीरितम् ॥८२॥
शिप्रुकेण प्रकरणं तन्मृच्छकटिकं कृतम् ।
शूद्रकाक्षरनाम्नेति केषांचिद्विदुषां मतम् ॥८३॥
लिम्पतीव तमोऽङ्गानि लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति च ।
अरत्नालोकभेद्यं चेत्याद्या दण्डिकवेर्गिरः ॥८४॥
काव्यादर्शे धृता नूनमलंकाराद्युदाहृतौ ।
शूद्रकात्कालिदासाच्च बाणादिति विदां मतम् ॥८५॥
मौर्याणां समयादान्ध्रनृपाणां बलशालिनाम् ।
श्रीकाकुलपुरी कृष्णातटस्था राजधान्यभूत् ॥८६॥
आन्ध्रयूथाधिनाथास्तेऽक्षौहिणीनामपीश्वराः ।
मूर्ध्न्यधुर्मौर्यसिंहीयं प्रतापनखरं खरम् ॥८७॥
अशोकवर्धने मौर्ये गते तु स्मृतिशेषताम् ।
आन्ध्रावनीभुजो भेजुः स्वातन्त्र्यं दक्षिणापथे ॥८८॥
कालिंगं क्षारवेलं च मगधाक्रमणोद्यतम् ।
प्रोत्साहयांबभूवुस्ते सैन्यसाहाय्यदानतः ॥८९॥
मगधेशं सुशर्माणं बलेन विनिहत्य ते ।
स्वातन्त्र्यनाशनीकारं प्रतिचक्रुः पुरातनम् ॥९०॥
प्रायोऽस्मिन्समयेऽभूवन्भासाद्याः कवयो भुवि ।
कालिदासादिभिर्येषां भूयोऽश्लाघ्यन्त सूक्तयः ॥९१॥
सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥९२॥

सुज्येष्ठाद्या देवभूत्यन्ताः २२०-१५३ (श० पू०)

शिप्रकाद्या हालपूर्वजाः १०७–००२ (श० पू०)

हालः सप्तदशः शिप्रोः शकाब्दोपक्रमेऽभवत् ।
गुणाढ्यस्य कथेवातिदीर्घा यस्य यशःप्रथा ॥६३॥
सातवाहन इत्यस्य नाम विद्वत्सु विश्रुतम् ।
समयेऽस्याद्भुतार्थाभूद् गुणाढ्यस्य बृहत्कथा ॥६४॥
संस्कृतं जनदुर्बोधं वीक्ष्य भूमिपतिः सुधीः ।
प्रबन्धान्कारयामास प्राकृतैरेव भूरिशः ॥६५॥
पाणिनीयं सुदुर्बोधं मत्वा व्याकरणं कृतम् ।
सदस्यैस्तस्य कातन्त्रं सुकुमारधियां कृते ॥६६॥
अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः ।
विशुद्धजातिभिः कोशं रत्नैरिव सुभाषितैः ॥६७॥
गाथासप्तशतीनाम्ना कोशोऽयं प्रथितो भुवि ।
गाथा यत्रोपलभ्यन्ते ध्वनिमर्मविदां प्रियाः ॥६८॥
मौर्येषु क्षीणवीर्येषु क्रमात्पश्चिमभारतम् ।
यवनैश्च शकैश्चाभूत्समाक्रम्य वशीकृतम् ॥६९॥
विलिवायकुलो राजा हालवंश्यो महाबलः ।
संग्रामे विजयं लेभे यवनैः पह्लवैः शकैः ॥१००॥
भूमकक्षहरातस्य नहपानाभिधं सुतम् ।
सौराष्ट्रस्त्त्रपं राजा विलिवायकुलोऽवधीत् ॥१०१॥
चष्टनं चोज्जयिन्यां स निजप्रतिनिधिं व्यधात् ।
सौराष्ट्रमालवादीनां शासने विनियोजितम् ॥१०२॥
विलिवायकुलस्याभूत्पुलुमायी तनूभवः ।
राजधानी प्रतिष्ठानं यस्य गोदावरीतटे ॥१०३॥
सुतां चष्टनपौत्रस्य रुद्रदाम्नः स भूपतिः ।
उपयेमे दक्षमित्राममित्राणां व्यथावहः ॥१०४॥
जिगीषोः श्वशुराल्लेभे पुलुमायी पराभवम् ।
दुहितुश्च कृते तेन विसृष्टः स्वं पुरं ययौ ॥१०५॥

हालः ०१—१५ (श० पू०)

१. वाणस्य हर्षचरिते । २. वाणस्य हर्षचरिते ।

पुरुषाख्ये पुरे राजा कनिष्कोऽत्रान्तरेऽभवत् ।
उत्तरस्यां प्रतापोऽस्य दुःसहोऽभूद्रवेरिव ॥१०६॥
आयुर्वेदर्षयस्तस्य सभायां चरकादयः ।
अश्वघोषादयश्चैव कविमुख्याः प्रथां ययुः ॥१०७॥
रुद्रदामनि सौराष्ट्रमालवादीञ्जयत्यसौ ।
क्रमाद्विजिग्ये कश्मीरतुरुष्कादीन्महाबलः ॥१०८॥
पार्ष्णिग्राहांस्तुरुष्कादीन्कनिष्को जितवान्बलात् ।
जिगीषुः प्रययौ प्राचीं सव्यसाचिपराक्रमः ॥१०९॥
अरुद्धो दुर्बलैर्मार्गे शार्दूल इव जम्बुकैः ।
आस्कन्द्य पाटलिपुरीमश्वघोषं ततोऽनयत् ॥११०॥
विप्रोऽश्वघोषः पौरस्त्यो वसुमित्रस्य शिक्षया ।
बौद्धं धर्मं समाश्रित्य कश्मीरेष्ववसच्चिरम् ॥१११॥
प्रसन्नमधुरं काव्यं प्राणीयत कवीन्दुना ।
अश्वघोषेण बुद्धस्य चरितं करुणोत्तरम् ॥११२॥
पञ्चत्रिंशद्युते याते शकाब्दानां शतत्रये ।
भेजेऽनुवादं बुद्धस्य चरितं चीनभाषया ॥११३॥
कनिष्कसमये प्रायो बौद्धो नागार्जुनोऽभवत् ।
कारिकाश्चक्रिरे येन रम्या माध्यमिके नये ॥११४॥
हुतिनामनि चीनेशे रोमेशे त्रिजने तथा ।
राजदूताः कनिष्केण प्रहिता विश्रुतौजसा ॥११५॥
कनिष्कस्तस्य पुत्रश्च हुविष्कस्तत्सुतस्तथा ।
वासुदेवस्त्रयोप्येतेऽशिषन्नुत्तरभारतम् ॥११६॥
रुद्रादामसुतैरित्थं सौराष्ट्रादौ विनिर्जिते ।
हृते कनिष्कदायादैः क्रमादुत्तरभारते ॥११७॥
सातवाहनवंश्यानामान्ध्राणां राज्यमूर्जितम् ।
सार्धे गते शकाब्दानां व्यशीर्यत शते शनैः ॥११८॥

कनिष्कः ४७—७३ (श० पू०)
हुविष्क. ७४–१७६

नाशं गतेषु शिशुनागकनन्दमौर्य-
शुङ्गान्ध्रवंशमणिषु क्षितिपस्य शोभा ।
वीरान्तरोद्भवमियं प्रतिपालयन्ती
कालं कियन्तमधवा वनितेव तस्थौ ॥११६॥

इति द्वितीया वीचिः ।

वासुदेवे कनिष्कस्य पौत्रे कालगतिं गते ।
नाधिराज्यमभूदत्र कस्याप्यब्दशतं भुवि ॥१॥
अधिराजपदस्यार्थे विलुप्ते नातिविश्रुताः ।
स्वतन्त्राः क्षुद्रसामन्ता ये केचिदभवन्क्वचित् ॥२॥
कनिष्कस्य *कियत्कालात्परं कश्मीरमण्डले ।
अभिमन्युरिति ख्यातो नृपोऽभूद्विबुधाश्रितः ॥३॥
चन्द्राचार्यादिभिर्लब्ध्वा तदादेशं प्रयत्नतः ।
प्रवर्त्तितं महाभाष्यं स्वं च व्याकरणं कृतम् ॥४॥
शतद्वये शकाब्दानामधित्रिंशे गते ततः ।
चन्द्राख्यो गुप्तवंशीयो नृपतिर्मगधानशात् ॥५॥
प्रायश्चन्द्रस्य समये दीपवंशो विनिर्मितः ।
यत्र सिंहलराजानामितिवृत्तं न्यबध्यत ॥६॥
कुमारदेवी तस्यासीद्देवी लिच्छविकन्यका ।
जातः समुद्रगुप्ताख्यो महौजास्तनयस्तयोः ॥७॥
अब्दान्सप्तदश प्राज्यं राज्यं कृत्वा गतेऽत्ययम् ।
चन्द्रे समुद्रो राजाभूदाजानुविलसद्भुजः ॥८॥
प्रशस्तिरधुनाप्यस्य हरिषेणविनिर्मिता ।
प्रयागदुर्गेऽशोकस्य शिलायामवलोक्यते ॥९॥
समये प्रहितस्तस्य कंसतन्तुमहीभुजे ।
भारतीयो राजदूतः कंसतन्तुपुरीमगात् ॥१०॥
पुष्पाह्वयं पुरं पूर्वं साकेताख्यं पुरं ततः ।
समुद्रगुप्तराज्यस्य राजधानीं विदुर्बुधाः ॥११॥

---

*अभिमन्युः द्वितीये शतके　　चन्द्रः २३०-२४७

विजित्य भारतं सर्वं काम्बोजैः कृतसंधिकः ।
पूजितो मेघवर्णेन सिंहलेशेन भूपतिः ॥१२॥
इष्टवानश्वमेधेन राज्यं पञ्चाशतं समाः ।
समुद्रगुप्तः संपाल्य प्रयातः स्मृतिशेषताम् ॥१३॥
न[1] किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः ।
व्यावृत्ता यत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता ॥१४॥
चन्द्रगुप्तोऽस्य तनयो दत्तदेवीतनूभवः ।
जगाम विक्रमादित्यनाम्ना ख्यातिं महीतले ॥१५॥
सिन्धोः पारे स बाह्लीकान्सौराष्ट्रे शकसत्रपान् ।
विजित्य भारतस्यासीदेकच्छत्रो महीपतिः ॥१६॥
यथा[2] प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥१७॥
राजन्वती धरा तेन सतामप्यन्यभूभुजाम् ।
ताराग्रहादियुक्तापि रात्रिर्ज्योतिष्मतीन्दुना ॥१८॥
विक्रमे विक्रमाङ्कस्य भारतं परिरक्षति ।
चीनः फाहियनाख्योऽत्र तीर्थयात्रार्थमागतः ॥१९॥
अन्विष्यन्विनयाख्यं स पिटकं मथुरापुरे ।
कान्यकुब्जेषु यत्नेन श्रावस्त्यां कपिले ततः ॥२०॥
कुशीनगरवैशालिकाशीपाटलिषु भ्रमन् ।
ताम्रलिप्त्यां सिंहले च यवद्वीपे ततो वसन् ॥२१॥
बुद्धभद्रसखोऽप्यासीच्चीनान्सुचरितप्रियः ।
लिलेख च स्वयात्राणामितिवृत्तं महामनाः ॥२२॥
सुधीः सोऽपि स्वलेखेषु गुप्तराज्यस्य भारते ।
सुरक्षितस्य सर्वत्र शश्वन्निर्दस्युतां जगौ ॥२३॥
समये विक्रमाङ्कस्य कालिदासमहाकविः ।
रघुवंशादिकाव्यानि कल्पस्थायीनि निर्ममे ॥२४॥

समुद्रगुप्तः २४८—२९६
चन्द्रगुप्तविक्रमाङ्कः २९७—३०४

१. कालिदासस्य रघुवंशे   २. कालिदासस्य रघुवंशे ।

भासशूद्रकसौमिल्लप्रमुखैः पूर्वसूरिभिः ।
कालिदासो नवीचक्रे क्षुण्णां नाटकपद्धतिम् ॥२५॥
नाडिंधमोऽमरुकविः शृङ्गारकवितागुरुः ।
शृङ्गारशतकं चक्रे चन्द्रगुप्ते प्रशासति ॥२६॥
समुद्रगुप्ते तत्सत्रे चन्द्रगुप्ते च शासति ।
जीर्णोद्धारः पुराणानां स्मृतीनां च व्यधीयत ॥२७॥
सति पाटलिसाकेतोज्जयिन्याख्ये पुरत्रये ।
राजधानीत्वयोग्येऽभूच्चन्द्र उज्जयिनीप्रियः ॥२८॥
अष्टत्रिशतमब्दानामद्वितीयातपत्रकम् ।
षरिपाल्योर्जितं राज्य शकशत्रुर्गतोऽत्ययम् ॥२९॥
समयेष्वेष्वभूद्धीमान्दिङ्नागो बौद्धतार्किकः ।
निरास्थत्पक्षिलन्यायं यः प्रमाणसमुच्चये ॥३०॥
दिङ्नागस्याभवत्प्रत्यादेष्टा तस्मात्कियत्परम् ।
न्यायवार्त्तिककृद्विद्वानुद्योतकरनामकः । ३१॥
महानाम्नो गयास्थायां प्रशस्तौ दृश्यते स्फुटम् ।
लेखे दशपुरीये च कुमारस्य समानता ॥३२॥
कालिदासीयपद्यानामिति साहित्यविन्मतम् ।
एतत्कालिकमाहुस्तमतोऽपि सुपरीक्षकाः ॥३३॥
कुमारगुप्तः पुत्रोऽभूद्विक्रमादित्यभूभुजः ।
योऽरीनमारयद्वीरः कौमारेऽप्यमरोपमः ॥३४॥
दिङ्नागस्य गुरुर्धीमान्वसुबन्धुरिति श्रुतः ।
विक्रमादित्यपुत्रस्य वृद्धामात्योऽभवच्चिरम् ॥३५॥
कालिदासः कविः श्रीमान्विक्रमादित्यभूभुजः ।
अंशतस्तत्सुतस्यापि कालेऽभूदिति केचन ॥३६॥
प्रायः कुमारगुप्तस्य समयेऽद्भुतशक्तिभाक् ।
कथां वासवदत्ताख्यां सुबन्धुर्विनिबद्धवान् ॥३७॥
अस्मिंश्च समये काव्यं जानकीहरणं व्यधात् ।
कुमारदासो नृपतिः प्रथितः सिंहलेश्वरः ॥३८॥

जानकीहरणं कर्त्तुं रघुवंशे स्थिते सति ।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ ॥३९॥
शकारिसूनुर्वसुधां त्रिचत्वारिंशतं समाः ।
प्रपाल्य विधिवद्वीरो जगामालेख्यशेषताम् ॥४०॥
सुतोऽभूत्स्कन्दगुप्तोऽस्य हूणवंशदवानलः ।
नलोपमः शरीरेण रैणुकेय इवौजसा ॥४१॥
स्कन्दगुप्तस्य समये जातः कुसुमपत्तने ।
ज्योतिर्विदग्रणीर्लल्लगुरुरार्यभटाभिधः ॥४२॥
महानाम्नो महावंशो दीपवंशानुगोऽभवत् ।
इतिहासः सिंहलानां स्कन्दगुप्ते प्रशासति ॥४३॥
नैकवारान्विजिग्येऽसौ हूणांस्तूलमिवानलः ।
विजये च विनीतात्मा बह्विष्टापूर्त्तमाचरत् ॥४४॥
पर्णदत्तः सुराष्ट्रेषु तेन शास्ता नियोजितः ।
सुदर्शनं नवीचक्रे यत्सुतश्चक्रपालितः ॥४५॥
अन्तर्वेद्यां सर्वनागः कृतस्तेन प्रशासकः ।
इत्थं प्रशास्तृभिः सर्वं भारतं प्रशशास सः ॥४६॥
स्कन्दगुप्ते यशःशेषे हूणैर्बलमदोद्धतैः ।
उपद्रुता भारतभूरशान्त्या पीडिता चिरम् ॥४७॥
चतुर्विंशतिमब्दानां कृतराज्ये मृते ततः ।
स्कन्दगुप्तेऽस्य पुत्रोऽभूत्पुरगुप्तो महीपतिः ॥४८॥
प्रकाशादित्य इत्यन्यामाख्यां दधदसौ नृपः ।
विशुद्धस्वर्णमुद्राणां प्रचारमकरोद्भुवि ॥४९॥
स्थिरगुप्ताभिधाप्यस्य दृश्यते यत्रकुत्रचित् ।
वत्सदेवी बभूवास्य धर्मपत्नी महामतेः ॥५०॥
कृत्वा पाञ्चाब्दिकं राज्यं पुरगुप्ते गतेऽत्ययम् ।
तत्पुत्रो नरसिंहोऽभून्महादेवीपतिर्नृपः ॥५१॥

कुमारगुप्तः ३३५—३७६
स्कन्दगुप्तः ३७७—४०१
पुरगुप्तः ४०२—४०६

राजदूता भारतीयाः कंसतन्तुपुरं ययुः ।
नरसिंहस्य समये प्रहिता रोमभूभुजे ॥५२॥
ज्योतिर्विदस्य समये पञ्चसिद्धान्तिकां सुधीः ।
तथा बृहत्संहितां च वराहमिहिरो व्यधात् ॥५३॥
वराहमिहिरात्किंचिदर्वाचीनोऽभवत्सुधीः ।
ब्रह्मगुप्ताभिधो ब्रह्मसिद्धान्तं प्रणिनाय यः ॥५४॥
म्लेच्छान्धतमसादित्यो बालादित्यापराभिधः ।
नरसिंहो दधे राज्यं पञ्चोनार्धशताब्दिकम् ॥५५॥
त्वरमाणाख्यहूणोऽथ शाकलस्य नृपो बली ।
मध्यभारतमाक्रामन्नरसिंहेन निर्जितः ॥५६॥
अथ[1] म्लेच्छगणाकीर्णे मण्डले चण्डविक्रमः ।
त्वरमाणस्य मिहिरकुलः पुत्रोऽभवन्नृपः ॥५७॥
सांनिध्यं यस्य सैन्यान्तर्हन्यमानाशनोत्सुकान् ।
अजानन्गृध्रकंकादिन्दृष्ट्वाग्रे धावतो जनाः ॥५८॥
दिवाराजं हतप्राणिसहस्रपरिवारितः ।
योऽभूद्भूपालवेतालो विलासभवनेष्वपि ॥५९॥
बालेषु करुणा स्त्रीषु घृणा वृद्धेषु गौरवम् ।
न बभूव नृशंसस्य यस्य घोराकृतेर्नृतः ॥६०॥
स जातु देवीं संवीतसिंहलांशुककञ्चुकाम् ।
हैमपादाङ्कितकुचां दृष्ट्वा जज्वाल मन्युना ॥६१॥
सिंहलेषु नरेन्द्राङ्घ्रिमुद्रांकः क्रियते पटः ।
इति कञ्चुकिना पृष्टेनोक्तो यात्रामदात्ततः ॥६२॥
तत्सेनाकुम्भिदानाम्भोनिम्नगाकृतसंगमः ।
यमुनालिंगनप्रीतिं प्रपेदे दक्षिणार्णवः ॥६३॥
स सिंहलेन्द्रेण समं संरम्भादुदपाटयत् ।
चिरेण चरणस्पृष्टप्रियालोकनजां रुषम् ॥६४॥

---

१. ५७—६९ कल्हणस्य राजतरङ्गिण्याम्
नरसिंहगुप्तः (बालादित्यः) ४०६—४४२
मिहिरकुलः ४३२—४६२

दूरात्तत्सैन्यमालोक्य लंकासौधैर्निशाचराः ।
भूयोऽपि राघवोद्योगमाशङ्क्य प्रचकम्पिरे ॥६५॥

व्यावृत्त्य चोलकर्णाटलाटादींश्च नरेश्वरान् ।
सिन्धुरानिव गन्धेभो गन्धेनैव व्यदारयत् ॥६६॥

तस्मिन्प्रयाते प्राप्तेभ्यः शशंसुस्तत्पराभवम् ।
नगर्यो नरनाथेभ्यस्त्रुट्यदट्टालमेखलाः ॥६७॥

काश्मीरं द्वारमासाद्य श्वभ्रभ्रष्टस्य दन्तिनः ।
श्रुत्वा स त्रासजं घोषं तोषरोमाञ्चितोऽभवत् ॥६८॥

तदाकर्णनसंरम्भे सहर्षोऽथ विरुद्धधीः ।
शतमन्यद् गजेन्द्राणां हठेन निरलोठयत् ॥६९॥

क्रूरक्रियोऽसौ मिहिरः पशुमारममारयत् ।
आर्यसिंहादिकान्बौद्धानन्धो बलमदादधीः ॥७०॥

जातुचिद्यातुधानाभो नभो धूसरयन्नसौ ।
उपदुद्राव मिहिरकुलो मगधकोसलान् ॥७१॥

स्कन्दगुप्तस्य वंश्येन बालादित्येन भूभुजा ।
मालवेशयशोधर्मदेवेन च स निर्जितः ॥७२॥

निष्पिष्य हूणान्मिहिरकुलो वन्दीकृतोप्यसौ ।
बालादित्येन कृपया मुक्तः कश्मीरकानगात् ॥७३॥

चिरराात्राय भुक्त्वा स भुवं भूलोकभैरवः ।
भूरिरोगार्दितवपुः प्राविशज्ज्ञातवेदसम् ॥७४॥

प्रजापुण्योदयैस्तीव्रैस्तस्य क्षयमुपेयुषः ।
प्रपौत्रो वसुनन्दोऽभूत्प्रख्यातः स्मरशास्त्रकृत् ॥७५॥

कालेनाल्पेन मिहिरकुलकुल्यैर्नयातिगैः ।
हारिते विपुले राज्ये चिन्तां सुसचिवा ययुः ॥७६॥

अथ प्रतापादित्याख्यस्तैरानीय दिगन्तरात् ।
विक्रमादित्यभूभर्तुर्बन्धू राज्येऽभ्यषिच्यत ॥७७॥

यशोधर्मदेवः (प्रायो बालादित्यसमकालिक.)

ततः प्रतापादित्यस्य पौत्रः कश्मीरभूपतिः ।
देव्या वाक्पुष्टया सार्धं तुञ्जीनोऽरञ्जयत्प्रजाः ॥७८॥
नाट्यं सर्वजनप्रेक्ष्यं यश्चक्रे स महाकविः ।
द्वैपायनमुनेरंशस्तत्काले चन्द्रकोऽभवत् ॥७९॥

अथ कालेनोज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षापराभिधः ।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥८०॥
नागादिगन्तराख्यातं गुणवत्सुलभं नृपम् ।
तं कविर्मातृगुप्ताख्यः सभास्थानस्थमासदत् ॥८१॥

स सेवमानो नृपतिमुद्योगेन बलीयसा ।
अनिर्विण्णो मातृगुप्तः षड्तूनत्यवाहयत् ॥८२॥
चिरसेवनसंतुष्टो हर्षविक्रमभूपतिः ।
मातृगुप्ताय कश्मीरमण्डलस्वामितां ददौ ॥८३॥

हर्षविक्रमकालेऽभूत्पारसीकोऽनुशीलवान् ।
पञ्चतन्त्रानुवादं य. स्वविद्वद्भिरकारयत् ॥८४॥
लब्ध्वाथ विक्रमादित्यात्कश्मीरस्वामितां कविः ।
पितेव पालयामास मातृगुप्तः प्रजा निजाः ॥८५॥

हयग्रीववधं मेण्ठस्तदग्रेऽदर्शयन्नवम् ।
आसमाप्ति ततो नापत्साध्वसाध्विति वा वचः ॥८६॥
अथ ग्रथयितुं तस्मिन्पुस्तकं प्रस्तुते न्यधात् ।
लावण्यनिर्याणभिया तदधः स्वर्णभाजनम् ॥८७॥

अन्तरज्ञतया तस्य तादृश्या कृतसत्कृतिः ।
भर्तृमेण्ठः कविर्मेने पुनरुक्तं श्रियोऽर्पणम् ॥८८॥

त्रिगर्त्तानां भुवं जित्वा कदाचिद् भूपतिर्व्रजन् ।
विक्रमादित्यमश्रृणोत्कालधर्ममुपागतम् ॥८९॥
तस्मिन्नहनि भूभर्त्रा शोकान्निःश्वसतानिशम् ।
नास्नायि नाशि नास्वापि स्थितेनावनताननम् ॥९०॥

मातृगुप्तः षष्ठे शतके

१. ७७—८२ कल्हणस्य राजतरङ्गिण्याम् ।

अथ वाराणसीं गत्वा कृतकाषायसंग्रहः ।
सर्वं संन्यस्य निर्विण्णो मातृगुप्तोऽभवद्यतिः ॥९१॥
वीरः प्रवरसेनाख्यः पूर्वराजकुलांकुरः ।
मातृगुप्ते प्रव्रजिते कश्मीराणां नृपोऽभवत् ॥९२॥
राजा[1] प्रवरसेनोऽथ नमयन्नवनीश्वरान् ।
अकृच्छ्रलभ्याः ककुभो वृद्धस्य यशसो व्यधात् ॥९३॥
शुष्यत्तमालपत्राणि शीर्णतालीदलानि च ।
तत्सेनार्णवतीराणि चक्रेऽरिस्त्रीमुखानि च ॥९४॥
वितस्तायां स भूपालो बृहत्सेतुमकारयत् ।
ख्याता ततःप्रभृत्येव तादृङ्नौसेतुकल्पना ॥९५॥
सिंहासनं स्ववंश्यानां तेनाहितहृतं ततः ।
विक्रमादित्यवसतेरानीतं स्वपुरं पुनः ॥९६॥
कीर्तिः[2] प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ॥९७॥
वैरिनिर्वासितं पित्र्ये विक्रमादित्यजं न्यधात् ।
राज्ये प्रतापशीलं स शीलादित्यापराभिधम् ॥९८॥
प्रायोऽस्मिन्समये राजा श्रीप्रभाकरवर्धनः ।
प्रतापशीलान्याख्योऽभूत्स्थाण्वीश्वरपुरेश्वरः ॥९९॥
अथ प्रतापशीलस्य राज्ञो देवी यशोमती ।
सुषुवे तनयौ राज्यवर्धनं हर्षवर्धनम् ॥१००॥
पितर्युपरते राज्यवर्धनो मालवैः सह ।
युध्यमानः शशाङ्केन गौडेशेन हतश्छलात् ॥१०१॥
निहते कान्यकुब्जेशे ग्रहवर्मणि मालवैः ।
वन्दीकृतास्य राज्यश्रीर्भार्या हर्षस्वसा बलात् ॥१०२॥

प्रवरसेनः षष्ठे शतके

१. ९३—९६ कल्हणस्य राजतरङ्गिण्याम् ।

२. बाणस्य हर्षचरिते ।

प्रभाकरवर्धनः ५०७—५२६

हर्षवर्धनः ५२८—५६८

पलाय्य बन्धनाद्विन्ध्यकानने भ्रमति स्म सा ।
देवतेव वनस्योग्रदावानलभयद्रुता ॥१०३॥
स्वसारं गहनेऽन्विष्य शात्रवेभ्योऽतिवाह्य च ।
जित्वा शशांकं गौडेशं हर्षो निवृतिमाप्नवान् ॥१०४॥
वलभ्या ध्रुवसेनं स नेपालांश्चोग्रविक्रमः ।
जितवान्नर्मदापारे निरस्तः पुलकेशिना ॥१०५॥
स[1] चित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीपतिः ।
कृतीव मृगयुश्चक्रे योगं बाणमयूरयोः ॥१०६॥
भट्टारहरिचन्द्रेण तथा क्षुण्णं सुबन्धुना ।
गद्यमार्गं नवीचक्रे बाणो हर्षसभामणिः ॥१०७॥
सभायां हर्षदेवस्य तीर्थयात्रार्थमागतः ।
मतिमान्हयशुङ्गाख्यश्चीनश्चक्रे चिरं स्थितिम् ॥१०८॥
प्रयागे धार्मिकाणां या हर्षेण समितिः कृता ।
उपस्थितोऽभवत्तत्र हयशुङ्गो महामतिः ॥१०९॥
अस्मिश्च समये वृत्तिं काशिकाख्यां प्रणिन्यतुः ।
तौ वामनजयादित्यौ पाणिनीये सुविश्रुताम् ॥११०॥
रत्नावली तथा नागानन्दं च प्रियदर्शिकाम् ।
रूपकत्रितयं चक्रे श्रीहर्षो निपुणः कविः ॥१११॥
वलभीशो हर्षकाले शीलादित्यो नृपोऽभवत् ।
स शत्रुञ्जयमाहात्म्यं चक्रे यस्मै धनेश्वरः ॥११२॥
हर्षस्य समये टीकां दुर्विनीतो विनिर्ममे ।
काव्ये किरातार्जुनीये विद्वान्भारविनिर्मिते ॥११३॥
श्रीहर्षनृपतेः प्रायः समकालभवोऽभवत् ।
प्रवीरः पुलकेशाख्यो दाक्षिणात्यो नराधिपः ॥११४॥
निरस्तो यस्य वीर्येण हर्षः सत्त्वोद्धतोऽप्यसौ ।
नर्मदां लंघयामास न वेलामिव तोयधिः ॥११५॥

---

१. परिमलस्य साहसाङ्कचरिते ।

पुलकेशी ५३१—५७६

आदित्यसेनाच्च गते काले कियति मागधम् ।
राज्यं वङ्गाधिपैः पालैस्तद्वंश्येभ्यो व्यलुप्यत ॥६॥
अत्रान्तरे च कर्कोटवंश्या भूरिपराक्रमाः ।
कश्मीरमण्डले भूपा अजायन्त जिगीषवः ॥७॥
प्रजाप्रियोऽभवत्तेषां चन्द्रापीडमहीपतिः ।
यस्य राज्याभिषेकोऽभूद्भूवाधिरसवत्सरे ॥८॥
चन्द्रापीडानुजो जातो ललितादित्यभूपतिः ।
मुक्तापीड इति ख्यात यस्य नामापरं भुवि ॥९॥
नयाञ्जलिषु[1] बद्धेषु राजाभिविजयोत्सवे ।
पार्थिवः पृथुविक्रान्तिर्युधि क्रोधं मुमोच यः ॥१०॥
विनिःसरज्जनतया भयाद्गर्भानिवामुचन् ।
द्विषां वसतयो यस्य निशम्यास्कन्ददुन्दुभिम् ॥११॥
क्षिति प्रदक्षिणयतो रवेरिव महीपतेः ।
जिगीषोः प्रायशो यस्य यात्रास्वेव वयो ययौ ॥१२॥
करं पूर्वदिशो गृह्णन्प्रतापानलसंनिधौ ।
अन्तर्वेद्यां महाराजः स्वकीर्त्युष्णीषभृद्बभौ ॥१३॥
यशोवर्माद्रिवाहिन्याः क्षणात्कुर्वन्विशोषणम् ।
नृपतिर्ललितादित्यः प्रतापादित्यतां ययौ ॥१४॥
मतिमान्कान्यकुब्जेन्द्रः प्रत्यभात्कृत्यवेदिनाम् ।
दीप्तं यल्ललितादित्यं षष्ठं दत्त्वा न्यषेवत ॥१५॥
कविवाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥१६॥

वरसेनः ५६३—५७२

आदित्यसेनगुप्त ५६८—५६४

चन्द्रापीडः ६४१—६५४

ललितादित्यः (मुक्तापीडः) ६५५—६८२

१. १०—२३ कल्हणस्य राजतरङ्गिण्याम् ।

यशोवर्मा प्रायो मुक्तापीडसमकालिकः

यशोवर्माणमुल्लंघ्य हिमाद्रिमिव जाह्नवी ।
सुखेन प्राविशत्तस्य वाहिनी पूर्वसागरम् ॥१७॥
वनराजिश्यामलेन दिशं वैवस्वतांकिताम् ।
स प्रतस्थेऽब्धितारेण तत्कृपाणेन तु द्विपः ॥१८॥
तस्योध्वजूटाः कर्णाटाः कृतप्रणतयोऽनयन् ।
सुवर्णकेतकीमत्यक्त्वा प्रतापमवतंसताम् ॥१९॥
पश्चिमाद्रेर्मरुद्भ्यस्तवीचेराविर्भवन्त्यभूत् ।
द्वारका तस्य सैन्यानां प्रवेशौत्सुक्यदायिनी ॥२०॥
सर्वतोदिक्कमालोक्य जितप्रायांस्ततो नृपान् ।
स प्राविशत्सुविस्तीर्णमपथेनोत्तरापथम् ॥२१॥
आ कामरूपविषयादा तुरुष्कभुवस्तथा ।
जित्वोत्तरापथं राजा प्रत्यगाद्विषयान्निजान् ॥२२॥
अखण्डिताश्मप्राकारं प्रासादान्तर्व्यधत्त सः ।
मार्त्तण्डस्याद्भुतं राजा द्राक्षास्फीतं च पत्तनम् ॥२३॥
ललितादित्यनृपतेः समये बौद्धतापदात् ।
मीमांसावार्त्तिकान्यासन्भट्टपादकुमारिलात् ॥२४॥
भवभूतेः कियन्मात्रमर्वाचीनो महाकविः ।
मुरारिर्नाटकं रम्यं प्राणैषीदनर्घ्यराघवम् ॥२५॥
ललितादित्यनृपतेः पौत्रः शत्रुनिबर्हणः ।
राजा श्रीमाञ्जयापीडः प्राप राज्यं ततः क्रमात् ॥२६॥
देशान्तरादागमय्य[1] व्याचक्षाणान्क्षमापतिः ।
प्रावर्त्तयत विच्छिन्नं महाभाष्यं स्वमण्डले ॥२७॥
क्षीराभिधाच्छब्दविद्योपाध्यात्संभृतश्रुतः ।
बुधैः सह ययौ वृद्धिं स जयापीडपण्डितः ॥२८॥
विद्वान्दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः ।
भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमीभर्तुः सभापतिः ॥२९॥
स दामोदरगुप्ताख्यं कुट्टनीमतकारिणम् ।
कविं कविं बलिरिव धुर्यं धीसचिवं व्यधात् ॥३०॥

जयापीडः ७०१—७३०

१. २७—३१ कल्हणस्य राजतरङ्गिण्याम् ।

मनोरथः शङ्खदत्तश्चटकः संधिमांस्तथा ।
बभूवुः कवयस्यस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः ॥३१॥
वामनात्किंचिदर्वाचो जज्ञे दण्डिमहाकवेः ।
कथा दशकुमाराख्या काव्यादर्शश्च विश्रुतः ॥३२॥
जयापीडस्य समये शंकरः केरलेष्वभूत् ।
मायावादपरं भाष्यं ब्रह्मसूत्रेषु योऽकरोत् ॥३३॥
हलायुधोऽस्मिन्कालेऽभूत्कविः कविरहस्यकृत् ।
सूरिश्च जिनसेनाख्यः स जैनहरिवंशकृत् ॥३४॥

मूकः पञ्चशती चक्रे प्रायोऽस्मिन्समये कविः ।
भल्लटश्च व्यधात्स्वीयं शतकं विदुषा मतम् ॥३५॥
शिशुपालवधं चक्रे माघोऽस्मिन्समये कविः ।
अन्येऽपि बहवोऽभूवन्कवयः कान्तकीर्तयः ॥३६॥

ललितापीडनामाभूत्ततो वसुमतीपतिः ।
देव्यां दुर्गाभिधायां यो जयापीडादजायत ॥३७॥
कल्याणदेव्यां संजातो जयापीडमहीभुजः ।
संग्रामापीडनामाथ बभूव भुवनेश्वरः ॥३८॥

श्रीचिप्पटजयापीडो बृहस्पत्यपराभिधः ।
ललितापीडजो राजा शिशुदेश्यस्ततोऽभवत् ॥३९॥
रत्नाकरः कविर्यस्यानुजीवी काव्यमुत्तमम् ।
हरस्य विजयं चक्रे काश्मीरकजनप्रियम् ॥४०॥
धर्मपालसदस्यश्च भट्टनारायणः कविः ।
कालेऽस्मिन्नाटकं चक्रे वेणीसंहारनामकम् ॥४१॥
अभिनन्देन कालेऽस्मिन्हारवर्षसभाजुषा ।
कृतः कादम्बरीसारो रामस्य चरितं तथा ॥४२॥
पद्मोत्पलककल्याणमम्मधर्मैः स मातुलैः[1] ।
बालकः पाल्यमानोऽभूत्पृथिवीभोगभागिभिः ॥४३॥

चिप्पटजयापीड. अष्टमे शतके

१, ४३-४१ कल्हणस्य राजतरङ्गिण्याम् ।

निरंकुशं चेष्टमानाः शनकैस्त्यक्तशैशवात् ।
ते स्वस्रीयान्नृपान्नाशमकुलीनाः शशंकिरे ॥८४॥
अथाभिचारक्रियया मिथः संमन्त्र्य पापिभिः ।
राज्येच्छया तैः स्वस्रीयः स्वामी च सनृपो हृतः ॥४५॥
सापत्यास्ते बुभुजिरे राज्यं स्वामिविवर्जितम् ।
निर्जने महिषं शान्तं मिथः सेर्ष्या वृका इव ॥४६॥
तेषामाक्रान्तदेशाना नाममात्रमहीपतीन् ।
तांस्तान्कर्तुमसामान्यान्विरोधोऽन्योन्यमुद्ययौ ॥४७॥
अथ मम्मोत्पलकयोरुदभूद्दारुणो रणः ।
रुद्धप्रवाहा यत्रासीद्वितस्ता सुभटैर्हतैः ॥४८॥
कविर्बुधमनःसिन्धुशशांकः शंकुकाभिधः ।
यमुद्दिश्याकरोत्काव्यं भुवनाभ्युदयाभिधम् ॥४९॥
सचिवैरथ धीमद्भि प्रजाविप्लवशान्तये ।
उत्पलस्यावन्तिवर्मा पौत्रो राज्येऽभ्यषिच्यत ॥५०॥
अवन्तिवर्मा [1]साम्राज्यं प्राप्य पाटितकण्टकः ।
चकार चरितैश्चित्रं सतां कण्टकितं वपुः ॥५१॥
विच्छिन्नप्रसरा विद्या तस्य शूरेण मन्त्रिणा ।
सत्कृत्य विदुषः सभ्यान्कश्मीरेष्ववतारिता ॥५२॥
युग्यैः क्षितिभुजां योग्यैरुह्यमाना महर्द्धयः ।
बुधाः प्रवृद्धसत्कारा विविशुर्भूपतेः सभाम् ॥५३॥
मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः ।
प्रथां रत्नाकरश्चागात्साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥५४॥
अनुग्रहाय लोकानां भट्टश्रीकल्लटादयः ।
अवन्तिवर्मणः काले सिद्धा भुवमवातरन् ॥५५॥
जयापीडे क्रमाद्याते स्वल्पवीर्येषु राजसु ।
सलिलोपप्लवैरासन्कश्मीराः समुपद्रुताः ॥५६॥

अवन्तिवर्मा ७७७—८०४

१. ५१—५२ कल्हणस्य राजतरङ्गिण्याम् ।

अवन्तिवर्मणः[1] पुण्यैर्जन्तूञ्जीवयितुं ततः ।
स्वयमन्नपतिः श्रीमान्सूर्यः क्षितिमवातरत् ॥५७॥
यत्र यत्र विवेदौघवेधं सलिलविप्लवे ।
तत्र तत्र वितस्तायाः प्रवाहान्नूतनान्व्यधात् ॥५८॥
जम्बालांका स्फुरन्मीना भूर्बभौ सलिलोज्झिता ।
व्यक्तकार्ष्ण्या सनक्षत्रा निर्मेघेव नभस्थली ॥५९॥
स्फुरत्तरंगजिह्वाः स नदीर्मार्गमजिग्रहत् ।
तास्ताः स्वेच्छानुसारेण मांत्रिकः पन्नगीरिव ॥६०॥
उद्धृत्य सलिलादुर्वीमिवमादिवराहवत् ।
अनेकजनसंकीर्णान्ग्रामान्नानाविधान्व्यधात् ॥६१॥
भट्टनारायणो धीमान् रुद्रटाद्यास्तथापरे ।
प्राय एतेषु कालेषु बहवः कवयोऽभवन् ॥६२॥
अवन्तिवर्मणः प्रायो नृपस्य समकालिकः ।
कान्यकुब्जेश्वरो भोजमिहिरोऽभून्महाबलः ॥६३॥
अस्य चादिवराहाख्यां बिभ्रतः समये कविः ।
विशाखदेवः कृतवान्मुद्राराक्षसनाटकम् ॥६४॥
प्रायोऽस्मिन्समये श्लेषकविर्भट्टत्रिविक्रमः ।
दमयन्तीकथां चक्रे नलचम्पूपराभिधाम् ॥६५॥
तनयस्तस्य नृपतिर्महेन्द्रसमविक्रमः ।
अभून्महेन्द्रपालाख्यो वाङ्मयाम्भोधिचन्द्रमाः ॥६६॥
कविः कर्पूरमञ्जर्या बालरामायणस्य च ।
उपाध्यायो महेन्द्रस्य समभूद्राजशेखरः ॥६७॥
महेन्द्रपालपुत्रेऽथ महीपाले प्रशासति ।
आर्यक्षेमीश्वरश्चक्रे चण्डकौशिकनाटकम् ॥६८॥
व्यापन्नेऽवन्तिनृपतौ वीरे कश्मीरमण्डलम् ।
नृपः शंकरवर्माख्यः प्रशशास तदात्मजः ॥६९॥

---

१. ५७—६१ कल्हणस्य राजतरङ्गिण्याम् ।
भोजमिहिरः ७८४—८२४
महेन्द्रपालः ८२५—८३८
महीपालः ८३९—८६९

तस्य[1] श्रीस्वामिराजस्य तनयोदक्पथप्रभोः ।
पूर्णिमेव क्षपाबन्धोः सुगन्धाख्याभवत्प्रिया ॥७०॥
तया समं पुरवरे सुरराजोपमो नृपः ।
स्वीये शंकरगौरीशसुगन्धेशौ विनिर्ममे ॥७१॥
द्विजस्तयोर्नायकाख्यो गौरीशसुरसद्मनोः ।
चातुर्विद्यः कृतस्तेन वाग्देवीकुलमन्दिरम् ॥७२॥
समयेष्वेषु च प्रायो विचित्रप्रतिभाभृता ।
सूरिवादीभसिंहेन गद्यचिन्तामणिः कृतः ॥७३॥
कालधर्मं गते तस्मिन्नृपे शंकरवर्मणि ।
सुगन्धाया अविनयाद्राज्यतन्त्रं व्यशीर्यत ॥७४॥
तुञ्जीनचन्द्रापीडादिप्रजापालप्रियाः प्रजाः ।
पार्थपंग्वादिभिरथ क्षपिता राजराक्षसैः ॥७५॥
ईदृशैर्नृपवेतालैर्भारते भारपीडिते ।
तुरुष्को मोहमोदाख्यः क्षते क्षारवदाययौ ॥७६॥
अनेकवारानुन्मत्तो वारणः कलमानिव ।
उपदुद्राव विषयान्भारतीयान्स दुर्ग्रहः ॥॥७७॥
मथुरासोमनाथादितीर्थान्यर्थैकलोलुपः ।
लुलुण्ठ मूर्त्तिप्रासादवेदिकादिविनाशकः ॥७८॥
गांगेयदेवश्चेदीशः कञ्चित्कालं ततो बली ।
सामन्तैर्भारतस्यासीत्पूजितश्चक्रवतिवत् ॥७९॥
कालेऽस्मिन्मालवेशोऽभून्मुञ्जः सीयकसंभवः ।
यस्य वाक्पतिराजाख्या विद्वद्गोष्ठीषु विश्रुता ॥८०॥
अतीते[2] विक्रमादित्ये गतेऽस्तं सातवाहने ।
कविमित्रे विशश्राम यस्मिन्देवी सरस्वती ॥८१॥
चोलकेरलकर्णाटलाटचेदिजयोर्जितः ।
चालुक्याहवमल्लेन हतः सीयकनन्दनः ॥८२॥

---

१. ७०—७२ कल्हणस्य राजतरङ्गिण्याम् ।
वाक्पतिराजः ८१४—११६
२. परिमलस्य साहसाङ्कचरिते ।

कृतं मुञ्जमहीपालगोष्ठीरत्नेन धीमता ।
धनञ्जयेन नाट्यस्य विषये दशरूपकम् ॥८३॥

धनञ्जयेन सुधिया निबद्धे विदुषां मते ।
व्याख्यां चक्रेऽवलोकाख्यां धनिको दशरूपके ॥८४॥

प्रायो मुञ्जस्य समये नृगराजस्य कस्यचित् ।
सदस्यो दर्शनाभिज्ञो वाचस्पतिरभूत्सुधीः ॥८५॥

नृपो वाक्पतिराजस्यानुजन्मा मानिनां वरः ।
सिन्धुराज इति ख्यातो मालवानशिषत्ततः ॥८६॥

सिन्धुराजस्य चरितं पद्मगुप्तेन निर्मितम् ।
यत्साहसांकचरितनाम्ना विद्वत्सु विश्रुतम् ॥८७॥

हूणांश्च कोशलॉल्लाटान्वागडान्मुरलांस्तथा ।
विजित्य नागवंश्यां स उपयेमे शशिप्रभाम् ॥८८॥

तत्पुत्रो[1] भोज इत्यासीन्नासीराक्रान्तभूतलः ।
परमारकुलोत्तंसः कंसजिन्महिमा नृपः ॥८९॥

चम्पूरामायणं भोजः कण्ठाभरणमप्यसौ ।
निबन्धांश्च बहूनन्यान्निबबन्ध महामतिः ॥९०॥

प्रशासति महावीर्ये धरां भोजधराधिपे ।
मिश्रदामोदरश्चक्रे महानाटकसंग्रहम् ॥९१॥

समयेऽस्मिन्नभूत्सूरिधर्नपालो महाकविः ।
कृता गद्यकथा येन रम्या तिलकमञ्जरी ॥९२॥

गांगेयतनयः कर्णदेवः संधाय गुर्जरैः ।
जितो निष्पिष्टवान्भोजं स स्वयं कीर्तिवर्मणा ॥९३॥

गोपालाख्यो महावीर्यः कीर्तिवर्मचमूपतिः ।
कर्णदेवं चेदिराजं जित्वाभूत्कीर्तिभाजनम् ॥९४॥

सिन्धुराजः ९१७—८३१

भोजदेवः ९३२—९७६

१ ताम्रलेखे ।

प्रबोधचन्द्रोदयकृत्कृष्णमिश्रः कविश्चिरम् ।
समादृतः सदस्योऽभून्नृपतेः कीर्तिवर्मणः ॥९५॥
कश्मीरभर्त्तानन्तोऽभूद्भोजस्य समकालिकः ।
क्षेमेन्द्रेण कृता ग्रन्था यस्य राज्ये परःशताः ॥९६॥
पुत्रोऽनन्तस्य कलशस्ततोऽभून्नृपतिः कविः ।
राज्ये यस्याभवत्प्रौढो बिल्हणाख्यो महाकविः ॥९७॥
अत्रान्तरेऽभूत्कल्याणपुरे चालुक्यविक्रमः ।
विक्रमाक्रान्तभुवनो नृपतिस्तेजसां निधिः ॥९८॥
चोलान्गौडान्कामरूपान्विजित्य नृपतिर्बली ।
मालवेशस्य साहाय्यं चक्रे मानवतां वरः ॥९९॥
काश्मीरकेण कविना बिल्हणेन महाधिया ।
रचितं विक्रमांकस्य चरितं काव्यमद्भुतम् ॥
विक्रमार्कसदस्योसौ विज्ञानेश्वरपण्डितः ।
याज्ञवल्क्यस्मृतेष्टीकां निबबन्ध मिताक्षराम् ॥१००॥
हर्षदेवे यशःशेषे भारते विप्लवाकुले ।
गोपालाद्यैर्धृता वङ्गाः पालैरिति पुरोदितम् ॥१०१॥
प्रसह्य तु महीपालाद्वङ्गानाच्छिद्य वीर्यवान् ।
नृपो विजयसेनाख्यश्चक्रे राज्यं महामतिः ॥१०२॥
पुत्रो विजयसेनस्य महासेनपराक्रमः ।
वल्लालसेननामाभूद् भूमीभर्त्ता लसद्यशाः ॥१०३॥
प्रशास्ता वङ्गदेशस्य प्रशस्तविनयः सुधीः ।
बल्लालसेनतनयो नयोर्जितपराक्रमः ॥१०४॥

अनन्तदेवः ९४०—१००१
कलशः १००२—१०१०
चालुक्यविक्रमः ९९८—१०३८
महीपालः ९४८—
विजयसेनः दशमे शतके
बल्लालसेनः एकादशे शतके

अभूल्लक्ष्मणसेनाख्यो राजा सेनकुलाग्रणीः।
यो भोज इव विद्यायामनुरक्तः स्वयं कविः ॥१०५॥
वाग्भटश्चैव शम्भुश्च श्रीपालश्च महेश्वरः।
रामानुजो भास्करश्च तथा लीलाशुकादयः॥१०६॥
वैज्ञानिका दार्शनिकाः कवयश्च महाधियः।
समयेष्वेष्वजायन्त जरत्यां भारतावनौ ॥१०७॥
गोवर्धनश्च[1] शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि लक्ष्मणस्य सभाभुवि ॥१०८॥
प्रायो लक्ष्मणसेनस्य नृपतेः समकालिकः।
कान्यकुब्जेषु गोविन्दचन्द्रोऽभून्मदनात्मजः॥१०९॥
गोविन्दचन्द्रनृपतेः समकालभवोऽभवत्।
कश्मीराधीश्वरोऽभूपो जयसिंहाभिधो बली ॥११०॥
काश्मीरमितिवृत्तं श्रीजयसिंहे प्रशासति ।
चकार कल्हणकविः शुभां राजतरंगिणीम् ॥१११॥
अस्मिंश्च समये काव्यं श्रीकण्ठचरिताभिधम्।
काश्मीरकः कविर्मंखो रमणीयं विनिर्ममे ॥११२॥
राज्ये गोविन्दचन्द्रस्य चक्रे लटकमेलकम्।
कविः शंखधरो हास्यनिधि प्रहसनोत्तमम् ॥११३॥
अथ तस्य प्रपौत्रोऽभूज्जयचन्द्राभिधो नृपः।
महासमृद्धिशालित्वाद्बलवीर्यमदोद्धतः॥११४॥
प्रणेता नैषधीयस्य खण्डनस्य च पण्डितः।
श्रीहर्षः कान्यकुब्जेशजयचन्द्रसदस्यभूत्॥११५॥
कालेऽस्मिन्नेव पुत्रोऽभूत्सिद्धराजस्य धीमतः।
कुमारपालो नृपतिरणहिल्लाख्यपत्तने ॥११६॥

लक्ष्मणसेनः : १०४९—

१. शिलालेखे।

गोविन्दचन्द्रः १०३७—१०६४

जयसिंहः १०४९—

कुमारपालः १०६५—१०९३

महाधिया सदस्येन सिद्धराजकुमारयोः ।
कुमारपालचरितं हेमचन्द्रेण निर्मितम् ॥११७॥
सखा लक्ष्मणसेनस्य वटुदासोऽभवत्सुधीः ।
यत्सुतः श्रीधरश्चक्रे सूक्तिकर्णामृतं कृती ॥११८॥
यद्‌थानङ्गपालेन तोमरेणामरत्विषा ।
इन्द्रप्रस्थस्य निकटे दिल्लीदुर्गं विनिर्मितम् ॥११९॥
अनङ्गपालात्पूर्णानां शते याते तु तत्कुलात् ।
राज्ञा वीसलदेवेन स्वराष्ट्रं तज्जितं बलात् ॥१२०॥
तत्र वीसलदेवस्य भ्रातृजो भीमविक्रमः ।
पृथ्वीराजो जयच्चन्द्रप्रतिस्पर्धी नृपोऽभवत् ॥१२१॥
जयच्चन्द्रोऽथ नृपतिर्मदमानसमुद्धतः ।
राजसूयमखे भूपानाजुहाव समन्ततः ॥१२२॥
दासवत्कर्म कुर्वत्सु नृपेष्वन्येष्वनागतम् ।
पृथ्वीराजमसौ स्वर्णमयं द्वारि न्ययोजयत् ॥१२३॥
राजसूयावसाने च जयच्चन्द्रनृपात्मजा ।
स्वयंवरा सभामध्यमाजगाम मनस्विनी ॥१२४॥
निबद्धप्रणया चेयं पृथ्वीराजे श्रुतिं गते ।
विलंघ्य नृपतीन्सर्वांस्तन्मूर्त्तौ निदधे स्रजम् ॥१२५॥
प्रियाप्रणयलेखाच्च वृत्तं जानन्नृपोऽखिलम् ।
पृथ्वीराजः स्वयं वीरस्तत्र संनिदधे रयात् ॥१२६॥
आदाय वीरो जयचन्द्रकन्या-
मन्यानवाप्यां महनीयकीर्त्तिः ।
स रुक्मिणीं कृष्ण इव स्वराज-
धानीं परानीकनिषूदनोऽगात् ॥ २७॥
तं श्लाघ्यसंबन्धमपि प्रसह्य
कन्यां हरन्तं ममृषे न मानी ।
काम्बोजराजं च समाजुहाव
रणे जयच्चन्द्रनृपः सहायम् ॥१२८॥

पृथ्वीराजः १०९२—
जयचन्द्रः १०९२

काम्बोजराजश्च सहापदीन
इत्थं समाहूत इहाभ्युपेत्य ।
स गङ्गदत्तेन कृताह्वयस्य
लीलां प्रतेने प्रियदर्शनस्य ॥१२६॥

सहापदीने भरतावनीमिम
सहापदां भूरिभरैरुपागते ।
हतेऽथ पृथ्वीनृपतौ च तच्छला–
द्रुरोद रक्ताश्रुधरा वसुन्धरा ॥१३०॥

इति चतुर्थी वीचिः ।

द्वादशस्य शतस्याभूच्चतुर्दशसमात्यये ।
सहापदीनेन कृतं दिल्लीराज्यविनाशनम् ॥१॥

विनाश्य पृथ्वीराजं च ततो वर्षद्वया तरे ।
सहापदीनस्तुन्नोऽभूज्जयचन्द्रनिपातनात् ॥२॥

पृथ्वीराजे कथाशेषे जयचन्द्रे च पातिते ।
बलात्तुरुष्कैराक्रान्तं दिल्लीराज्यं समृद्धिमत् ॥३॥

तैस्तेषामनुगैश्चैव समस्तं भारतं क्रमात् ।
पूर्वान्तान्दक्षिणान्तांश्च हित्वा वीर्याद्वशीकृतम् ॥४॥

दासैश्च खिलजीवैश्च तुग्रैरथ च मुद्गलैः ।
प्रत्यन्तसंभवैः पञ्चशताब्दी भारतं नृतम् ॥५॥

यत्र तत्र कियत्कालं राजपुत्रादयो धराम् ।
तुरुष्कविघसप्रायां बुभुजुर्दीनमानसाः ॥६॥

रामपाण्डवचन्द्राद्यैवधृतामतुलश्रियम् ।
बहुदर्शनविज्ञानजननीं भारतावनिम् ॥७॥

सहापदीनदासैश्च भुज्यमानां प्रपश्यतः ।
जनस्य भुवने कृत्स्ने संमोहो बलवानभूत् ॥८॥

दिल्लीविनाशः ११९४

द्वादशस्य शतस्याथ द्वात्रिंशेऽब्दे महामनाः ।
श्रीमान्देवगिरावासीत्सिंहो यादवभूपतिः ॥९॥
जैत्रपालश्च कृष्णश्च महादेवादयस्तथा ।
तस्य वंश्या धरां धीरा बिभरामासुरोजसा ॥१०॥
द्वादशस्य शतस्यान्ते हेमाद्रिविदुषा कृतः ।
महादेवे चतुर्वर्गचिन्तामणिरधीश्वरे ॥११॥
सिंहस्य यादवेन्द्रस्य प्रायेण समकालिकः ।
नृपोऽभूद्वीरधवलो व्याघ्रपल्लीयवंशजः ॥१२॥
तदाश्रितेन रचिता रुचिरा कीर्त्तिकौमुदी ।
सोमेश्वरेण काव्यं च सुरथोत्सवनामकम् ॥१३॥
समाप्तप्रायपूर्वार्द्धे शतकेऽथ त्रयोदशे ।
नगरे विजयाख्येऽभूच्छ्रीमान्संगमभूपतिः ॥१४॥
मतिमन्तो हरिहरबुक्कप्रभृतयश्चिरम् ।
अभूवंस्तस्य दायादा वसुधाभोगभागिनः ॥१५॥
संगमस्य च बुक्कस्य तथा हरिहरस्य च ।
अमात्यौ विश्रुतावास्तां माधवः सायनस्तथा ॥१६॥
सर्वदर्शनकृद्धीमाञ्श्रृङ्गेर्यां माधवश्चिरम् ।
विद्यारण्याख्यया ख्यातोऽलंचक्रे शांकरीं बृसीम् ॥१७॥
वेदभाष्यादिरचनाविश्रुतः सायनोऽभवत् ।
प्रबन्धैर्यस्य जरती भूरेषाद्यापि दीप्यते ॥१८॥
आसीच्छाकम्भरीदेशे कालेष्वेषु महाबलः ।
हम्मीरनामा नृपतिश्चाहुवाणान्ववायजः ॥१९॥
[1]तदीयसभ्यमुख्यस्य द्विजाग्र्यस्याभवत्सुतः ।
श्रीमद्राघवदेवस्य धीमान्दामोदराभिधः ॥२०॥

सिंहः ११३२—
महादेवः ११८२—११९२
हम्मीरः त्रयोदशे शतके
हरिहरः १२६१—१२७५
बुक्कः १२७६—१३००

१. शार्ङ्गधरस्य पद्धतौ ।

दामोदरस्य तनयः षोडशोने त्रयोदशे ।
शते शार्ङ्गधरश्चक्रे पद्धतिं विदुषां मताम् ॥२१॥
चतुर्दशस्य शतकस्यान्ते शान्तात्मनां वरः ।
श्रीवल्लभो दार्शनिकः प्रादुरासीद्धरातले ॥२२॥
मायावादादि संदूष्य शुद्धाद्वैतं सुधीरसौ ।
प्रकाश्य भगवत्कृष्णमतं पुनरजीवयत् ॥२३॥
अत्रान्तरे कलेर्मोहान्निद्रासुखमुपेयुषाम् ।
क्षोभाय भारतीयाना कृत्यं वैदेशिकेष्वभूत् ॥२४॥
पाश्चात्त्यानां कृतिमतां भारतान्वेषिणां चिरम् ।
मेवन्तेषु तथान्यत्र यात्राः कत्यभवन्निह ॥२५॥
कुलुम्बो भारतान्वेषी प्राप्ते पञ्चदशे शते ।
तुङ्गाब्धेरपरे पारे धीरः प्रापदमेरिकाम् ॥२६॥
वस्काभिधः पूर्त्तगलाभिजनश्च ततः परम् ।
आगाद्भारतमन्विष्यन्दक्षिणाम्बुनिधेस्तटम् ॥२७॥
दक्षिणाम्बुनिधेस्तीरे कलिकूटं विनाश्य च ।
प्रवेशमार्गो वस्केन पाश्चात्त्यानां व्यधीयत ॥२८॥
ततः प्रभृति पोतानां यूरोपविषयादिह ।
गतागतैर्वणिज्यायाः संजाता वृद्धिरुत्तमा ॥२९॥
अत्रान्तरे च त्रिमुरो मुद्गलाधिपतिर्बली ।
दिल्लीं विलुण्ठ्य विषयान्निजान्प्रापानिवारितः ॥३०॥
अपत्यैस्त्रिमुरस्याथ प्रबलैर्बर्वरादिभिः ।
प्राकाशि चिररात्राय दिल्लीवाल्लभ्यमद्भुतम् ॥३१॥
आसन्नविशशेषे च ततः पञ्चदशे शते ।
बभूव दिल्लीनृपतिर्मुद्गलोऽकबराभिधः ॥३२॥
तद्वंश्यानां च शिल्पादौ व्ययेनार्जयतां यशः ।
जगन्नाथादयोऽभूवन्सदःसु कवयः किल ॥३३॥
रसगङ्गाधराद्यैश्च प्रबन्धै रसिकप्रियैः ।
प्राप पण्डितराजाख्यां जगन्नाथकविः कृती ॥३४॥

अथ विंशतिशेषे च षोडशे शतके नृपः ।
अभूदुरगजिह्वाख्यः कुलेऽर्कवरभूभृतेः ॥३५॥

क्रूरबुद्धिर्नरेन्द्रोऽसौ देवमन्दिरनाशकः ।
जनानुद्वेजयामास रोगः सांक्रामिको यथा ॥३६॥

तस्य सानुचरस्यालं दुर्नयैर्जर्जरीकृतम् ।
तुरुष्कराज्यं देशेऽस्मिन्व्यशीर्यत शनैः स्वयम् ॥३७॥

नृपस्योरगजिह्वस्य समये शत्रुशातनः ।
शिवराजो महाराष्ट्रेष्वभवद्बलिनां वरः ॥३८॥

यस्यावदानैर्दिल्लीशः साम्राज्येऽपि स्थितश्चिरम् ।
न जातु लेभे शङ्कार्त्तो निद्रासुखमखण्डितम् ॥३९॥

शिवराजस्य वंश्यानामबलानां महीभुजाम् ।
सचिवैर्विश्वनाथाद्यैर्दध्रे राज्यं कियच्चिरम् ॥४०॥

वाजिराजमहाराजः शशासोर्जितविक्रमः ।
समस्तं भारतं प्रायो मज्जत्क्षोभमहाम्बुधौ ॥४१॥

अथ काम्बोजगान्धारप्रान्तीयैः क्रूरविक्रमैः ।
नृपैः कुरुक्षेत्ररणे महाराष्ट्राः पराजिताः ॥४२॥

इत्थं सप्तदशस्यान्ते शकानां शतकस्य तु ।
काम्बोजपारसीकाद्यैर्महाराष्ट्रबले हते ॥४३॥

नाममात्रनृपे दिल्लीनृपतौ च विलुण्ठिते ।
भारतं चिररात्राय दस्युभोज्यमजायत ॥४४॥

शतकेऽष्टादशे प्राप्ते शकानामथ भारतम् ।
अन्योन्यलुण्ठनोद्युक्तैर्नृपाभासैरपीड्यत ॥४५॥

केवलं रणजित्सिंहो देशे पञ्चनदाभिधे ।
प्रशशासोर्जितं राज्यं बलशाली नराधिपः ॥४६॥

अकबर १४७८—१५२७

उरगजिह्वः १५८०—१६२९

शिवराजः १५६८-१६०२

अतीते रणजित्सिंहे दुर्बले च तदात्मजे ।
उपद्रुताः पञ्चनदाः सैन्यैस्तस्यानियन्त्रितैः ॥४७॥

नयपाल्योऽभवद्वीरः सम्राट् फ्रांसनिवासिनाम् ।
स्वभुजार्जितराज्योऽसौ कालेष्वेषु महामनाः ॥४८॥

नाममात्रे श्रुते यस्य प्रकम्पोऽजायत क्षणात् ।
रूष्याङ्ग्लमिश्रशर्मण्यतुरुष्कादिमहीभुजाम् ॥४९॥

यत्सैन्यघोषमाकर्ण्य गोपुरान्तेऽस्त्रियेश्वरः ।
कन्यां स्वमुकुटं चैव हस्ते कृत्वोपतस्थिवान् ॥५०॥

आगमिष्यन्नसावेनां प्रवीरो भारतावनिम् ।
पाश्चात्यराजैः संभूय निर्जितश्छलिभिर्बली ॥५१॥

उदस्य चांग्लनीतिज्ञैरखिलान्परिपन्थिनः ।
वाणिज्यार्थमिहायातैर्विजिता भारतावनिः ॥५२॥

प्रायोऽर्धेऽथ गते त्वस्य शतकस्य प्रियप्रजा ।
आंग्लवंशधरा राज्ञी व्यक्तोर्जा वसुधामशात् ॥५३॥

अनाथां सर्वतो दस्युपृतनापरिवारिताम् ।
राज्ञी सनाथयिष्यन्ती स्वीचक्रे भारतावनिम् ॥५४॥

सोनाशीतौ शकाब्दानां याते सप्तदशे शते ।
चत्वारिंशद्वया जाता व्यक्तोर्जा भारतेश्वरी ॥५५॥

अनस्तमितमार्त्तण्डमखण्डं राज्यमण्डलम् ।
रत्नेनेव बभूवास्या भारतेनाधिकोज्ज्वलम् ॥५६॥

बहुयोजनसाहस्रव्यवधावपि याः स्थिताः ।
बाष्पानसा च पोतैश्च सुगमास्ता भुवोऽभवन् ॥५७॥

न सरिद्भिर्न गिरिभिर्नारण्यैर्न च सागरैः ।
वाणिज्यपत्रवार्त्तादिप्रचारः प्रत्यहन्यत ॥५८॥

व्यक्तोर्जा १७४१–१८२२

अदृष्टाश्रुतपूर्वेषु गत्वा देशेषु भारताः ।
चक्रुर्विज्ञानरत्नानां संग्रहं स्वगृहेष्विव ॥५९॥
विद्युत्संवादशैली च तथासौ सर्वगाभवत् ।
योजनायुतवृत्तस्य ज्ञानं सद्यो यथाभवत् ॥६०॥
विद्युद्बाष्पादियन्त्राणामाविष्कारान्नृणामभूत् ।
स्थले जले च वायौ च प्रायः किंचिन्न दुर्लभम् ॥६१॥
धर्मस्य विप्लवं हित्वा यत्राचारे नृणां रुचिः ।
तमेव तेऽन्ववर्त्तन्त स्वच्छन्दमविशङ्किताः ॥६२॥
अन्विष्यान्विष्य निर्धूतोऽप्यज्ञानमृग उन्मदः ।
शासकैर्वसति चक्रे हृद्गर्त्ते मतवादिनाम् ॥६३॥
प्रतारकाणां मूर्खाणां जातिवेषादिजीविनाम् ।
गतानां तामसीं तन्द्रां शनकैरादरो गतः ॥६४॥
विदुषां सत्त्वयुक्तानां जनोपकृतिचेतसाम् ।
जाग्रतां कृतबुद्धीनामवर्धत समादरः ॥६५॥
प्रायतन्त प्रशास्तारो यथा विज्ञानवृद्धये ।
तथा विहाय वैमत्यमयतिष्यन्त चेज्जनाः ॥६६॥
नूनं वैज्ञानिकाग्र्याणां महर्धीनां कृतात्मनाम् ।
अभविष्यन्महत्क्षेत्रमचिरेणैव भारतम् ॥६७॥
व्यक्तोर्जया रक्षितायां सुचिरं भारतावनौ ।
प्रज्ञाचक्षुर्महाशक्तिरभूद् गोवर्धनः कविः ॥६८।
गते पण्डितराजे द्यामपुत्रा भारती चिरम् ।
आनन्दिता सुपुत्रेण पुनर्येन महाधिया ॥६९॥
आद्यव्रतेन राज्ञाथ व्यक्तोर्जासूनुनाभवत् ।
समृद्धायतराज्येन सनाथा भारतावनिः ॥७०॥
द्विशतोनद्विसाहस्र्यां गतायां सैकविंशतौ ।
शकाब्दानामभूत्सम्राट् श्रीमानाद्यव्रतो भुवि ॥७१॥
समयेऽस्याभवद्युद्धं कर्पूरद्वीपवासिनाम् ।
जिगीषूणां समं रूष्यै रूष्या यत्र पराजिताः ॥७२॥

श्रीजयोर्जनृपेणास्य नृपतेस्तनुजन्मना ।
विजयोजितसत्त्वेन वर्त्तते भारतं धृतम् ॥७३॥
शकाब्दानां सहस्रेऽष्टशताढ्ये त्रिशता युते ।
अतीते श्रीजयोर्जस्य राज्यारम्भोऽभवद्भुवि ॥७४॥
शर्मण्यानां बलिमयो रूष्याणां निचुलो नृपः ।
शास्ता मुत्सुहितश्चाद्य कर्पूरद्वीपवासिनाम् ॥७५॥
अमेरिकाप्रदेशे च फ्रांसदेशे च विश्रुते ।
प्रजाराज्यं प्रजाप्रातिनिध्यनिघ्नं विजृम्भते ॥७६॥
साम्राज्ये श्रीजयोर्जस्य काश्यां गङ्गाधरः कविः ।
पदवाक्यप्रमाणानां पारदृश्वास्ति संप्रति ॥७७॥
काव्यशक्तिर्नवोद्भिन्ना चरिते बालशास्त्रिणाम् ।
फलिता यस्य संलापे मधुरेऽलिविलासिनोः ॥७८॥
गतार्थोऽद्य जगन्नाथो नापेक्ष्योऽप्पयदीक्षितः ।
कटुवाग्वेङ्कटार्योऽपि सति गङ्गाधरे गुरौ ॥७९॥
रवेरिवास्य प्रभया सनाथे सूर्याश्मनीवास्य जनस्य चित्ते ।
कणा इवाग्नेरभवन्प्रबन्धाः प्रभोज्ज्वला वाङ्मयवार्धिमुख्याः ॥८०॥

पितुरनुकलयञ्श्रीदेवनारायणस्य
प्रथितमपि च मातुः श्रीलगोविन्ददेव्याः ।
गुणगणमिति शिष्यस्तस्य रामावतारो
व्यधित विबुधहृद्यं भारतस्येतिवृत्तम् ॥८१॥

श्रीजयोर्जनृपतिर्महामतिः पालयत्ववनिमूर्जितां चिरम् ।
घोषिते यदभिषेकमङ्गले ग्रन्थरत्नमजनीदमुज्ज्वलम् ॥८२॥

इति पञ्चमी वीचिः ॥

समाप्तो भारतीयेतिहासः ॥

आद्यव्रतः १८२३-१८३२
श्रीजयोर्जः १८३२--

वाङ्मयार्णवीयेतिहासकाण्डे देशान्तरीयेतिहासतरङ्गः ।

अजपुत्रेतिवृत्ताख्या प्रथमा वीचिः ।

शकाब्देभ्यः पूर्वम्

२५०० कुरूणा पाण्डवानां च काले प्रायोऽभवन् भुवि ।
असुरा अजपुत्राश्च पार्श्वयोर्लोहिताम्बुधेः ॥१॥
तीरे नीलनदस्यासन्नजपुत्रा महोद्यमाः ।
आरव्यामुत्तरेणासन्नसुरा उत्पथातटे ॥२॥
ते जीवलिपयः शल्यलिपयश्च यथाक्रमम् ।
शरत्सहस्रद्वितयमशासन विषयान् निजान् ॥३॥
अवसानेऽस्य कालस्य महत्त्वीयपराक्रमैः ।
पारसीकैरभीकैस्ते हीनवीर्याः पराजिताः ॥४॥
रम्ये नीलनदोपान्ते पिण्डीखर्जूरकोजिते ।
सुखेन कालमनयन्नजपुत्रा महौजसः ॥५॥

२१५८ शुम्भाभिधोऽजपुत्राणां भूमिपालो महाबलः ।
कोणागारं महायामं निर्ममे मम्मपत्तने ॥६॥
प्रायः पञ्चशताब्दान्ते भ्रमद्भिर्वृष्णिपालकैः ।
शुम्भराजस्य वंश्यानां राज्यमास्कन्दितं बलात् ॥७॥
पुनः पञ्चशताब्दान्ते बलान्निर्वास्य वृष्णिपान् ।
अजपुत्राः स्वतन्त्रास्ते समजायन्त मानिनः ॥८॥
शेषाद्रनामा रामेशस्तेषां राजा बलोद्धतः ।
स्थवीयसि पुरे राज्यं कुर्वन्नाक्रान्तवान्परान् ॥९॥
ततो वर्षसहस्रान्ते काम्येशाख्यं महाबलम् ।
पारसीकाधिपं प्राप्य तत्स्वातन्त्र्यं व्यलुप्यत ॥१०॥

४१० आच्छिद्य पारसीकेभ्यो याते वर्षशतद्वये ।
वीरेणालिकचन्द्रेण विषयास्ते वशीकृता ॥११॥

पुरीमलिकचन्द्रीयां तेन वीरेण निर्मिताम् ।
राजधानीं चकारास्य पुलोमाख्यश्च भूपतिः ॥१२॥
अतीतेऽलिकचन्द्रे च पुलोम्नास्य च वंशजैः ।
चिरं नीलनदोपान्ते कान्ते राज्यं व्यधीयत ॥१३॥

१०८ अथाजपुत्राः पौलोम्या देव्या श्रीपत्रया किल ।
शरच्छतत्रये याते रोमकेष्वपहारिताः ॥१४॥
ब्रह्मक्षत्रविशस्तिस्रस्तेष्वजायन्त जातयः ।
कोष्ट्यर्धमानाश्चाभूवन्सुभिक्षसुखिनो जनाः ॥१५॥
कोणागारैर्महायामैर्भूपतिप्रेतवेश्मभिः ।
प्रख्यायतेऽजपुत्राणां वास्तुनिर्माणकौशलम् ॥१६॥
महाकोणस्य तुङ्गत्वं पदसार्धचतुःशती ।
सार्धसप्तशतप्राया चतुरस्रा च मूलभूः ॥१७॥
अर्धलक्षमणिप्रायाः पाषाणास्तेषु चार्पिताः ।
त्रयो महान्तोऽद्याप्येषां सप्ततिर्लघवः स्थिताः ॥१८॥
लिपिः प्राण्याकृतिप्राया स्तम्भपात्रादिवस्तुषु ।
तथा प्रपीडपत्रेषु तेषामद्यापि लभ्यते ॥१९॥
अदृश्यमीश्वरं जीवममरं विबुधान्बहून् ।
सूर्यचन्द्रमुखानेते भक्तिपूर्वमपूपुजन् ॥२०॥
बिडालकुक्कुरश्येनवृषवत्सादिकान्पशून् ।
अपूजयंस्ते तद्घातपातकिप्राणहारिणः ॥२१॥
प्रतिपालयतः प्रेतान्कर्मनिर्णयवासरम् ।
वेशवारैः कृमिघ्नैस्ते रक्षिताङ्गानतिष्ठिपन् ॥२२॥
वर्णकाचमणिक्षौमधातुशिल्पेषु कौशलम् ।
ज्योतिर्गणितभैषज्यज्ञानं चैषामभूत्कियत् ॥२३॥
समकोणश्रुतेर्वर्गं भुजवर्गयुतेः समम् ।
पृथुगौरोऽजपुत्रेभ्योऽधिजगे यवनः सुधीः ॥२४॥

अथाजपुत्राः किल सभ्यताधुरं
समर्प्य यद्योग्यतरासु जातिषु ।

रामावतारप्रकीर्णप्रबन्धेषु

ह्ययं शतैर्भञ्जुरुदारविक्रमा

न चित्रमेतत्प्रकृतिर्हि तादृशी ॥२५॥

इति प्रथमा वीचिः ।[1]

अकृष्टपच्यगोधूमे खर्जूरोर्जस्वलोर्वरे ।
स्तिम्रियोत्पथयोर्मध्ये न्यवसन्नसुराः सुखम् ॥१॥

ग्रहताराचर्चकाः शल्यलिपयो ज्यौतिषप्रियाः ।
वाणिज्यवल्लभा भव्यलूने राज्यममी व्यधुः ॥२॥

प्रायो वर्षसहस्रान्ते ते निह्नवपुरासुरैः ।
पराजीयन्त बलिभिः क्रमाद्दौर्बल्यविक्लवाः ॥३॥

त्रिगर्त्तपेन्द्रपालाद्यैर्यन्निह्नवपुरासुरैः ।
अर्जितं भव्यलूनीयलवणेनार्दितं पुनः ॥४॥

भूयस्त्रिगर्त्तपालेन तत्साम्राज्यं स्थिरीकृतम् ।
षट्गुणश्रमणेशाद्यैः शून्यगर्भेण चोजितम् ॥५॥

प्रयाते शतपट्केऽथ शरदामासुरं बलम् ।
साहसैकप्रियैर्नीतं वीरैर्निह्नववासिभिः ॥६॥

नाशितं भव्यलूनीयनवपालसहायकैः ।
मेदिकासैनिकैः कायच्चारनीतैर्मदोद्धतैः ॥७॥

कायच्चारनृपात्प्राप्यासुरराज्यं महामतिः ।
नवपालश्चिरं भव्यलूने राज्यमथाकरोत् ॥८॥

नवपालस्य तनयो नवचन्द्रो महाबलः ।
अजपुत्रांश्च तीरांश्च जारूषांश्च व्यजेष्ट सः ॥९॥

स पञ्चनन्दनायाममुत्पथापूरकर्णकम् ।
शतार्धकरगाम्भीर्यैः शतद्वयकरोच्छ्रितैः ॥१०॥

सहस्राट्टालविस्कारैरारकूटोच्चगोपुरैः ।
प्राकारैः परितो युक्तं प्रासादशतसंकुलम् ॥११॥

---

१. 'मञ्जुभाषिणी' (संस्कृतसाप्ताहिकसमाचारपत्रिका) काञ्जीवरम्, २१ जनवरी, १९१२ ई०; पु. सं.-१२; अङ्क २८ ।

कृत्रिमारण्यशैलाढ्यं चतुरस्रं समृद्धिमत् ।
भव्यलूनपुरं नव्यं नवचन्द्रो विनिर्ममे ॥१२॥

अथ वंशधरादस्य विलासासुरभूपतेः ।
पारसीकाधिपः कारुरासुरं राज्यमाच्छिनत् ॥१३॥

ततश्चालिकचन्द्रेण याते वर्षशतद्वये ।
परानिवासुराञ्जित्वा भव्यलूनं वशीकृतम ॥१४॥

भव्यलूनपुरं मानी राजधानीमुशन्नसौ ।
नवीचिकीर्षु रेवैनां कालेन कवलीकृतः ॥१५॥

निधनमुपगते तदित्यकाण्डे-
ऽतुलविभवेऽलिकचन्द्रभूमिपाले ।
असुरनगरमुत्कटाम भूयो-
ऽभ्युदयविपत्तिमधत्त भव्यलूनम् ॥१६॥

इति द्वितीया वीचिः ।

समानामर्धसाहस्रे कुरुपाण्डवतो गते ।
अब्रह्मनामा जारूषः सकुटुम्बोऽभ्रमन्महीन् ॥१॥
शरदामथ संयाते तत्स्थितेः शतसप्तके ।
तद्गोत्रमजपुत्रेभ्यः सनिकारं निराकृतम् ॥२॥
प्राच्यान्ते मध्यजलधेरवसंस्ते वणिज्यया ।
देवादेशाद् वृतैर्दिव्यशासकैः कृतशासनाः ॥३॥
अतीते शम्बरे दिव्यशासके चरमे नृपः ।
चत्वारिंशतमब्दानां शकलस्तानशाद्वली ॥४॥
देववित्तस्य जामाता तस्माद्राज्यमवाप्तवान् ।
सुलोमा तनयस्तस्य ततोऽभून्नृपतिर्बली ॥५॥
तयोः प्रतापाद्बलिनोर्यत्साम्राज्यं व्यजृम्भत ।
तद् व्यशीर्यत तद्वंश्यनृपदुर्नयदुर्जरम् ॥६॥
नवचन्द्रेण विध्वस्तं कारुणाथ वशीकृतम् ।
बलिनालिकचन्द्रेण स्वराज्येऽङ्गीकृतं ततः ॥७॥

रोमकानीकिनीनाथपम्पियेनाथ विक्रमात् ।
जितं रोमकसाम्राज्यं प्रान्तत्वं प्रत्यपद्यत ॥८॥
मध्याब्धेर्लवणाद्रेश्च मध्यतो विहिताश्रयाः ।
पणीशा वणिजोऽभूवञ्ज्ञारूपप्रातिवेशिकाः ॥९॥
मध्याब्धि दक्षिणेनैषां करध्वजपुराह्वयः ।
सुस्फीतोपनिवेशोऽभूद्रोमपत्तनभीतिभूः ॥१०॥
मध्यसागरपाश्चात्यमुखे गाधिजनामकम् ।
पुरं वाणिज्यविस्तारहेतवे ते न्यवासयन् ॥११॥
आतुङ्गसागरावासाच्छ्वेतद्वीपान्महोद्यमाः ।
आभारतमहाम्भोधिनिलयात्सिंहलादपि ॥१२॥
पणीशाः सर्वतश्चेरुस्ते सांयात्रिकवृत्तयः ॥१३॥
निजाक्षरसमाम्नायमध्याप्य यवनानमी ।
रोमकादिषु संप्रापुर्विद्याविस्तारहेतुताम् ॥१४॥
प्रथमं सूदनपुरं द्वितीयं तीरपत्तनम् ।
राजधानी क्रमादासीत्पणीशानां महौजसाम् ॥१५॥
नवचन्द्रासुरेणाथ काम्येशेन ततः परम् ।
ततश्चालिकचन्द्रेण रोमकैश्च जिता अमी ॥१६॥

रोमसाम्राज्यवारांनिधावित्यलं
प्रत्नजात्यापगानां लयोऽजायत ।
शाश्वते संसृतिस्रोतसि प्रत्यहं
क्षीयते कश्चिदन्यो वहत्युन्नतिम् ॥१७॥

इति तृतीया वीचिः ।

असुरानुत्तरेणासन्पर्वतीयाः श्रमक्षमाः ।
मेदकाः पारसीकाश्च शक्राद्रेः पूर्वतः पुरा ॥१॥
अष्टमे शतके पूर्वे शकाब्देभ्योऽभवद्बली ।
मेदकानां नृपो वीरः कायक्षार इति श्रुतः ॥२॥
विनाश्य निह्ववपुरीं जित्वा सुरवरानसौ ।
समर्प्य राज्यमास्तीके पुत्रे कालवशं ययौ ॥३॥

आस्तीकतनयां राजा काम्येशः परिणीतवान् ।
पारसीकेश्वरः पुत्रः कारुवीरस्तयोरभूत् ॥४॥
कालधर्मं गते ताते कारुवीरो महाबलः ।
सहायं सर्वगुं प्राप्य मेदकानभिभूतवान् ॥५॥
पार्ष्णिग्राहं कृशाश्वाख्यं लवद्वीपाभिधं बली ।
कारुवीरो विनाश्यासौ यवनानजयत्ततः ॥६॥
आ सिन्धोः पश्चिमात्तीरादा मध्याब्धेः पुरस्तटात् ।
विजित्य सर्वान्विषयान्भव्यलूनं व्यनाशयत् ॥७॥
यद्यार्त्तेर्लोहिताब्ध्यन्तं सिन्ध्वन्ताद्यवनाब्धिजम् ।
काम्येशाय सपुत्राय राज्यं दत्वा व्यपद्यत ॥८॥
अजपुत्रान्विजित्यासौ काम्येशः क्रूरविक्रमः ।
नृशंसस्यायुषश्चक्रेऽवसानं निजहत्यया ॥९॥
दारायुः पारसीकेशस्ततोऽभूद्वीर्यवान्नृपः ।
विंशतिः क्षत्रपा येन विहिताः प्रान्तशासकाः ॥१०॥
वार्त्ताप्रेषणशैलीं स राजमार्गांश्च सर्वशः ।
प्रचार्य क्षत्रपै राज्यं प्रशशास महामनाः ॥११॥
सूषां वसन्ते ग्रीष्मेषु भूपतिः सोऽश्वपत्तनम् ।
शिशिरे भव्यलूनाख्यं शिश्रिये पुटभेदनम् ॥१२॥
मित्रावरुणादेवास्ते जरदुष्ट्रानुगामिनः ।
समभूवन्पारसीकाः सतताहितपावकाः ॥१३॥

अथ विपथपराणामीदृशी हा नराणा-
मपचितिरिति जन्तोरन्तरुद्द्योतयन्ती ।
अहितमलिकचन्द्रं प्राप्य चण्डप्रतापं
समरभुवि विशीर्णा पारसीकव्यवस्था ॥१४॥

अथ विपथपराणामीदृशी हा नराणा-
मवनतिरिति वार्त्तामीरयन्ती त्रपार्त्ता ।
अहितमलिकचन्द्रं प्राप्य दूरास्ततन्द्रं
व्यरमदसमवस्था पारसीकव्यवस्था ॥१५॥

इति चतुर्थी वीचिः ।

सुमेरुविषयादार्याः प्रालेयप्रलयप्लुतात् ।
लङ्घयन्तो गिरीन्वीराः प्रस्थिता दक्षिणां दिशम् ॥१॥
आर्यवंशधराणां च कालेनोद्योगशालिनाम् ।
भारताः पारसीकाश्च सिन्धोः पार्श्वद्वयं श्रिताः ॥२॥
यवना रोमकाश्चैव गता मध्याम्बुधेस्तटम् ।
तुङ्गसागरकूलं च शर्मण्यप्रमुखा गताः ॥३॥
मध्याम्भोधेरुदक्तीरे प्रायद्वीपास्त्रयः स्थिताः ।
यवना रोमकाश्चैव सुफेनाश्चेति ते क्रमात् ॥४॥
शौर्यदर्शनविज्ञाननीतिशिल्पविशारदाः ।
स्वातन्त्र्यप्रणयास्तत्र यवनाः पौरुषप्रियाः ॥५॥
यवनाश्चिररात्राय वीरैर्हरिकुलादिभिः ।
सनाथिता विजयिनो युद्धैः कालमयापयन् ॥६॥
इलाधिपस्य पुत्रेण प्रियाख्यस्याथ भूभुजः ।
शीलमानलवाख्यस्य परेशेन हृता प्रिया ॥७॥
शीलां यवनराजस्य भार्यां मानलवस्य ताम् ।
प्रत्यानेतुमभूद् युद्धमलेयैर्यवनैरपि ॥८॥
अखिलेशसुशस्त्राद्ये हते वीरबले ततः ।
इलामजैपीदुड्डीशः किलिङ्गाश्वप्रयोगतः ॥९॥
जम्बूद्वीपापरान्तेषु श्रीशल्येषु च भूरिशः ।
सुफेनेषु तथैवासीद्यवनोपनिवेशनम् ॥१०॥
नवमे शतके पूर्वं शकाब्देभ्यः किलाभवन् ।
पुरराज्यान्यनेकानि यवनानां पृथक् पृथक् ॥११॥
अर्थना सुव्रता चेति तेषां मुख्यं पुरीद्वयम् ।
सुव्रता तत्र वीरत्वे शिल्पादौ प्रार्थितार्थना ॥१२॥
श्रीगर्गबोधितान्धर्मानाश्रित्य कृतजीवनाः ।
व्यायामयुद्धशिक्षादौ सुव्रताः कौशलं ययुः ॥१३॥
वीरस्त्रीपुंसबहुला अशिल्पा मितभाषिणः ।
दासनिर्व्यूढकर्माणः सुव्रताः कठिनाशयाः ॥१४॥

राजद्वयं सुव्रतीयसदस्यैर्विनियन्त्रितम् ।
शशास सुव्रता राज्यमुद्दण्डं दण्डशक्तिमत् ॥१५॥
अतीते चरमे राज्ञि कद्रुनामनि सर्वथा ।
अर्थनीयाः स्वतन्त्रत्वात्प्रजाराज्यमतिष्ठिपन् ॥१६॥
द्राह्येण लिखितैर्धर्मैरसंतुष्टोऽर्थनाजनः ।
सूरणस्मृतिमाश्रित्य व्यवजह्रे यथासुखम् ॥१७॥
अराजकेऽर्थनातन्त्रे पृपाख्यश्रीस्तनादयः ।
प्रबलाः पुरुषाः प्रायः पार्ण्यां चक्रुः प्रशासनम् ॥१८॥

इत्थं सुखेन महनीयपराक्रमाणां
साहित्यदर्शनकलादिविशारदानाम् ।
स्वातन्त्र्यशौर्यनयशीलनविश्रुतानां
कालो ययौ यवयदेशजुषां जनानाम् ॥१९॥

इति पञ्चमी वीचिः ।

कारुणा बद्धमूलेऽथ काम्येशेन च वर्द्धिते ।
साम्राज्ये पारसीकानां दृढे दारायुषा कृते ॥१॥
अर्थनीयैः प्रवहणैः ससैन्यैः कृतसाह्यकाः ।
जम्बूद्वीपस्य यवनाः प्रचक्रुः कदनं महत् ॥२॥
शमितोपद्रवः सम्राट् सोऽर्थनीयेषु रोषवान् ।
मर्दनीय प्रहितवाञ्जामातरमनीकिनम् ॥३॥
मगद्रोणीं प्रविश्यासौ वात्यानाशितनौबलः ।
प्रत्याजगाम लज्जार्त्तो जम्बूद्वीपं यथागतम् ॥४॥
ततो द्विगुणरोषस्यादेशाद्दारायुषो बली ।
दातिनामा चमूनाथो वह्नित्रैर्यवनानगात् ॥५॥
मारस्थूणोपत्यकायामुत्तरेणार्थनापुरम् ।
यवनैः पारसीकैश्च संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ॥६॥
मर्त्यादनाम्ना वीरेण सनाथं यवनायुतम् ।
लक्षसंख्यान् रणक्षेत्रे पारसीकानसूदयत् ॥७॥

दारायुषि ततोऽतीतेऽक्षवर्षस्तत्सुतो नृपः ।
पञ्चविंशतिलक्षेण सैन्येन यवनानगात् ॥८॥
सा सप्तभिरहोरात्रैः सेतुना यवनाम्बुधिम् ।
तीर्त्वा कल्पान्तवात्येवाचस्कन्द यवनीश्चमूः ॥९॥
वर्मद्वाराभिधद्रोण्यां सुव्रतीयेन भूभुजा ।
लेयनिद्रेण वीरेण प्रार्थिता सा मदोद्धता ॥१०॥
चूर्णयन्ती बलं लेयनिद्रस्यासौ महाचमूः ।
दग्ध्वार्थनापुरीं रिक्तां प्रससर्पानिवारिता ॥११॥
सारमेयमुखेऽम्भोधेरथ युद्धमभून्महत् ।
वहित्रैः पारसीकानां यवनानां च दारुणम् ॥१२॥
यवनानां वहित्रैश्च तुर्यासन्नैः पराजिताः ।
सहस्रपोता विजहुः पारसीका निजं मदम् ॥१३॥
पलाय्य पारसीकेये प्रयाते विषयान्निजान् ।
रणेषु यवनैस्तस्य सैन्यशेषं विनाशितम् ॥१४॥

इत्यक्षवर्षस्य मदोद्धतस्य
बलं विधूय प्रथितप्रतापैः ।
विशुद्धपार्श्वैर्यवनैर्वितेने
समुन्नतिश्चित्रकराजनानाम् ॥१५॥

इति षष्ठी वीचिः ।

ततोऽर्धशतवर्षाणि परक्लेशाभिधः सुधीः ।
नेताभूदर्थनीयानां ज्ञानविज्ञानवल्लभः ॥१॥
अर्थनापत्तनं तस्मिन्नभ्यर्णार्णवनायकम् ।
विद्याविभूतिसंपन्नैर्ववृधे सुजनैश्चिरम् ॥२॥
रूपकाणि प्रणीतानि विद्वांसो वाग्मिनाऽभवन् ।
प्रासादा निरमीयन्त कुशलाः शिल्पिनोऽभवन् ॥३॥
अतीतेऽथ परक्लेशेऽर्थनीयैः सुव्रतैस्तथा ।
अभूम्महाकलिर्यस्मिन्नर्थनीयाः पराजिताः ॥४॥

अलीकविद्यश्छात्रोऽभूत्सुक्रतोर्यस्य चापलात् ।
लेशेन्द्रेण पराभूतं सुव्रतेनार्थनापुरम् ॥५॥
स्थवायसि पुरेऽथाभूदपमान्यो महामतिः ।
जिता दर्पोद्धता येन सुव्रता दुर्णयप्रियाः ॥६॥
प्रलिम्पोऽभून्मगद्रोण्यां नन्दानां समकालिकः ।
महाबलो नृपो येन यवना निर्जिता बलात् ॥७॥

इत्यान्तरद्रोहनिपीडितानां
शनैर्गतानां फलपस्य हस्ते ।
विपच्यमानानयभोगभाजां
स्वातन्त्र्यमस्तं यवनव्रजानाम् ॥८॥

इति सप्तमी वीचि. ।

प्रलिम्पस्याभवत्पुत्रोऽलिकचन्द्रः सुविश्रुतः ।
यो विंशतितमे वर्षे राज्यं पैतृकमाप्तवान् ॥१॥
नयन्यवनसैन्यानि स तीर्त्वा यवनार्णवम् ।
पारसीकान्वशीकृत्य सिन्धुतीरमुपागमत् ॥२॥
नन्दैः स पालितां प्राचीमदृष्ट्वैव जिघृक्षिताम् ।
अनुत्साहहतैः सैन्यैः प्रत्यगाद्विषयान्निजान् ॥३॥
मध्याम्भोधेरुदक्तीरे प्रायद्वीपास्त्रयः स्थिताः ।
यवना रोमकाश्चैव सुफेनाश्चेति ते क्रमात् ॥४॥
तत्रेतिवृत्तं यवनविषयाणामुदाहृतम् ।
इतिवृत्तं प्रवक्ष्यामो रोमकाणामतः परम् ॥५॥
भौमादार्याभिधानायां कुमार्यां यमजौ पुरा ।
रामरौमिलनामानावभूतां बलशालिनौ ॥६॥
मात्रा त्यक्तौ वने बालौ वृकी काचिदवर्धयत् ।
विवादे भ्रातरं हत्वा रौमिलो रोमपत्तनम् ॥७॥
निरमास्तेत्यादिरूपा रोमकाणां जनश्रुतिः ॥८॥
कुलजा हीनकुल्याश्च द्विविधा रोमका जनाः ।
कुलजानामभूत्प्रायस्तत्र राज्येऽधिकारिता ॥९॥

सर्वाख्यो नृपतिः षष्ठो रोमकाणां नयप्रियः ।
शतात्मिकायां समितो द्वयोश्चक्रेऽधिकारिणः ॥१०॥
तर्कुनामा ततो दृप्तः संजातो रोमभूपतिः ।
नयद्रोहरतो राज्याज्जनैर्यो निरवास्यत ।।११॥
तर्कुवंशं विनिर्वास्य राजशब्देऽपि रोमकैः ।
असाध्योऽबध्यत द्वेषः प्रजाराज्यप्रियैश्चिरम् ॥१२॥
जनैर्वृताभ्यां प्रत्यब्दं शासकाभ्यां नियन्त्रितम् ।
रोमकाणामभूद्राज्यतन्त्रं त्रासावहं द्विषाम् ॥१३॥
रोमकाणां प्रजातन्त्रं प्रातिवेशिकशात्रवैः ।
कुलजानामकुल्यानां चान्तर्द्रोहैरपीड्यत ॥१४॥
इत्थमान्तरबाह्याभ्यां कलिभ्यां किल दूषितम् ।
गौराख्यैरुत्तरैर्वन्यैराक्रान्तं रोमपत्तनम् ॥१५॥
वरेण्यनामा गौरेशो दग्ध्वा रोमकपत्तनम् ।
विलुण्ठ्य च जनान्दृप्तः प्रत्यगाद्विपयान्स्वकान् ॥१६॥
रोमकैश्च महोद्योगैः पुरे भूयो नवीकृते ।
कुलजानामकुल्यानां चाभिद्रोहोऽज्वलत्पुनः ॥१७॥
स्तेपेण्यादिप्रयत्नेन प्रजातन्त्रस्य शासने ।
अकुल्यानामधीकारः कुलजानामिवाभवत् ॥१८॥
रोमकैश्च महोद्योगैः प्रायद्वीपं ततोऽखिलम् ।
आ श्रीशल्याच्चाल्पशैलात्स्ववीर्येण वशीकृतम् ॥१९॥
संग्रामदूतस्वीकारमुद्रानिर्माणवर्जिताः ।
नाधिकारा विलुप्तास्तु जितानां रोमकैः क्वचित् ॥२०॥
पणीशोपनिवेशो यः करध्वजपुराह्वयः ।
मध्याब्धि दक्षिणेनोक्तो रोमकत्रासकारणम् ॥२१॥
तदीयैरभवद् युद्धं रोमकाणां जिगीषुभिः ।
जयश्रीश्चिररात्राय यत्र संशयिताऽभवत् ॥२२॥
करध्वजपुरीयाश्च सुफेनविजयोर्जिताः ।
नीता हनुबलेनाथ रोमकानभ्यदुद्रुवन् ॥२३॥

वीरो हनुबलः क्रान्त्वा पूर्णमल्पं च पर्वतम् ।
रोमकानवचस्कन्द हर्यक्षो हरिणानिव ॥२४॥
दश पञ्च च वर्षाणि द्विषां हनुबलो बली ।
विषयानध्युवासाष्टौ रोमवीरान्स योधयन् ॥२५॥
अथ रोमकवीरेण श्रीप्रियेण महौजसा ।
जित्वा सुफेनांस्तीर्त्वाब्धिमाक्रान्तास्ते करध्वजाः ॥२६॥
श्रीप्रियेणार्दिता सद्यो विविग्नास्ते करध्वजाः ।
आकारयन् हनुबलं करध्वजपुरीं प्रति ॥२७॥
संजग्माते यमक्षेत्रे तावपायानपेक्षिणौ ।
व्यूढसैन्यौ हनुबलश्रीप्रियौ महितोजसौ ॥२८॥
अथ रोमकवीरेण करध्वजचमूपतिः ।
युध्यमानो महावीर्यः प्रसह्यासौ पराजितः ॥२९॥
करध्वजानां वीर्ये च रोमकैर्नाशिते हठात् ।
अवेपत जगत्सर्वं रोमकाणां भयादिदम् ॥३०॥
मगद्रोणीयविषयान् सुफेनान् यवनांस्तथा ।
करध्वजपुरीयांश्च जितवन्तोऽथ रोमकाः ॥३१॥
अवार्यवीर्याः कृतिनः शौर्यनीतिगुणान्विताः ।
साम्राज्यं सुमहच्चक्रुः पार्श्वयोर्मध्यवारिधेः ॥३२॥
देशेभ्यो विप्रकृष्टेभ्यः संप्रधावितया श्रिया ।
रोमका समसेव्यन्त नयोद्योगादिवैभवात् ॥३३॥
चक्रिरे राजवर्त्मानि जलोच्छ्वासाश्च निर्मिताः ।
प्रासादाश्च व्यधीयन्त रोमकैः पुटभेदने ॥३४॥
धनिनो व्यसनान्धास्तु रोमकेष्वथ दुर्बलान् ।
दरिद्रान्पीडयामासुर्मत्स्यान्कैवर्त्तका इव ॥३५॥
ग्राहाख्यौ सोदरौ वीरौ दुर्गतोद्धारकाङ्क्षिणौ ।
प्रसह्य धनिभिर्दृप्तैर्निजघ्नाते सहानुगौ ॥३६॥
शुल्बमर्याख्यनेतृभ्यां नीतानां द्रोहशालिनाम् ।
धनिनां दुर्गतानां च घोरः कलिरथाभवत् ॥३७॥

शुल्बानुगा बलीयांसो मर्ये निर्वास्य रोमतः ।
स्वाधिकारे प्रजातन्त्रं स्थापयामासुरुद्धताः ॥३८॥
पौरस्त्यो मित्रदत्ताख्यो नृपतिर्यवनादिभि. ।
उत्तिष्ठमान. शुल्बेन बलिना पर्यभूयत ॥३९॥
शुल्बेऽनुपस्थिते मर्यः प्राविशद्रोमपत्तनम् ।
प्रत्यर्थिनश्च हतवान व्यपद्यत ततः स्वयम् ॥४०॥
शुल्बो निशम्य तद् वृत्तं पौरस्त्यान्परिहृत्य च ।
त्वरया शङ्कया चार्त्त. समागाद्रोमपत्तनम् ॥४१॥
हत्वा च मर्यपत्तीयान् हिंस्रः शुल्बः पशूनिव ।
प्रजातन्त्रं कियत्कालं शशासातिमदोद्धतः ॥४२॥
अथ शुल्बे मृते रोमपत्तने पुरुषास्त्रयः ।
अभूवन् पम्पियः श्रीशः केसरी च महाबलाः ॥४३॥
रोमकेषु सुफेनेषु तथान्यत्र च विप्लवान् ।
शमयित्वा यशो लेभे पम्पियः स्फीतविक्रम' ॥४४॥
अथ मध्याम्बुधौ पोतदस्यूनस्यन्महाबलः ।
विजित्य मित्रदत्तं च पौरस्त्यं पुनरुत्थितम् ॥४५॥
आसुरांश्च पणीशांश्च जारूषांश्च वशे व्यधात् ।
रोमपत्तनमागम्य दिव्यं चाप जयोत्सवम् ॥४६॥
कुलजानामभून्नेता पम्पियोऽस्यानुपस्थितौ ।
शास्ताभूच्छ्रीकरो वाग्मी महितो रोमपत्तने ॥४७॥
सामान्यजनपद्योऽभूत्केसरी किल शक्तिमान् ।
मर्यस्य भ्रातृजः ख्यातोऽनन्यसाधारणैर्गुणैः ॥४८॥
कुलेन पम्पियः श्रीशो वसुभिः केसरी गुणैः ।
त्रयीयं मिलिता रोमतन्त्रे स्वातन्त्र्यमाश्रयत् ॥४९॥
वर्षं प्रशासको भूत्वा रोमकानीकिनीं नयन् ।
केसरी गौरशर्मण्यश्वेतद्वीप्यानथाजयत् ॥५०॥
वशयन्नष्टभिर्वर्षैर्वन्यजातिशतत्रयम् ।
जितानां हृदयं गृह्णन्केसरी कीर्त्तिमाप्तवान् ॥५१॥

श्रीशश्च पम्पियश्चात्रान्तरे रोमप्रशासकौ ।
पौरस्त्येषु सुफेनेषु चैवास्तां तौ क्रमादुभौ ॥५२॥
पारसीकेषु निहते श्रीशे केसरिपम्पियौ ।
प्रत्यर्थिनावभूतां द्वौ रोमसाम्राज्यकाङ्क्षिणौ ॥५३॥
केसरी न समं सेहे न चैच्छत्पम्पियः प्रभुम् ।
अतः प्रत्यर्थिनोर्मध्ये महद्वैरमवर्धत ॥५४॥

अथ प्रशास्तृसदसा ज्ञप्तः पम्पियनीतया ।
केसरी पृतनां त्यक्तुमुपासर्पत्तया सह ॥५५॥
रूपशोणां नदीं तीर्त्वा रोमसीमां महाबलः ।
निनाय निजसेनां स युद्धाय कृतनिश्चयः ॥५६॥
पलाय्य यवनान्याते पम्पिये भीतिविक्लवे ।
केसरी दिनषष्ट्याभूदेको रोमकनायकः ॥५७॥
विक्रमेण श्रियं वीरो नयेन हृदयं तथा ।
रोमकाणां वशीकृत्य पम्पियं जेतुमैहत ॥५८॥

फलशाल्या रणे वीरः पराभूय स पम्पियम् ।
यवनेभ्योऽजपुत्रांस्तमन्वधावत्पलायितम् ॥५९॥

स लावण्यतरङ्गिण्यां पुलोमास्त्र भूपतेः ।
बद्धप्रीतिः स्वसर्यासीच्छ्रीपत्रायां महामनाः ॥६०॥
अजपुत्रैर्हते चासौ पम्पिये स्फीतविक्रमः ।
प्रियापक्षमवालम्ब्य पुलोमानं रणेऽवधीत् ॥६१॥
अभिषिच्य च तां राज्ये मित्रदत्तसुतं बली ।
जित्वोत्तरस्यामैहिष्ट विजेतुं पम्पियानुगान् ॥६२॥
मध्याब्धेर्दक्षिणे तीरे कटुना श्रीप्रियेण च ।

नीतामचूर्णयत्सेनां पम्पियस्यानुयायिनाम् ॥६३॥
कटुश्रीप्रिययोश्चैव नैराश्यादात्महत्यया ।
विपन्नयोः प्रजाराज्यं रोमकाणामुपारतम् ॥६४॥
अभूत्केसरिवीरस्य बलिनो रोमपत्तने ।
समं जैत्रप्रवेशेन साम्राज्योपक्रमः स्फुटम् ॥६५॥

नाभिपिच्यत राजासौ सेनानीर्नाम चाभवत् ।
तथापि तस्य नामैव सम्राट्पर्यायतां गतम् ॥६६॥
शर्मण्यानां च रूष्याणामन्येषां च महीभुजाम् ।
अद्यापि केसरिपदं साम्राज्यपिशुनं स्थितम् ॥६७॥
परःशतेषु युद्धेषु स रिपून्प्रयुताधिकान् ।
निहत्य रोमसाम्राज्यं व्यधाद्भुवनभूतये ॥६८॥
नयेन राज्यमशिषद्वार्त्तां व्यस्तारयत्सुधी ।
पञ्चाङ्गं शोधयामास संचस्कार नदीह्रदान् ॥६९॥
सर्वात्मीयोपकाराय श्रीर्नीतिश्चास्य सर्वदा ।
कवित्ववक्तृत्वकला तथैवासीत्सरस्वती ॥७०॥
यन्न वर्षसहस्रेण कर्त्तुं संपार्यते परैः ।
वर्षद्वयेन तच्चक्रे केसरी क्रान्तभूतलः ॥७१॥
अथ तद्गौरवे बद्धमहर्घ्यैर्भ्रूतुपादिभि ।
प्रशासनसदस्थोऽसौ कृतघ्नैर्निहतश्छलात् ॥७२॥
ररक्ष केसरी कायं कृतघ्नेभ्यो महाबलः ।
यावत्पाणौ न सोऽपश्यद् भ्रूतुपस्यासिपुत्रिकाम् ॥७३॥
असिपुत्री करे तस्य सुहृदोऽप्यवलोक्य सः ।
कृतघ्ने भुवने कायं न रक्षार्हममन्यत ॥७४॥

इत्यष्टमी वीचिः ।

अथ केसरिवीरस्य स्वस्त्रीयोऽष्टभमाभिधः ।
गभीरनीतिकपटः साम्राज्यं कर्त्तुमैहत ॥१॥
अन्तर्नयादिसाहाय्यात्स हत्वा श्रीकरादिकान् ।
असंख्यान्मनुजान्क्रूरो नेताऽभूद्रोमपत्तने ॥२॥
भ्रूतुषेण च काश्येन यवनानुत्तरेण सः ।
व्यूढां महाचमूं वेगान्महासैन्यो व्यचूर्णयत् ॥३॥
काश्यश्च भ्रूतुषश्चाथ विपन्नावात्महत्यया ।
छलिनामामिषत्वं च रोमसाम्राज्यमभ्यगात् ॥४॥

अन्तर्नयश्चाष्टभयश्चाथ राज्यं विभज्य तौ ।
बुभुजाते शवं गृध्रशृगालाविव निर्जने ॥५॥
पुरीमलिकचन्द्रीयां तथा रोमकपत्तनम् ।
राजधानीमधिष्ठाय राज्यमेतौ प्रचक्रतुः ॥६॥
अन्तर्नयोऽजपुत्रेषु श्रीपत्राप्रेममोहितः ।
कुलं च चरितं चैव विस्मृत्य व्यसनेऽपतत् ॥७॥
श्रीपत्रान्तर्भयावष्टभयेन यवनाम्बुधौ ।
पराभूतौ व्यपद्येतां पलाय्य निजहत्यया ॥८॥
रोमसाम्राज्यभागित्वमजपुत्रास्ततोऽगमन् ।
अधस्त्यनाम्नाष्टभयश्चासौ सम्राडजायत ॥९॥
राजोपाधि न चकमे रोमकाप्रीतिकारणम् ।
शनैर्निजाधिकारान्स कृत्स्नान्स्वस्मिन्न्यधाच्छली ॥१०॥
आ तीरादुत्पथायाः स आभ्यर्णात्तुङ्गवारिधेः ।
आ शर्मण्याम्बुधेरा च सहाराख्यमरुस्थलम् ॥११॥
एकातपत्रं साम्राज्यमगस्त्यो नीतिमानशात् ।
सहार्धत्रिशतायामं सहाङ्घ्रिशतविस्तृति ॥१२॥

इति नवमी वीचिः ।

अथाधिचत्वारिंशांश्च वत्सरान्कृतशासने ।
अतीतेऽगस्त्यनृपतौ त्रिवैरोऽभून्नराधिपः ॥१॥
व्यभिचारकलिप्रायव्यसनासक्तचेतसाम् ।
तादृशाः प्रायशोऽभूवन्रोमकाणां नराधिपाः ॥२॥
स्त्रीनिमित्तेषु वैरेषु योधवैरेषु वा नृपाः ।
प्राणान्प्रजुहवाञ्चक्रुश्चुक्रुशुश्च प्रजा भृशम् ॥३॥
प्रजाभाग्योदयात्केचित्त्रिजनाद्या महाधियः ।
यदा कदाप्यजायन्त नृपा नीतिपरायणाः ॥४॥
अथ रोमपुरे वीक्ष्य व्यसनार्णवतां गतम् ।
कंसतन्तुर्नृपः प्राच्यां कंसतन्तुपुरीं व्यधात् ॥५॥

ख्रीस्तीयं धर्ममालम्ब्य कंसतन्तुर्महाबलः ।
कंसतन्तुपुरे तिष्ठन् रोमकानशिषत्सुधीः ॥६॥
तस्मिन्नतीते कतिचिद्बभूवुर्दुर्बला नृपाः ।
एकातपत्रः सम्राट् च देवदासोऽन्तिमोऽभवत् ॥७॥

इति दशमी वीचि. ।

देवदासस्य दायादैर्द्विधा राज्यमभज्यत ।
प्रतीच्यं रोमकेन्द्रं च प्राच्यं कंसपुराश्रयम् ॥१॥
अगस्त्यराज्याद्याते च समाशतचतुष्टये ।
जातः शर्मण्यवन्यानां विसर्पो दारुणो भुवि ॥२॥
ये दानवनदोपान्तकान्तारे दारुणान्तरे ।
गौथाख्या भीषणाचारा अभूवन्राक्षसाः किल ॥३॥
उपद्रुतास्ते सहसा हूणतर्तरकर्मुकैः ।
घोरा घोरतराचाराकारैः कुणपभक्षिभिः ।
पलाय्य रोमसाम्राज्यं शरणीचक्रिरे भिया ॥४॥
हत्वा बलांशं सम्राजं कृतघ्ना गौथराक्षसाः ।
रोमराज्ये विनाथे च ते व्यसर्पन्विसर्पवत् ॥५॥
अलर्कं नायकं स्वीयं चर्मण्यारोप्य दारुणैः ।
दग्धं च लुठितं रोमपत्तनं गौथराक्षसैः ॥६॥
गौथमण्डलगौराद्यैर्वन्यैरित्थं बलोद्धतैः ।
रोमसाम्राज्यकुणपाल्लुप्तान्यङ्गानि सर्वतः ॥७॥
अत्रान्तरे हूणगृहादस्थिलो हूणनायकः ।
वन्यानां प्रयुतेनागाज्जयाय जगतः किल ॥८॥
स तीर्त्वा रयिणीं घोरो गौरान्दुद्राव वेगवान् ।
गौरादिसहितैश्चैव रोमकैस्तु पराजितः ॥९॥
अल्पपर्वतमुल्लङ्घ्य रोमकांश्च विलुठ्य सः ।
एत्य हूणगृहं घोरः सहसैव व्यपद्यत ॥१०॥

गतमात्रेऽस्थिले चाथ जयश्रीर्मण्डलाधिपः ।
करध्वजपुरादेत्य व्यलुण्ठद्रोमपत्तनम् ॥११॥
विलुठ्यमानात्पद्मं च मण्डलैर्मूलकैस्तथा ।
निन्यिरे रोमनगरान्नौभिर्वन्ध्यो धनानि च ॥१२॥
अगस्त्यराज्याद्वर्षाणां गतेऽथ शतपञ्चके ।
नाममात्रेण सम्राजं रौमिलागस्तिलाह्वयम् ॥१३॥
रोमसिंहासनाद्वालं विसृज्य कृतवेतनम् ।
रोमकाणामभूद्राजा शर्मण्य उदयाकरः ॥१४॥
प्रायोऽस्मिन्नेव समये हूणैर्बलमदोद्धतैः ।
उपद्रुता भारतभूर्नाशिता चार्यसभ्यता ॥१५॥

इत्येकादशी वीचि. ।

भारतीयान्विनाश्येत्थं तथा यवनरोमकान् ।
शनैर्वैन्येषु सभ्यत्वं यत्तु सभ्यसमागमात् ॥१॥
कुलूताश्चैव तौताश्च श्राव्याश्चेति त्रयोऽभवन् ।
जेनवर्गा भविष्यन्त्याः सभ्यताया अथाश्रयाः ॥२॥
तुङ्गाब्धिकूलादवसन्क्रमादेते पुरः पुर. ।
हूणाश्चैव तुरुष्काश्च स्थिता एषां पुरस्ततः ॥३॥
पाश्चात्ये रोमसाम्राज्ये नाशिते वन्यजातिभिः ।
पौरस्त्यमासीत्साम्राज्यं कंसपत्तनकेन्द्रकम् ॥४॥
जुष्टन्यायाभिधः सम्राट् कंसतन्तुपुरेऽभवत् ।
महामतिर्महावीर्यो जनानामभिपूजितः ॥५॥
तत्सदस्यैस्त्रिवन्याद्यैश्चक्रिरे धर्मसंहिताः ।
आचारव्यवहारादिसंग्रहाय मनीषिभिः ॥६॥
देवदत्ते गते प्राच्यगौथनाथेऽत्ययं ततः ।
जुष्टन्यायस्य सेनानीर्बलासारो महाबलः ॥७॥
प्रविश्येष्टालयान्वीरो जगृहे रोमपत्तनम् ॥
नरशेषस्ततः षण्ढः सम्राट् सैन्यैरवारितैः ।
गौथान्विद्राव्य वशयाम्बभूवैष्टालयान् बली ॥८॥

जुष्टन्याये ततोऽतीते लम्बर्द्धिभिरुपद्रुताः ।
चक्रुर्वेणीशनगरं रोमका आर्द्रयात्रिके ॥९॥
अथ नीतैः श्रवेशेन स्फाराङ्गैर्यन्महाबलैः ।
परेशकेन्द्रकं राज्यं स्थापितं विजिगीषुभिः ॥१०॥
तत्र कालेन कियता बलहीनेषु राजसु ।
अभूच्चमूभृतो राज्यं करलस्थमहौजसः ॥११॥
अत्रान्तरे च शर्मण्यैः श्वेतद्वीपे विनिर्जिते ।
बभूव वन्यप्रायासु विप्लवः किल जातिषु ॥१२॥

इति द्वादशी वीचिः ।

अत्रान्तरे किलारव्यो महामद इति श्रुतः ।
ख्रिस्तवत्सेश्वरं द्वैतमतं प्रावर्त्तयत्स्थितौ ॥१॥
स्वीकुर्वन् दिव्यतां ख्रिस्तमतस्यापि महामदः ।
सर्वोत्तमं निजमतं ख्यापयामास भूतले ॥२॥
खड्गहस्तो मतं स्वीयं बलेनासौ प्रवर्त्तयन् ।
जित्वारव्यभुवं मानी जिगीषुः पञ्चतामगात् ॥३॥
अथास्यार्बुदवक्त्राद्यैरनुगैर्बलशालिभिः ।
आ सुफेनभुवो देशा जिता आ भारतादपि ॥४॥
विजित्य रुद्रकं गौथं सुफेनेषु प्रसृत्वराः ।
करलेन निरस्तास्ते स्फाराङ्गपृतनाभृता ॥५॥
करध्रुवा सुफेनेषु प्राच्यां व्याघ्रतटं तथा ।
चिरं महामदीयानां राजधानीत्वमाभजत् ॥६॥
पुत्रो महामदीयारेः करलस्य नृपोऽभवत् ।
स्फाराङ्गेषु प्रवीणाख्यो बलशाली नयोज्ज्वलः ॥७॥
प्रवीणस्याभवत्पुत्रो महाकरलनामकः ।
देशाधीरस्य लम्बर्द्धेर्जेता भीमपराक्रमः ॥८॥
शर्मण्यशाकहूणादीन्विजित्यासौ महाबलः ।
महामदात्सुफेनेषु नमयामास भूमिपः ॥९॥

विनाश्य भीमाँल्लब्धर्द्धीस्तेषां मुकुटमायसम् ।
आच्छिद्य करलः पूजां चक्रे ख्रिस्तपुरोधसः ॥१०॥
इत्थमर्जितवान्राज्यं सुमहत्करलो बली ।
केसर्यगस्त्यः सम्राडित्याख्यां ख्रिस्तपुरोधसः ॥११॥
तृतीयलेयात्संप्राप्य शशास धरणीं चिरम् ।
लिपिव्याकृतितर्कादिविद्यासु विहितश्रमः ॥१२॥
वीराकारः स मद्यादिव्यसनेभ्यः पराङ्मुखः ।
बद्धप्रीतिरभूच्छूल्ये सद्योहतमृगामिषे ॥१३॥
आरुणाख्ये पुरे राजा शकानामष्टमे शते ।
सामन्तेभ्यः करं गृह्णन् कृतसख्यो महौजसा ॥१४॥
अपि व्याघ्रतटेशेनारुणराजेन धीमता ।
चतुर्णां शशासार्धशती स शरदां भुवम् ॥१५॥
द्विसप्ततिवयस्केऽथ गते करलभूपतौ ।
लवेशस्तस्य पुत्रोऽभून्निर्वेदपरमो नृपः ॥१६॥
निर्वेदपरमे तस्मिन्दायादैः परिपीडिते ।
साम्राज्यं करलस्याभूद्विशीर्णं खण्डशस्ततः ॥१७॥
साम्राज्यनाशात्सर्वत्र भूमिहारैरितस्ततः ।
क्षुद्रदुर्गकृतावासैर्जनानां शासन कृतम् ॥१८॥
दासैश्च दासप्रायैश्च भूबद्धैः कृषकैरपि ।
सेव्यमानाः स्वतन्त्रत्वात्तेऽभवन्स्वैरचारिणः ॥१९॥
भक्ष्यमाणाः प्रजाश्चैव रक्षकैरेव भूरिशः ।
पतिता. पारतन्त्र्याग्नौ चुक्रुशुर्भृशदुःखिताः ॥२०॥
प्रायः सर्वत्र भूपृष्ठे न्यायविप्लवदूषिते ।
मोहगर्त्ते कृतावासा जनता दुःखभागभूत् ॥२१॥
रोमकादौ कृतावासा यतिलिङ्गाः पुरोधसः ।
भूदेवाः समजायन्त यदृच्छाचारतत्पराः ॥२२॥
हृद्रन्धाख्यो यतिस्तक्ष्णः पुत्रः कस्यापि नीतिमान् ।
अथाभून्मतिमाहात्म्यात्पुरोधा रोमपत्तने ॥२३॥

राक्षसान्वेषणव्याजाद्धर्मिणो वीरदस्यवः ।
भ्रेमुस्तुरगमारूढाः स्त्रीवित्तविचयोद्यताः ॥२॥
पुस्तकानामसौलभ्याज्जने प्रायो निरक्षरे ।
अन्धगोलाङ्गूलभक्तिः सर्वथा भुवि पप्रथे ॥३॥
मूर्खैर्वह्निपरीक्षाद्यैः कृतो मतविनिर्णयः ।
गतं शिल्पं कृषिर्हीना वणिज्या नाशमागता ।
दुर्गेभ्यो निःसरन्तश्च दस्यवो भीतिमावहन् ॥४॥
मठेषु निवसन्तस्तु यतयो ब्राह्मणास्तथा ।
कृष्यादिजीविनोऽभूवन् विद्याभ्यासपरा भुवि ॥५॥
क्षत्रे मलिम्लुचे भूमीहारेषु जनशत्रुषु ।
विद्या यतिपुरोधःसु दीना शरणमैहत ॥६॥
आर्त्तानां शरणं नृणां परितः कृषिशालिन. ।
विद्यायाः परमं क्षेत्रं मठा आसन्नितस्तत. ॥७॥
प्राच्यार्यरोमयवनसभ्यत्वे कवलीकृते ।
हूणगौथतुरुष्काद्यैः पुराणि क्षयमावहन् ॥८॥
प्रलयो न चिराद्भावी भुवनस्येति सर्वतः ।
किंवदन्ती प्रववृते मोहग्रस्तेऽखिले जने ॥९॥
भाविनि प्रलयेऽस्मिंश्च विश्वासोऽभून्नृणां दृढः ।
आज्ञालेखेषु राज्ञां हि प्रत्नेष्वस्यास्ति वर्णना ॥१०॥
अद्यापि तादृशो मोहो भारतीयेषु वर्त्तते ।
येन कल्किकृतं सर्वे प्रतीक्षन्ते विनाशनम् ॥११॥

इति पञ्चदशी वीचिः ।

अथ कालेन भूयोऽपि पुराण्युदभवन् क्षितौ ।
सभ्यताङ्कुरपोषाय सुक्षेत्राणीव सर्वतः ॥१॥
इष्टालयेषु शर्मण्येष्वप्यभूवन्पुरव्रजाः ।
वाणिज्यशिल्पविद्यादिगृहाणीव विशेषतः ॥२॥
शर्मण्यपत्तनानां या प्रथिता हंससंततिः ।
जले स्थले च सात्मानं दस्युभ्यः पातुमुत्थिता ॥३॥

वेणिकाद्या महापुर्य स्वतन्त्रा विपुलर्द्धयः ।
इष्टालयेष्वराजन्त सभ्यतावृद्धिहेतव ॥४॥
निर्माणे कौशलं नृणामूर्णाकौशेयवाससाम् ।
क्रमेण पप्रथेऽभूवञ्श्रेष्ठिनो वृद्धिजीविनः ॥५॥
धूमनिर्गमशुण्डाभिः काचवातायनैस्तथा ।
परिष्कृतानि वेश्मानि पर्यदृश्यन्त च क्रमात् ॥६॥
उच्चप्रतरतीर्थादौ विश्वविद्यालयाः शनैः ।
पर'सहस्रच्छात्राढ्या भेजिरे महतीं प्रथाम् ॥७॥
सूच्यग्रे कति गीर्वाणा' स्थातुं युगपदीशने ।
सक्ता ईदृशतर्केषु साक्षरा क्रमशस्तत ॥८॥
शुष्कवादान्विहायेमान्गणितादौ धियं दधु ॥९॥
विश्वविद्यालया वेधालयाश्चैवाद्भुतालया· ।
आख्याणामभूवन्ये जिगीषूणामितस्ततः ॥१०॥
ज्योतिर्गणितवास्त्वादिविज्ञानं तदुपक्रमम् ।
शनैर्जाग्रत्सु पाश्चात्यजनेष्वथ च पप्रथे ॥११॥
शृङ्गारवीररौद्रादिविरुदानि यतस्ततः ।
गायन्त प्रचरन्ति स्म सूतमागधवन्दिनः ॥१२॥
दन्त्यादयोऽथ कवयो दिव्यप्रहसनादिकम् ।
काव्यजालं विनेयानामुदयाय प्रणिन्यिरे ॥१३॥
चापप्रायामनादृत्य रोमशैलीमथ प्रजाः ।
कोणप्रधानां गौथीयां वास्तुशैली र्च भेजिरे ॥१४॥
अभ्रलिहैर्देवगृहैः सद्गवाक्षैः सचित्रकैः ।
महर्द्धिपिशुनैः पुर्योऽलंकृताः सुषमां दधुः ॥१५॥
चित्रकर्माणि वाद्यादिकलासु च जना पुनः ।
कौशलं क्रमश सभ्या उदयाय भुवो दधुः ॥१६॥
इति षोडशी वीचिः ।

अतीते करलेशे च लवेशे तत्सुते गते ।
फ्रांस्येष्टालयशर्मण्या विभक्ता अभवन्पुनः ॥१॥

राज्यत्रयं च साम्राज्यात्करलेशस्य निर्गतम् ।
फ्रांस्येष्टालयशर्मण्यनामभिः प्रथितं भुवि ॥२॥
गतेषु कारलेशेषु प्रशास्य च समाः शतम् ।
वृतः शर्मण्यसामन्तैः सुनर्दो भूमिपो बली ॥३॥
गते सुनर्दे सुनरो वृतः क्षितिपतिस्ततः ।
महौजास्तत्सुतः सुस्थः पालयामास गां ततः ॥४॥
लोष्ट्रस्येष्टालयेशस्य विधवां परिणीय च ।
पवित्ररोमसाम्राज्यं सुस्थोऽस्थापयत क्षितौ ॥५॥
आसीन्महामदीयानां सुफेनेषु यदूर्जितम् ।
ह्रासमाप्य शनै राज्यं श्रीनदे तन्नियन्त्रितम् ॥६॥
वृद्धिनन्देशबलयोरचिरात्परिणीतयोः ।
विक्रान्तिवज्रपातेन सहसा तद् व्यशीर्यत ॥७॥
वृद्धिनन्देशबलयोर्नप्ता सम्राण्महाबलः ।
पञ्चमः करलेशोऽभूत्सुफेनादिभुवामथ ॥८॥
चतुर्दशे लवेशेऽथ द्रविणं विनयं तथा ।
गते विनाश्य फ्रांस्यानां देशोऽभूदतिदुर्गतः ॥९॥
राज्ये पञ्चदशस्याथ श्रवेशस्य विटैः कृतम् ।
तदीयनर्मसचिवै राष्ट्रस्य कदनं महत् ॥१०॥
नासावविनयो नैवामीभिर्यो नावलम्बितः ।
न तद् व्यसनमुत्प्रेक्ष्यं यन्नैव शरणीकृतम् ॥११॥
निष्प्रयोजनसंग्रामैर्हठाच्च करकर्षणैः ।
कृषकेभ्यो दरिद्रेभ्यश्चुक्रुशुः कृपणाः प्रजाः ॥१२॥
भूस्वामिनो विटा राज्ञः सचिवाः सर्वतो हृतैः ।
अर्थैः प्रतोषयन्ति स्म वेश्याभण्डकबन्धुलान् ॥१३॥
मृते च राज्ञि तत्पुत्रः श्रवेशः षोडशस्ततः ।
उपविंशवया राज्यमभजत्प्रियदर्शनः ॥१४॥
असत्यमनयं छद्म व्यसनं च जगद्गतम् ।
निनाशयिषवो जाताः कविदार्शनिकास्ततः ॥१५॥

वार्त्तारिरोष्यश्रीवेशचन्द्रिलाद्युपदेशतः ।
फ्रांस्यानां दुर्दशार्त्तानामुन्मादो द्विगुणोऽभवत् ॥१६॥
राज्ञोमात्यविटैः कोशं भक्षयद्भिर्यथासुखम् ।
न सेहे तुरगः कोशाध्यक्षो दोषान्विशोधयन् ॥१७॥
श्रेष्ठी निष्कलनामा च कोपाध्यक्षस्ततोऽभवत् ।
भूस्वामिनां प्रकोपेन मानी सोऽपि पद जहौ ॥१८॥
कृषीवलेभ्यः कर्षन्तो दुर्गतेभ्यः करान्गुरून् ।
राज्ञे भूस्वामिनो नैव दातुमैच्छन्करं किल ॥१९॥
राज्ञे कपटमेतं च दर्शयन्निष्कलः सुधीः ।
भूस्वामिनामभूत्कोपभाजनं छलिनामसौ ॥२०॥

इति सप्तदशी बीचिः ।

अत्रान्तरे च फ्रांस्यानां साहाय्यात्तुङ्गवारिधेः ।
पारे धूताङ्ग्लनिगडा स्वायत्ताभूदमेरिका ॥१॥
अमेरिकां स्वतन्त्रां च पश्यन्त. फ्रास्यका जनाः ।
तीव्रेणान्तरदह्यन्त पारतन्त्र्याग्निना भृशम् ॥२॥
करदुःखानभिज्ञेषु देशस्यार्धाधिकां भुवम् ।
भूमिहारपुरोधःसु भुञ्जानेष्वपि कामतः ॥३॥
भूचतुर्थांशमात्राय राज्यव्ययमहाधुराम् ।
वहन्तश्चुक्रुशुर्दीनाः कृषीवलनृपा भृशम् ॥४॥
कोषाध्यक्षेष्वशक्तेषु कोशदोषविशोधने ।
भूयोऽपि निष्कलः श्रेष्ठी कोशाध्यक्षपदं दधे ॥५॥
आहूतवाञ्जनसभां मनीषी निष्कलस्ततः ।
राष्ट्रस्य व्यसनार्त्तस्य परित्राणाय सर्वतः ॥६॥
भूमिहारपुरोधःसु सामान्यजनसन्निधौ ।
उपवेष्टुमनिच्छत्सु जनताभूत्ततः पृथक् ॥७॥
सदोगृहप्रवेशाच्च जनतां विनिवारयन् ।
विससर्ज नृपस्ततो निष्कलं जनवल्लभम् ॥८॥
अथ प्रकोपक्षुभिता जनतापि मनस्विनी ।
शेपे स्वातन्त्र्यलाभाय प्राणरक्षानपेक्षिणी ॥९॥

जातिवृत्तिकृतो भेदः प्रत्यादिश्यत सर्वथा ।
करभारश्च सर्वेषु निर्विशेषं व्यभज्यत ॥१०॥
वाचि धर्मे च नीतौ च स्वातन्त्र्यमभजञ्जनाः ॥
वीरशैले स्थितो राजा सेनया रक्षितोऽपि सन् ।
चकम्पे घोषमाकर्ण्य जनतावारिधेर्मुहुः ॥११॥
यान्ती जनसदो भङ्क्तुं श्रुत्वा सेनां चमूपतेः ।
पारीशनगरे क्षोभस्तुमुलोऽजायत क्षणात् ॥१२॥
जनान्हन्तुमनिच्छत्सु प्रेक्षमाणेषु रक्षिषु ।
विलुठ्य नगरं सर्वे वस्तिलाभिमुखं ययुः ॥१३॥
अथ रक्षिसहाया च साग्न्यस्त्रा जनतोच्चकैः ।
क्रोशन्ती वस्तिलं दुर्गमुन्मत्ता जगृहे बलात् ॥१४॥
निहत्य दुर्गाधिकृतमन्यांस्तत्र स्थितास्तथा ।
भस्मसात्कृत्य सौधांश्च जनौघोऽप्रतिवारितः ॥१५॥
अङ्गीचक्रे ततो भीतैर्भूमिस्वामिपुरोहितैः ।
सामान्यजनवत्सर्वे करदानादि राजनि ॥१६॥
नृपस्तु सैनिकांस्त्रासादाजुहाव विमूढधीः ।
अभोजयत्सभार्यश्च प्रासादे तान्समादृतः ॥१७॥
राज्ञा सह कुमाराङ्कां कृपणां महिषीं ततः ।
पश्यतां सैनिकानां च कारुण्यमुदपद्यत ॥१८॥
शपथं राजभक्तेश्च महोत्साहा विधाय ते ।
पद्भ्यां प्रजापताङ्काङ्कं त्रिवर्णमवचक्रमुः ॥ १९॥
श्रुत्वा सर्वमिदं वृत्तं द्विगुणोन्मादशालिनः ।
जनाः परेशनगराद्वीरशैलमुपाद्रवन् ॥२०॥
परःसहस्रक्षुधितस्त्रीपुंसकुलसंकुला ।
अन्नमन्नमिति क्षोभाद्रसन्ती साभ्यवर्तत ॥२१॥
आस्कन्द्य परितः सौधं प्रावृषेण्यां क्षपामसौ ।
क्रोशन्ती जनता घोरा भीषणामत्यवाहयत् ॥२२॥
रजन्यां तु प्रभातायां रन्ध्रं प्राप्य तरस्विनी ।
जनतानलधारासौ शुद्धान्तं प्राविशद्बलात् ॥२३॥

भज्यमाने कपाटे च भूमिभृद्वासवेश्मनः ।
परेशनगरादागात् श्रीस्फीतो रक्षिभिः सह ॥२४॥
कथंचित्सकुटुम्बोऽसौ तेन त्रातश्च भूपतिः ।
जनैरनीयत बलात्परेशनगरीं प्रति ॥२५॥
भूस्वामिनोऽपि संत्रस्ताः पलाय्य रयिणीतटे ।
नीताः कन्दुकुमारेण समयावेक्षिणः स्थिताः ॥२६॥
नृपोऽप्यवसरं प्राप्य परेशनगरादथ ।
पलायमान आस्कन्द्य प्रत्यानीतो जनैः पुरम् ॥२७॥
भ्रंश राजपदाच्चासो प्रापज्जनसदःकृतम् ।
पलायनापराधस्य श्रवेशो दण्डमानतः ॥२८॥
अश्रियक्षितिपादीनां सैन्यैर्लक्षाधिकैस्ततः ।
कृतं सामनि साहाय्यं राजपक्षभृतां महत् ॥२९॥
प्रजासेनापतिर्वीरो दुर्मर. सह सैनिकैः ।
अयुतद्वयमानैस्तान्निरस्याभूद्यशोधर. ॥३०॥
परेशजनता क्रुद्धा भूपति तूलराशितः ।
प्रासादाद्रक्षिणो हत्वा कारागारे न्यवेशयत् ॥३१॥
रभसप्रियमाराख्यदन्तुलैरथ घातुकैः ।
आरब्धं भीषणाकारैर्जनेषु कदनं महत् ॥३२॥
अघोष्यत प्रजाराज्यं दृढया जनसंसदा ।
प्रजाभिरभियुक्तश्च प्राणदण्डं नृपोऽभजत् ॥३३॥
सुफेनसूदशर्मण्यरूष्याङ्ग्लसुनदादयः ।
सायुधास्तत्प्रजाराज्यं समन्तात्पर्यवारयन् ॥३४॥
इतस्ततो गृहेष्प्यासीद्विक्षोभो लोकभीषण. ॥
इत्थं बाह्यान्तरक्षोभे घोरेऽपि दृढनिश्चयम् ।
महोत्साहं प्रजाराज्यं नमयामास वैरिणः ॥३५॥
लक्षद्वयं मनुष्याणां कारागारे न्यवेश्यत ।
अभियुक्तं प्रजाराज्यविरोधाख्यमहागसा ॥३६॥
कारागारादनीयन्त स्त्रीपुंसाः प्रतिवासरम् ।
शिरःकर्त्तनदण्डाय भीषणं कर्त्तनीस्थलम् ॥३७॥

प्रसह्य निहते मारे नार्या करलिकाख्यया ।
दन्तुले प्राणदण्डं च प्रापिते सानुगामिनि ॥३८॥
परःसहस्रान्मनुजान्घातयन्घोरनिष्ठुरः ।
वने व्याघ्र इव स्वैरं चचार रसभप्रियः ॥३९॥
जनतासदसस्त्रस्तस्याज्ञया रक्षिभिस्ततः ।
प्रसह्य निगृहीतोऽसौ रभसप्रियराक्षसः ॥४०॥
नैराश्यादात्मघाताय तमग्न्यायुधमुक्तया ।
चेष्टमानं गुलिकया भीषणं क्षतसृक्कणम् ॥४१॥
नरहत्यामहापापदुर्विपाकप्रतीक्षिणाम् ।
वधाधिकारिणो धृत्वा पशुमारममारयन् ॥४२॥
अलर्क इव दुर्दान्ते रभसप्रियराक्षसे ।
भक्षिते पातकैर्घोरैर्जनानां विरतं भयम् ॥४३॥
प्रशासनसभा चान्या कृता देशहितैषिभिः ।
यत्राधिकारः पञ्चानां प्रशास्तॄणां करे स्थितः ॥४४॥
परेशनगरीयास्तु युता जातीयरक्षिभिः ।
न प्रशास्तृसदः क्रुद्धा रोचयामासुरुद्धताः ॥४५॥
अथ प्रशास्तृसमितेर्वरराशिश्चमूपतिः ।
सहायं नयपालाख्यं वरयामास सैनिकम् ॥४६॥
वीरोऽसौ नयपाल्योऽपि प्रसादात्तूलराशितः ।
शतघ्नीगुलिकावर्षैर्दमयामास नागरान् ॥४७॥
नदन्तीषु शतघ्नीषु नयपाल्यस्य धीमतः ।
भयादिव गतः फ्रांस्यविप्लवः प्रशमं द्रुतम् ॥४८॥
शतघ्न्यधिकृतो वीरो नयपाल्यो महामनाः ।
इष्टालयचमूपोऽभूद्वरराशेरनुग्रहात् ॥४९॥
शर्मण्यसीम्नि फ्रांस्यानां गते सेनाद्वये ततः ।
इष्टालयानगाद्वीरो नयपाल्यः स्वसेनया ॥५०॥
लक्षाधिकान्किलाख्रीयानल्पीयस्यैव सेनया ।
हठान्निरस्य युद्धेषु नयपाल्यो महाबलः ॥५१॥

आस्कन्द्य मञ्जुकां गृह्णन्वेणीपुरमनुत्तमम् ।
सन्ध्येकशरणं चक्रेऽस्त्रियसम्राजमुद्धतम् ॥५२॥
प्रिययाथ सुशोभिन्या कंचित्कालं कृतस्थितिः ।
परेशनगरे वीरोऽजपुत्रानभ्यषेणयत् ॥५३॥
पुरीमलिकचन्द्रीयामास्कन्द्यातुलविक्रमः ।
मामल्लकान्पराजिग्ये कोणागारमहाहवे ॥५४॥
निजानुपस्थितौ हन्त स्वपोतान्नलसूनुना ।
दग्धान्नीलनदे धीरो निशाम्यापि न विव्यथे ॥५५॥
विचूर्ण्य च तुरुष्कादीन्भारतं गन्तुमुद्यतः ।
जनेषु क्षोभमाकर्ण्य फ्रांस्यान्प्रत्याजगाम सः ॥५६॥
स तत्राराजकं दृष्ट्वा जनशासनसंसदः ।
शान्तित्राणाक्षमत्वं च निजसाम्राज्यमैहत ॥५७॥
प्रविश्य संसदं वीरः सदस्यान्परिभर्त्स्य च ।
सेनामाज्ञापयामास तान्निर्वासयितुं बलात् ॥५८॥
मुरः सेनापतिस्तस्य नदत्सु पटहेष्वथ ।
सदस्यानश्रुताक्रन्दान्निर्वास्यारेचयत्सभाम् ॥५९॥
नाममात्रकृतस्थित्या सहैव जनसंसदा ।
नयपाल्योऽशिषत्फ्रांस्यान्केसरीवाथ रोमकान् ॥६०॥
व्यस्तारयद्वणिज्यां स क्रमात्कोशमवर्धयत् ।
सेनां च विपुलीचक्रे जनान्प्रोत्साहयन्कृती ॥६१॥
नयपाल्यनयेनेत्थं फ्रांस्येषु बलवत्स्वथ ।
आङ्ग्लास्त्रियादयो द्वेषं बबन्धुर्द्रोहबुद्धय ॥६२॥
तीर्त्वाल्पशिखरं मानी हिमानीदुर्गमं ततः ।
सैन्यैरिष्टालयेषूग्रान्बबाधेऽस्त्रियसैनिकान् ॥६३॥
त्रिगुणामप्यसौ सेनामस्त्रियाणां विचूर्णयन् ।
बली माराङ्गसंग्रामे विस्मयेऽमज्जयज्जगत् ॥६४॥
मयूराख्योऽस्य सेनानीरुत्कटां रयिणीतटे ।
जिगायास्त्रियसेनां च शोभनालिन्दसंयति ॥६५॥

वरग्रीवैर्युतं वीरः स वामं रयिणीतटम् ।
अस्त्रियेभ्यः समाच्छिद्य शान्ति भूमावतिष्ठिपत् ॥६६॥
वारिधौ तूद्धतानाङ्ग्लाञ्शमयिष्यन्महामनाः ।
रूष्यसूदादनुप्रोष्य संहृति समसाधयत् ॥६७॥
नयपाल्यस्मृतेर्नाम्ना प्रसिद्धां धर्मसंहिताम् ।
प्रजाभ्युदयकामोऽसौ विद्वद्भिः समजिग्रहत् ॥६८॥
शिक्षान्यायवणिज्यादि शिल्पमार्गाकरादि च ।
यथावद्वर्णयामास नयपाल्यः प्रजाकृते ॥६९॥
प्रीताभ्यश्च प्रजाभ्योऽसौ लब्ध्वा सम्राट्पदं कृती ।
न सेहे पालयन्राज्यमाङ्ग्लैः परममर्षिभिः ॥७०॥
फ्रांस्यवाणिज्यनाशेऽसावाङ्ग्लान्पश्यन्प्रयासिनः ।
तदाक्रमाय पोतानां संभारं विपुलं व्यधात् ॥७१॥
रूष्यास्त्रियचमूं श्रुत्वा प्रसर्पन्ती च वेगवान् ।
स तीर्त्वा रयिणीं सैन्यैर्ददौ युद्धं महाबलः ॥७२॥
मखमस्त्रियसैन्येशं पराभूयायुतत्रयम् ।
वन्दीकृत्यास्य सैन्यानां वीणां वीरोऽविशत्पुरीम् ॥७३॥
वीणापुरमतीत्यासावस्त्रलेशमहाहवे ।
रूष्यास्त्रियचमूं युक्तां महावीरो व्यचूर्णयत् ॥७४॥
हत्वा सार्धायुतं नॄणां वन्दीकृत्यायुतद्वयम् ।
शतद्वयं शतघ्नीनामाच्छिद्य जयशालिनः ॥७५॥
अस्त्रियक्षितिपालोऽपि मानी मानसमुज्झितः ।
संध्यर्थी नयपालस्य भीतः शिविरमाययौ ॥७६॥
राज्यार्धं द्रव्यकोटीश्च निर्जितोऽस्त्रियभूपतिः ।
समर्प्य नयपाल्याय निजरक्षां समैहत ॥७७॥
स्वतन्त्रयित्वा शार्मण्यानस्त्रियेन्द्रान्महाबलः ।
पवित्ररोमसाम्राज्यं नयपाल्यो व्यनाशयत् ॥७८॥
आङ्ग्लास्कन्दोद्यतानाङ्ग्लो नलसूनुर्व्यनाशयत् ।
अत्रान्तरेऽस्य पोतांस्तु त्रिफल्वाख्येऽन्तरीपके ॥७९॥

नयपाल्यस्त्वनिर्विण्णः सुनदे नूपुरे तथा ।
भ्रातरावात्मनो मानी राजानावभ्यषेचयत् ॥८०॥
अवरस्थितियज्ञाख्ययुद्धयोरथ चूर्णयन् ।
प्रोष्यानह्वायमेकेन प्राविशद्वर्णिपत्तनम् ॥८१॥
स्फीतनन्दाहवे वीरो रूष्याणामयुतानि षट् ।
निहत्य तेषां सम्राजं संध्येकशरणं व्यधात् ॥८२॥
प्रोष्य राज्यार्धमाच्छिद्याभिषिच्यात्र तथानुजम् ।
सुफेनेषु कृतक्षोभानाङ्ग्लानशमयत्कृती ॥८३॥
पुनरुत्थायिनश्चासावस्त्रियांश्चण्डविक्रमः ।
वग्रामाहवे जित्वा दमयामास दुर्दमान् ॥८४॥
सुशोभिनीं परित्यज्य पुत्रार्थी दयितां ततः ।
उपयेमे श्रवेशां स तनुजामस्त्रियेशितुः ॥८५॥
आ सुफेनेभ्य आ प्रान्तादस्त्रियाणां च वीर्यवान् ।
आ मध्यसागरादा च सूदेभ्यो राज्यमूर्जितम् ॥८६॥
प्रशासदथ नीत्यासौ रूष्यान्वीक्ष्याङ्ग्लपक्षगान् ।
न सेहे दण्डयिष्यंश्च तान्बलादभ्यषेणयत् ॥८७॥
विजयोर्जितसत्त्वश्च रूष्यैर्धूर्तैः प्रलोभितः ।
सम्राण्मुष्कपुरं तेषां विवेशाप्रतिवारितः ॥८८॥
रिक्तं मुष्कपुरं वीक्ष्य सैनिकास्तस्य विस्मिताः ।
अतिष्ठंस्तत्र रूष्यास्तु नैराश्याददहन्पुरम् ॥८९॥
भस्मीभूते पुरे फ्रांस्या जयिनोऽपि हिमार्दिताः ।
निरालया निरन्नाश्च प्रत्यावर्त्तन्त दुर्गताः ॥९०॥
नयपाल्यस्त्वनिर्विण्णः पारीशं प्राप्य दुर्दमः ।
सेनामभिनवां मानी कथंचिद् व्यूढवाञ्जवात् ॥९१॥
प्रोष्यान् रूष्यांश्च जित्वासौ वेगवानाहवद्वये ।
श्रीस्फिग्रणे पराभूतिं ययावप्रौढसैनिकः ॥९२॥
अथास्त्रियादिपृतना नयपाल्ये पराजिते ।
पार्ष्णिग्राहेऽपि पारीशपत्तनं जगृहे बलात् ॥९३॥

सम्राडपि च्युतो राज्यान्नयपाल्यो न्यमन्त्र्यत ।
पाश्चात्यैर्भूमिपैरर्वद्वीपे क्षुद्रे महाबलः ।
अवेशोऽष्टादशश्चाभूत्फ्रांस्यानां नृपतिस्ततः ॥९४॥
नारज्यज्जनता त्वस्मिन्मूर्खे भूमिपतौ क्षणम् ।
नयपाल्यं पुनर्वव्रेऽर्वद्वीपाच्च निर्गतम् ॥९५॥
बलाङ्गभ्रूचरौ चासावाङ्ग्लप्रोष्यचमूपती ।
अभ्यषेणयदुद्दण्डो ग्रामे बारिलवे बली ॥९६॥
अनतिप्रौढसैन्यत्वात्संग्रामेऽसौ पराजितः ।
फ्रांस्यांस्त्यक्त्वाङ्लवसुधां स्वतन्त्रः समुपाययौ ॥९७॥
अथैष विनिगृह्याङ्ग्लैः सदैवास्कन्दशङ्किभिः ।
प्रेषितो हरिणद्वीपं जठरे दक्षिणाम्बुधेः ॥९८॥
विविक्ते हरिणद्वीपे षड् वर्षाणि कृतस्थितिः ।
गर्जत्सु शुचिमेघेषु सम्राट् पञ्चत्वमागतः ॥९९॥
जगदेकप्रवीरे तु नयपालेऽत्ययं गते ।
सुस्थाः पाश्चात्यभूपालाः स्वस्वकार्यमसाधयन् ॥१००॥
जनशासननीत्याङ्ग्लाः सुविशोधितया मुहुः ।
भूमौ नातिचिरादासन्बलसंपत्तिशालिनः ॥१०१॥
व्यक्तोर्जायाश्च साम्राज्ये वलयीकृतभूतले ।
क्रिमीयादिषु रूष्यादीञ्जित्वाङ्ग्ला भेजिरे यशः ॥१०२॥
अथालकां प्रविश्यासावाङ्ग्लदूतचमूपतिः ।
उद्धतान्दमयामास यत्नानक्षीणविक्रमः ॥१०३॥
अवेशादिष्वशक्तेषु शास्तुं देशं सुदुर्दमम् ।
तृतीयो नयपाल्योऽभूत्फ्रांस्यकानां प्रशासकः ॥१०४॥
नयपाल्यस्य वीरस्य भ्रातृजोऽसौ कियच्चिरम् ।
फ्रांस्यान्नीत्वाथ शर्मण्यैर्महावीर्यैः पराजितः ॥१०५॥
अतीते नयपाल्ये तु तृतीये फ्रांस्यकैः पुनः ।
अस्थाप्यत प्रजाराज्यं चिराय जनशर्मणे ॥१०६॥
प्रोष्या अथास्त्रियाञ्जित्वा बलान्निष्पिष्य दुर्दमान् ।
फ्रांस्यान्नीवांस्तृतीयेन नयपाल्ये नवे गतः ॥१०७॥

मन्त्रिणा विषमार्केण सेनान्या मूर्त्तकेन च ।
चक्रुः शर्मण्यसम्राजं वीरं वलियसाभिधम् ॥१०८॥
अस्त्रियाधिष्ठितं यच्च नयपाल्येन नाशितम् ।
पवित्ररोमसाम्राज्यं स्थानेऽस्याविरभूत्पुनः ॥१०६॥
दृढं शर्मण्यसाम्राज्यं सर्वराजकपूजितम् ।
नीतिशिल्पकलावीर्यसंपदागारमुत्तमम् ॥११०॥
गिरिवर्ध्यादिनीनीत्या च विनिर्वास्यास्त्रियादिकान् ।
स्वातन्त्र्यमभजन्निष्टालयाः शासत्यमन्युले ॥१११॥
सूष्यान्स्वातन्त्र्यशत्रूंश्च दमयित्वा मदोद्धतान् ।
कर्पूरद्वीपजनता पाश्चात्त्यसमतामगात् ॥११२॥
समृद्धानीक्षमाणाश्च कर्पूरद्वीपवासिनः ।
चीना अपि प्रजाराज्यं बहुमन्यन्त नाचिरात् ॥११३॥
अथ पाश्चात्यदृष्टान्तमनुयान्तः क्रमादमी ।
तुरुष्काः पारसीकाश्च जनशासनमाश्रयन् ॥११४॥
नातिरोचयमानाश्च पौरस्त्यानां जिगीषुताम् ।
पारसीकास्तुरुष्कांश्च प्रबाधन्ते प्रतीच्यकाः ॥११५॥

—**—

वाङ्मयमहार्णवीयेतिहासकाण्डे
प्राचीनकविचरितविषयकाणि पद्यानि ।

अद्य शकाब्दाः १८३२, ख्रिस्ताब्दाः १९११, विक्रमाब्दाः १९६७ ।

चाणक्यचन्द्रगुप्तौ

चतुर्थशतकस्यादौ प्राक् शकारम्भकालतः ।
नन्दाः स्मृतिपथं नीता बलिना मौर्यभूभृता ॥१॥
सुमाल्याद्यैर्महापद्मनन्दः पुत्रैः समन्वितः ।
चन्द्रगुप्तेन चाणक्यपर्वताभ्यां च पातितः ॥२॥
आसीदमात्यश्चन्द्रस्य चाणक्याख्यो महामतिः ।
प्राणैषीदर्थशास्त्रं यो नृपाणामर्थमक्षयम् ॥३॥
शल्यकाद्यवनाधीशाद्बलेन विजितादसौ ।
गान्धारादीन्समाच्छिद्य चक्रवर्त्तित्वमाप्तवान् ॥४॥
चतुर्विंशति वर्षाणि राज्यं कृत्वा महाबलः ।
पुत्राय बिन्दुसाराय राज्यं दत्त्वा दिवं ययौ ॥५॥

शूद्रकः

शकाब्दारम्भतः पूर्वं तृतीये शतके बली ।
दक्षिणस्यामभूदान्ध्रः शिप्रुकाख्यो महीपतिः ॥१॥
शिप्रुकेण प्रकरणं तन्मृच्छकटिकं कृतम् ।
शूद्रकापरनाम्नेति केषांचिद्विदुषां मतम् ॥२॥
मगधेशं सुशर्म्माणं कण्वं स हतवानिति ।
बहुत्रैव पुराणेषु सुव्यक्तं समुदीरितम् ॥३॥

दण्डी

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति च ।
अरत्नालोकभेद्यं चेत्याद्या दण्डिकवेर्गिरः ॥१॥

मौर्यचन्द्रगुप्तस्य समय. शकेभ्यः पूर्वम् ४००–३७७ । चाणक्यस्य कृतिः अर्थशास्त्रम् ।

काव्यादर्शे धृता नूनमलङ्काराद्युदाहृतौ ।
शूद्रकात्कालिदासाच्च बाणादिति विदां मतम् ॥२॥

[का]लिदासो भारविश्च

समुद्रगुप्ततनयश्चन्द्रगुप्ताभिधो नृपः ।
जगाम विक्रमादित्यनाम्ना ख्याति महीतले ॥१॥
तृतीयशतकस्यान्ते त्रिशेषे चन्द्रभूपतिः ।
सिंहासनं समध्यास्य शकराज्यं व्यनाशयत् ॥२॥
सिन्धोः पारे स बाह्लीकान्सौराष्ट्रे शकसत्रपान् ।
विजित्य भारतस्यासीदेकच्छत्रो महीपतिः ॥३॥
समये विक्रमाङ्कस्य कालिदासो महाकविः ।
रघुवंशादिकाव्यानि कल्पस्थायीनि निर्ममे ॥४॥
अष्टत्रिंशतमब्दानामद्वितीयातपत्रकम् ।
परिपाल्योर्जितं राज्य शकशत्रुर्दिवं ययौ ॥५॥
सति पाटलसाकेतोज्जयिन्याख्ये पुरत्रये ।
राजधानीत्वयोग्येऽभूच्चन्द्र उज्जयिनीप्रियः ॥६॥
कवयोऽमरुमुख्याश्च दिङ्नागाद्याश्च तार्किकाः ।
प्रायोऽस्मिन्समयेऽभूवन्नस्मिन्देशे महाधियः ॥७॥
धारेशः सिन्धुराजोऽभूच्छकानां दशमे शते ।
नृपो वाक्पतिराजस्य मुञ्जाख्यस्यानुजो भुवि ॥८॥
पद्मगुप्तः परिमल-कालिदास इति श्रुतः ।
द्वितीयः कालिदासोऽभूत्सिन्धुराजसभामणिः ॥९॥
सिन्धुराजस्य पुत्रोऽभूत्प्रसिद्धो भोजभूपतिः ।
तृतीयः कालिदासोऽभूत्कश्चित्तस्य सभाभुवि ॥१०॥
सिन्धुराजस्य चरितं पद्मगुप्तेन निर्मितम् ।
यत्साहसाङ्कचरितं नाम्ना विद्वत्सु विश्रुतम् ॥११॥
तृतीयकालिदासस्य न काव्यं साम्प्रतं क्वचित् ।
शृङ्गारतिलकादीनां कर्त्ता सम्भावितस्त्वसौ ॥१२॥

समयः शकेभ्यः पूर्वम् २५६ । शूद्रकस्य कृतिः मृच्छकटिकम् ।

"एकोऽपि जीयते हन्त ! कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु" ॥१३॥
रविकीर्त्तिकृते लेखे पुलकेशिमहीभुजः ।
अभिधा कालिदासस्य भारवेश्च निवेशिता ॥१४॥
षष्ठस्य शतकस्यादौ रविकीर्त्तेरभूल्लिपिः ।
भारविः कालिदासस्य रविकीर्त्तेस्तथान्तरे ॥१५॥

बाणभट्टः

स्थाण्वीश्वरे व्यधाद्राज्यं भूपतिर्हर्षवर्धनः ।
वर्षाष्टविंशतिः षष्ठशतकस्य यदा गता ॥१॥
पुलकेशिनृपस्यासीत्स भूपः समकालिकः ।
मयूरो बाणभट्टश्च सदस्यौ तस्य विश्रुतौ ॥२॥

भवभूतिः

कश्मीरेष्वभवद्राजा ललितादित्यनामकः ।
सप्तमस्य शतस्यान्ते विजिगीषुर्महाबलः ॥१॥
असहिष्णुर्जिगीषुत्वात्सद्वृद्धान्प्रतिवेशिकान् ।
कान्यकुब्जान्विजिग्येऽसौ यशोवर्माभिपालितान् ॥२॥
कविर्वाक्पतिराजश्री भवभूत्यादिसेवितः ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥३॥

विक्रमादित्यचन्द्रगुप्तस्य समयः शकेभ्यः परम् २९७-३३४ ।

प्रथमकालिदासस्य कृतिः- ऋतुसंहार, रघुवंश, मेघदूत, कुमारसम्भव, शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीयानि । कुमारसम्भवस्य प्रथमेऽष्ट सर्गाः कालिदासीयाः ।

द्वितीयकालिदासस्य कृतिः—नवसाहसाङ्कचरितम् ।

तृतीयकालिदासस्य कृतिः—शृङ्गारतिलकादि ।

भारवेः कृतिः—किरातार्जुनीयम् ।

हर्षवर्धनस्य समयः शकेभ्यः परम् ५२८-५७० । बाणभट्टस्य कृतिः— हर्षचरितम्, चण्डीशतकम्, कादम्बरी, पद्यकादम्बरी, मुकुटताडितकम् ।

यशोवर्मणः समयः ६६० । भवभूतेः कृतिः—वीरचरितोत्तररामचरितमालतीमाधवानि ।

शाखदत्तो माघश्च

नवमस्य शतस्यादौ माघः कविवरोऽभवत् ।
पौत्रः सुप्रभदेवस्य दत्तस्य च सुतः सुधीः ॥१॥
काश्मीरेष्वभवद्राजाऽवन्तिवर्माऽभिधो बली ।
अष्टमस्य शतस्यान्ते विदुषां वल्लभः सुधीः ॥२॥
मुक्ताकणः शिवस्वामी माघश्चानन्दवर्धनः ।
रत्नाकरो विशाखश्च तत्काले कवयोऽभवन् ॥३॥
पार्थिवोऽवन्तिवर्मेति मुद्राराक्षसनाटके ।
दृश्यते भरतानां हि वचसोऽन्ते क्वचित्क्वचित् ॥४॥

ीहर्षः

एकादशशतस्यान्ते कान्यकुब्जमहीश्वरः ।
पृथ्वीराजप्रतिस्पर्धी जयचन्द्रनृपोऽभवत् ॥१॥
प्रणेता नैषधीयस्य खण्डनस्य च पण्डितः ।
श्रीहर्षः कान्यकुब्जेशजयचन्द्रसदस्यभूत् ॥२॥

—**—

अवन्तिवर्मणः समयः ७७६–८०२ । विशाखदत्तस्य कृति —मुद्राराक्षसम् ।

माघस्य कृतिः—शिशुपालवधकाव्यम् ।

जयचन्द्रस्य समयः १०६१–१११५ ।

श्रीहर्षस्य कृतिः—स्थैर्यविचारणप्रकरणम्, विजयप्रशस्ति॰, खण्डनखण्डखाद्यम्, गौडोर्वीशकुलशस्तिः, गर्णावर्णनम्, छन्दः प्रशस्तिः, शिवशक्तिसिद्धिः, नवसाहसाङ्कचरितचम्पूः ।